ISSN 2349 - 137X

आखर लोक

प्रतिध्वनि कला संस्कृति की

वर्ष 2 अंक 4
2015 - 16

अनहद लोक

प्रतिध्वनि कला संस्कृति की

सम्पादक

डॉ. मधु रानी शुक्ला

सम्पादक मण्डल

डॉ. आशा अस्थाना, डॉ. राजेश मिश्र, डॉ. मनीष मिश्र

व्यंजना

आर्ट एण्ड कल्चर सोसायटी

109 डी/4, अबूबकर पुर, प्रीतमनगर, सुलेमसराय,

इलाहाबाद - 211011

अनहद लोक

प्रतिध्वनि कला संस्कृति की

सम्पादक : डॉ. मधु रानी शुक्ला

सम्पादक मण्डल : डॉ. आशा अस्थाना, डॉ. राजेश मिश्रा, डॉ. मनीष मिश्र

सम्पादकीय सहयोग एवं कला संयोजन : शाम्भवी शुक्ला

आवरण पृष्ठ : डॉ. आर.एस. अग्रवाल

मुद्रक : विकास कम्प्यूटर एण्ड प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

वितरक : पाठक पब्लिकेशन, महाजनी टोला, इलाहाबाद
0532- 2402073

प्रकाशक

व्यंजना

आर्ट एण्ड कल्चर सोसायटी

109 डी/4, अबूबकर पुर, प्रीतमनगर, सुलेमसराय,

इलाहाबाद

मो. : 9838963188, 9454843001

E- mail- melodyanhad@gmail.com
madhushukla011@gmail.com

मूल्य : 200/- प्रति अंक

वार्षिकः 500/-

तीन वर्षः 1500/-

आजीवनः 20,000/-

पोस्टल चार्जेज अलग से

© सर्वाधिकार सुरक्षित

- रचनाकारो के विचार मौलिक हैं
- समस्त न्यायिक विवाद का क्षेत्र इलाहाबाद न्यायालय होगा

मार्ग दर्शन :

पं. देबू चौधरी, डॉ. सोनल मानसिंह, प्रो. चित्तरंजन ज्योतिषी,
डॉ. कमलेश दत्त त्रिपाठी, पं. विश्वमोहन भट्ट, पं. भजन सपोरी,
पं. रोनू मजुमदार, प्रो. ऋत्विक् सान्याल, प्रो. दीप्ति ओमचारी भल्ला,
पं. विजय शंकर मिश्र, पं. अनुपम राय, श्री एस. पी. सिंह

संयोजन सहयोग :

डॉ. के. शशि कुमार, डॉ. रामशंकर, डॉ. शान्ति महेश, डॉ. निशा झा

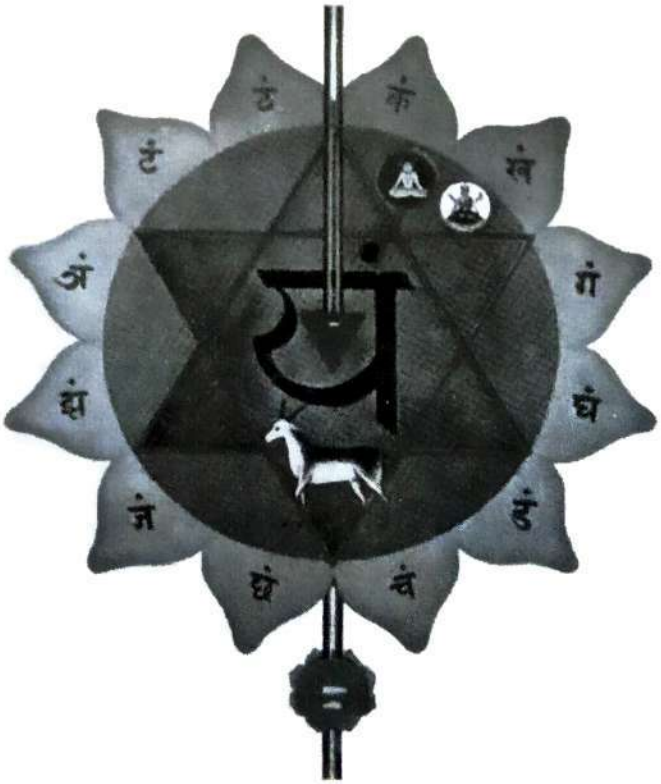

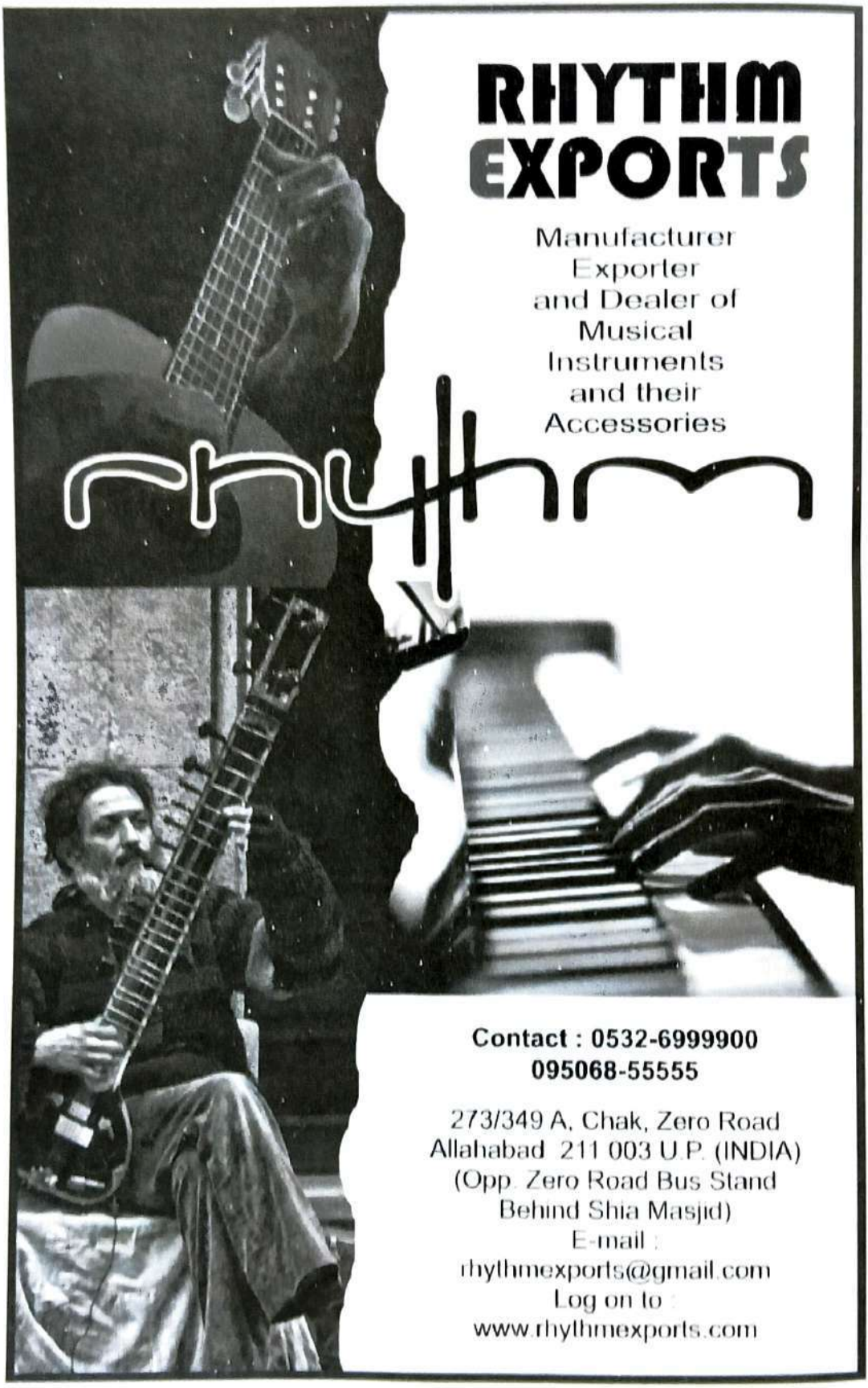

RHYTHM EXPORTS

Manufacturer
Exporter
and Dealer of
Musical
Instruments
and their
Accessories

rhythm

Contact : 0532-6999900
095068-55555

273/349 A, Chak, Zero Road
Allahabad 211 003 U.P. (INDIA)
(Opp. Zero Road Bus Stand
Behind Shia Masjid)
E-mail :
rhythmexports@gmail.com
Log on to :
www.rhythmexports.com

तुमने खरीद कर मुझे अनमोल कर दिया...

खुद को खुदा या ईश्वर के हाथों समर्पित कर देने की भावना ने संत परम्परा को जन्म दिया जो इस्लाम में सूफी परम्परा कही गई ये चिन्तन स्वयं को ईश्वर से एकाकार करने की दृष्टि है सूफीवाद या तसव्वुफ़ इस्लाम का रहस्यवादी पंथ है इनका लक्ष्य आध्यात्मिक प्रगति और मानवता की सेवा से परिपूर्ण रहा है ये अतः करण को पवित्र बनाने की शिक्षा, नैतिक धरातल की दृणता, अपने आन्तरिक व बाह्य जीवन का निमार्ण कर शाश्वत आनन्द की अनुभूति परमतत्व में अर्न्तलीन होने का लक्ष्य निर्धारित करते हैं, सूफी जानता है कि वह आन्तरिक रूप से ईश्वर में स्थित विचार है जो सार्वकालिक है उसका स्वयं का कोई नीजी अस्तित्व नहीं वह उसी ईश्वर के द्वारा देखता सुनता है, सूफी स्वयं को ईश्वर के हाथों बिका होने में भी फक्र महसूस करता है।

जब तक बिका न था, कोई पूछता न था।
तुमने खरीद कर मुझे अनमोल कर दिया।।

पैगम्बर ने कुरान 57/2 की आयत का विश्लेषण करते हुए लिखा है– तुम बाह्य हो, तुमसे उपर कुछ नहीं, तुम अभ्यंतर हो तुमसे नीचे कुछ नहीं, तुम प्रथम हो तुमसे पूर्ण कुछ भी नहीं, तुम अंतिम हो तुम्हारे बाद कुछ भी नहीं और पैगम्बर की यही दृष्टि सूफी चिन्तन की आधार शिला है। सूफीवाद में समय-समय पर वैदिक अद्वैतवाद को पुष्ट करने की कोशिश की गई इस परम्परा का आरम्भ 'हसन' ने किया जो बसरा इराक के थे हसन के बाद अबू हाशिम ने इस चिन्तन को बढ़ाया, राबिया अल्हदम, मंसूर हल्जाम जैसे शख्स इसके प्रणेता रहे भारत में ख्वाज़ा मोईनुद्दीन चिश्ती ने बारहवीं सदी में इस चिन्तन को आगे बढ़ाया। वायज़ीद विस्लामी ने तो आशिक और माशूक में एकाकार माना और कहा कि इब्राहीम, मूसा, मोहम्मद मैं ही हूँ जो ईश्वर के प्रेम मे 'फ़ना' हो जाए वह ईश्वर के सदृश्य दी है वायजीद के द्वारा स्थापित उपनिषदों के सार को कट्टरपंथियों द्वारा ठुकरा दिया गया भारतवर्ष में कबीर की दृष्टि भी यही है कि ईश्वर को संतो के रूप मे देखे -

कबिरा प्याला प्रेम का अन्तर लिया लगाय,
रोम-रोम में रमि रहा और अमल कोऊ नाय

सूफी चिन्तन को समाज में स्थापित करना सहज न था - सूफी साधकों को कट्टरपंथियों द्वारा प्रताड़ना प्राप्त होती थी इरानी हुसैन बिन मनसूर अल-हज्लाज ने 'अल-अल-हक' अर्थात मैं परम सत्य हूँ ये वेदान्तिक वाक्य कहा जिसके कारण उन्हे सूली पर चढ़ना पड़ा सूफी चिन्तन साधनाओं से परिपूर्ण है। योगसाधना से समृद्ध इन्सान दैवी तत्व में समाहित हो जाता है जो 'भेद-अभेद' को टूटकर एकीकृत हो जाए इसे हुसैन ने

कहा तब भगवान इन्सान के चोले में जब प्रवेश कर जाता है वो अन्तर मिट जाता है वही सर्वव्यापक ही जाता है जो किसी धर्म, जाति, सम्प्रदाय विशेष की जागीर नहीं है जैसा कि दृष्टव्य है -

इधर मन्दिर इधर मस्ज़िद इधर गुरूद्वार इधर गिरिजा
तुझे इबाद़त से मतलब है जिधर चाहे उधर गिर जा

'खौफ़े खुद़ा दरोहम' कहकर इस्लामिक कट्टरवादी चिन्तन शुरू हुआ कालान्तर में सूफी सन्तों ने तो महसूस किया कि खुद़ा से खौफ़ कैसा वो तो मुहब्बत के लिए है और यही इस्लामी सामाजिक जीवन के सार्वभौमिक पक्ष का प्रतीक बन गया खुद़ा की बन्दगी को मोहब्बत की शक्ल में इन्होने आत्मा परमात्मा से मिलन के रूप में देखा जो जीवन का असली मकसद है-

नूर मोहम्मद यह कथा है तो प्रेम की बात।
जेहि मन उपजे प्रेम रस, पढ़े सोई दिन रात

सूफीवाद इस्लाम धर्म के अन्दरूनी पक्षों को, रहस्यमय आयाम का प्रतिनिधित्व करता है सूफी संतो ने धर्म, समुदाय से बढ़कर मानव हित को ध्यान रखा ये दार्शनिकों का ऐसा वर्ग था जो ईश्वर व स्वयं को माशूक तथा आशिक के नज़रिये से देखता था उन्होने स्वयं को चिश्ती, सुहारावार्डिस कादिरियाह और नक्शबन्दी इन चार वर्गों में बाँटा। ये सूफ/ऊन का लबादा पहने सादगी से जीवन यापन करते थे इन्हे धन-दौलत की चाह नही थी भारतीय सन्तों ने सफेद के साथ ही गेरुए वस्त्रें को धारण किया। उन्होने प्रेम भावना को विकसित कर धार्मिक दूरी. मिटाने का अद्भुद कार्य किया निहायत आशिकाना सोचा सूफी चिन्तन की परम्परा रही है उसने अल्लाह को हर जगह देखा-

बुत में भी तेरा यारब जलवा नज़र आता है
बुतखाने के परदे में काबा नज़र आता है
माशुक के रूतबे को महशर मे कोई देखे
अल्लाह भी मजनूँ को लैला नज़र आता है

अरब दर्शन जिसे ज्यादा सही तौर पर मुस्लिम दर्शन कहा जाता है मुख्यतः ग्रीक दर्शन के प्रभावक्षेत्र में तेजी के साथ विकसित होता हुआ चार मुख्य आयामों में प्रकट होता है- मुतज्लवाद (बुद्धिवाद), अश अस्वाद (पाडित्यवाद), सूफी वाद (रहस्यवाद), दर्शन। सूफी साधकों की दृष्टि शब्दार्थों पर न जाकर उसकी आध्यात्मिक एवं रहस्य वादी व्याख्या पर रही ये बाह्यचारों से अधिक अन्तरमन की शुद्धि पर जोर देते है उनका कहना है कि 'धार्मिक सिद्धान्तों' का सत्य अर्थात परम सत्य के साथ सामंजस्य पूर्ण हो जिसे साधना द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। सनातन पंथी इस्लाम के भाँति ही सूफी भी कुरान एवं हदीम को दृष्टि में रखकर इसकी व्याख्या करता है।

सूफीमत इस्लाम धर्म में ही अर्न्तमुक्त है दोनों में विभेद सम्भव नहीं इस्लम धर्म की कट्टरता से दूर उसकी रहस्यमय दृष्टि से समृद्ध सूफी साधकों के चिन्तन को अलहुजवीरी तथा गज्जाली जैसे साधकों द्वारा सूफी मत तथा इस्लाम के कट्टर पंथियों के मध्य सामंजस्य स्थापित करने की चेष्टा है उनके अनुसार इसकी परिकल्पना इस्लाम को छोड़कर नहीं की जा सकती अमीर खुसरों लिखते हैं-

कफ़िरे इश्कम मुसलमानी मरा दरकार नीस्त
हर रगे मन तार गश्ता हाजते जुन्नारनीस्त

सूफी शायरों ने पूरी दुनिया को मुहब्बत का पैगाम दिया जो दिल के तारों को झंकृत कर गया खुदा के साथ पाक तथा रूहानी रिश्तों को जोड़ा कि उन्हे अपने दिल के आईने में सारी दुनिया का अश्क नज़र आने लगा -

उठा बगुला प्रेम का तिनका चढ़ा अकास,
तिनका तिनके से मिला, तिनका तिनके पास

सूफी सन्तों की दृष्टि भी जाँत-पाँत, धर्म सम्प्रदाय से उपर उठकर प्रेम के धागे से बाँधकर दिलों को जोड़ने का काम बखूबी करती है जैसा उनके विचारों से व्यक्त हुआ है - जाँत पाँत पूछे नही कोई, हरि को भजे सो हरि का होई

ऋषियों, आचार्यों द्वारा पल्लवित वसुदेव कुटुम्बकम् की भावना इस्लाम के सूफीमत और हिन्दुस्तान की संतवाणी के तसव्वुर एक ही बन गये दोनों मज़हब में न बँधकर ब्रहमाण्डीय रहे उस अदृश्य सत्ता को समर्पित रहे जो प्रेम में थी अतः सूफीवाद और भारतीय संतवाणी को दृष्टिगत रखते हुए ही भारतीय परिप्रेक्ष्य में सूफी चिन्तन की सार्थकता है। सूफी संतो की रूह ने जो महसूस किया वही बयाँ किया है इन्होंने अपने-पराये का भेद समाप्त कर लिया था जैसा कि इस पद से दृष्टिगत होता है–

हर रिश्ते से ले लिया, जबसे हमने जोग।
घर के से लगने लगे, दुनिया भर के लोग।।

ईरान के सूफी संतो जलालुद्दीन रूभी और हाफ़िज शीराजी ने सूफीवाद को अपने कलाम के जरिये बुलन्दी पर पहुँचाया हिन्दुस्तान में निजामुद्दीन औलिया के शार्गिद अमीर खुसरों ने इस परम्परा को समृद्ध किया खुसरों ने 'छाप तिलक सब लीनी री मोसे नैना मिलाय के' कहकर स्वयं को नारी के सदृश्य ईश्वर को प्रियतम् मानकर अपने आप को समर्पित कर दिया -

'खुसरों रैन सुहाग की जागी पिय के संग,
तन मोरा, मन पीव का दोनो भये एक रंग'।

सूफी, वली, दरवेश, और फकीर का उपयोग मुस्लिम संतो के लिए किया जाता है जिन्होंने अपनी पुर्वाभासी शक्तियों के विकास हेतु वैराग्य अपनाकर सम्पूर्णता की ओर जाकर त्याग आत्म अस्वीकार के माध्यम से प्रयास किया हिन्दुस्तानी सूफी सन्तो में मलिक मोहमद जायसी, कुतुबन, मंझन, नूर मोहम्मद आदि हुए। आशिक के तड़प, दर्द को जायसी ने पद्मावत में बखूबी उकेरा है पद्मावती को परमात्मा तथा रत्नसेन को आत्मा के रूप में रखकर जो सन्देश दिया वह इहलोकिक नहीं है। कबीर तो सूफी चिन्तन को पराकाष्ठा के प्रत्यक्ष प्रमाण है ही जो धर्म, जाति, सम्प्रदाय तथा उँचनीच पर व्यंग्य करते हुए आत्मा-परमात्मा के वास्तविक मिलन का संदेश देते है चिश्तिया सम्प्रदाय के चिन्तन में कबीर का एकत्ववाद का प्रभाव था कबीर पर यद्यपि सहजिया सम्प्रदाय की गूहय साधना का भी प्रभाव था फिर में एकत्व में उनकी आस्था थी द्ववैताद्वैत- विलक्षण-समत्ववाद का प्रत्यक्ष प्रमाण कबीर की वाणी को माना गया है-

कबीर बादल प्रेम का हम पर बरस्या आई
अंतरि भीगी आत्मा, हरी भई बनराई।

इब्ने अरबी में कबीर के ही विचारों की दृष्टि दिखाई देती है-

निशाने जाँ हमी जू, ता निशाँ अज बेनिशायँवि
मकान दिल तलब कुन, ता मंका दर लमकां बीनी

इसी विचार को कबीर की नज़रों से 'व्यंजर प्रेम प्रकासया, अंतरि मया उजास' की स्थिती में रखा गया है वे मन को काबा और काया को कर्बला के जों में देखते है–

जो मन राखे रतन करि, तो आपै करता सोहे ये बेहद अर्थात असीम है वे बेहद के साथ जुड़कर स्वयं बेहद हो गये और उन्ही के समक्ष अपने भावनाओं के प्रकटीकरण की बात करतें है कि 'जो लोग बेहद सों, तिन सूं अंतर खोलि'। यह बेहद स्वभाव, कर्म, चरित्र से संत है, वली है परम सत्ता है उसका राजदाँ है भारतीय संत परम्परा की मीरा जो सूफी चिन्तन की एक ही कड़ी के रूप में मानी जा सकतीं हैं जो कृष्ण रूपी सत्ता ईश्वर के प्रेम की दिवानी थी जिसने नारी होते हुए भी उस आलौकिक सत्ता से स्वयं का अलौकिक सम्बन्ध स्थापित कर लिया जिसके कारण वो आलोचना व प्रताड़ना की मात्र भी बनी जिनका ईश्वर के प्रतिसमर्पण अतुलनीय है -

'मीरा गिरधर हाथ बिकानी लोग कहे बिगरी'

सूफी वाद की खुश्बू पंजाब की संतवाणी में मिलती है गुरू नानक, बुल्लेशाह, वारिसशाह, बाबा फरीद ने अपनी सूफी कलाम से मुहब्बत की वारिश की कि पुरा हिन्दुस्तान तरबतर हो गया–

अव्वल अल्ला नूर उपाया, कुदरत दे सब बंदे
एक नूर ते सब जग उज्जया, कौन भले को मंदे

बहादुर शाह जफ़र की शायरी जो कि सूफी चिन्तन से ही प्रभावित थी उन्होने तो सूफी विचारों को अपने राजनैतिक जीवन में ही समाविष्ट कर दिया था, बंदीगृह में व्यक्त की गई उनकी भावना सूफी का उतकृष्ट उदाहरण है -

आशिक और माशूक का झगड़ा ही क्या शिक्वा ही क्या
जब गले से मिल गये सारा गिला जाता रहा...

सूफी चिन्तन ने रहस्यवाद के जिस चिन्तन परंपरा को समाज के मध्य स्थापित किया वह भारतीय कला परंपरा में अप्रत्यक्ष रूप से विद्यमान है चित्र हो, काव्य हो, मूर्ति हो या वास्तु रहस्यवाद के तत्व सभी में सम्यक् रूप से प्राप्त होतें हैं और संगीत तो इस कलात्मक रहस्यवाद का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। कला के सृजन, प्रस्तुतिकरण, विश्लेषण में चिन्तन की ये परम्परा कलाकारों की है। कला साधक, चिन्तक, द्रष्टा जिस आध्यात्मिक पृष्ठभूमि पर विचरण करता है वो एकीकृत हो जाता है अपनी साधना से कला ब्रहम में लीन हो सृष्टि करता है वह जगत जो पारलौकिक है, अभ्यन्तर है इन्ही कला साधकों चिन्तको की सृजनशीलता का यह लोक 'अनहद् लोक' की आगामी कड़ी के 'चतुर्थ अंक' के रूप में आपके समक्ष है निरन्तर प्राप्त कर साकारात्मक प्रतिक्रिया ने उर्जा का संचार किया है साथ ही कार्य के प्रति निष्ठा, जिम्मेदारी के प्रति सचेत किया है प्रस्तुत अंक गान, आतोद्य, नर्तन, सामायिकी, प्रकीर्णक, थाती, अनुभूति, समीक्षा, संवाद आदि अध्यायों के अन्तर्गत समृद्ध है जिसमें शोधार्थियों, लेखक चिन्तको विचारकों ने अपने मौलिक चिन्तन को शोधात्मक दृष्टि से सृजित करने का प्रयास किया है जो निश्चित रूप से कला जगत को एक नवीन दृष्टि प्रधान करेगा इसी शुभंच्छा के साथ

–मधु रानी शुक्ला

अनुक्रमांक

सम्पादकीय 5

गान

1. ''अनहद'' डॉ. रामभजन सिंह 13
2. संगीत में घराना : उद्‌भव विकास एवं महत्त्व प्रो. वी. बालाजी 15
3. शास्त्रीय संगीत में आलापचारी का महत्त्व (ध्रुपद की डागर-परंपरा के संदर्भ में) आशुतोष भट्‌टाचार्य 19
4. ग्वालियर की समृद्ध संगीत परम्परा प्रमोद कुमार तिवारी 21

आतोद्य

5. Sarasvati Veena and Fretting –an Overview Dr. Shanti Mahesh 27
6. आफताबेहिन्द बाबा अल्लाउद्दीन खाँ डॉ. सीमा कपूर 31
7. तबले के घराने एवं उनकी विशेषताएं डॉ. मंजू श्रीवास्तव 34
8. स्वर वाद्य- सारंगी प्रीती सिंह 42
9. लखनऊ तबला घराने की गुरु शिष्य परम्परा रुचि रानी गुप्ता 44
10. तबला वादन में पाटाक्षर का महत्व एवं उसकी उपयोगिता ऋतु सोनी 47

नर्तन

11. Dance in India Dr.Deepti Omchery Bhalla 51
12. Not Just Anybody :A Health and Fitness Column Rama Vaidyanathan 57
13. भारतीय संस्कृति में नृत्य की मान्यता डॉ. अंजना झा 59
14. कथक नृत्य का अन्यतम घराना : सुखदेव प्रसाद घराना रंजना उपाध्याय 63

थाती

15. ''लोक गीतों में क्रांन्ति के बोल'' डॉ. मन्नू यादव 69
16. 'नौटंकी : एक विवेचन' नंदल हितैषी 72
17. संस्कार गीत डॉ. देवदत्त शर्मा 81
18. भारतीय संगीत में लोक संगीत का आकर्षण डॉ. प्रेमकिशोर मिश्र 84
19. उत्तर प्रदेश की लुप्तप्राय लोक गायन शैली पल्लवी मिश्रा 86
20. लोकसंगीतः एक जीवन्तपरम्परा गीता गुप्ता 88
21. ''लोक संगीत'' श्वेता सत्यम 90

समायिकी

22. Technological Aids in Teaching Performing Arts — Dr. K. Sashikumar 97
23. भारतीय कला में आधुनिकता का स्वरूप — मनीषा सक्सेना 100
24. आधुनिक युग में शास्त्रीय संगीत की लोकप्रियता — नन्दकिशोर झा 104

संस्कृति

25. "बौद्ध कालीन संगीत साहित्य के सिद्धान्त" — डा. रुक्मिणी मेहरोत्रा 109
26. भारतीय किसानों की समस्यायें और उपाय — रज्जन द्विवेदी 111
27. टोंक की संगीत परम्परा — मधु बजाज 115

अंकन

28. कुषाण कला में 'ईहामृग' — डा. संजू मिश्रा 131
29. लोक चित्रकला कला परम्परा व संस्कृति का संवाहकः आदिवासी समाज — किरन मिश्रा 134

अनुभूति

30. जीवन का उत्स है संगीत — डॉ. रामनरेश त्रिपाठी 141
31. धरती गाती हैं : लोक संस्कृति — आनन्द वर्धन शुक्ल 143

प्रकीर्णक

32. Devotional Muaic — Dr. Shanti Mahesh 149
33. भारतीय संगीत का आध्यात्म से संबंध — डॉ. अंजना झा 153
34. संगीत और योग (ध्रुपद-गायन-शिक्षण पद्धति के संदर्भ में) — मधुछन्दा दत्त 157
35. सांगीतिक रचनाओं में रस की अभिव्यंजना — श्रेया श्रीवास्तव 159
36. संगीत एवं अध्यात्म का परस्पर अंतर्सम्बन्ध — नेहा त्रिपाठी 162

व्यक्तित्व

37. Saint Arunagirinathar and Thiruppugazh — Dr. T.V. Manikandan 167
38. अवधू बेगम देस हमारा कबीर की कविता में घर और देस — प्रो. सदानन्द शाही 170
39. The Walking God: - Pt. Panchakshari Gawai — Monika Soni, Dr. Chetna Banawat 174
40. धूमिल : जन संवेदना का कवि — डा. संध्या कुमारी सिंह 183
41. सिद्धेश्वरी देवी की सांगीतिक यात्रा — चित्रा चौरसिया 190

संवाद

42. पेन्टिंग और सरोद — सुश्री मीनू रानी दुबे 197
43. Pt. Bhajan Sopori — Asmita Mishra 201

शास्त्र

44. भर्तृहरि और उनकी शतकत्रयी — डॉ. राजेश मिश्र 211

समीक्षा

45. स्मरण संगीत — लेखिका डॉ. सुधा पटवर्धन 215

गा न

लता मंगेशकर

''अनहद''

डॉ. रामभजन सिंह

संगीत सेवी, बुंदेलखण्ड

(कछयई राग व अन्य विद्या में दाता साई के अवधूती शब्दों का गायन)

लोक गायन सिर्फ लोक रंजन नहीं हे इसमें लोक गायक अपने इष्ट देवी-देवता, समाज तथा देश की ऋद्धि-सिद्धि की कामना व आत्मा व परमात्मा के मिलन की कामना भी करता है।

बुंदेलखंड के इन लोक गायकों में काछी, मौर्या इत्यादि अत्यंत पिछड़ी जातियों में हैं। इनका मुख्य व्यवसाय सब्जी उत्पादन कर उसको बाजारों में बेचना तथा इनकी महिलाएं आज भी गांवों में सिर पर डलिया रखकर प्राचीन विनिमय जैसे—गेहूं के बराबर, आधा तथा चौथाई में अपनी सब्जी देती हैं।

इनकी गायकी में प्रमुख वाद्य इनकी बनाई हुई वस्तुएं हैं, जैसे—''ढपली'' व ''किकिहरी'' का प्रयोग होता है। ''ढपली'' एक लकड़ी के खोखले गोलाकार टुकड़े को चमड़े में पढ़कर बनाई जाती है तथा किकिहरी में एक बांस के टुकड़े में एक सिरे पर नारियल के खोखे को लगाते हैं तथा दूसरे सिरे पर एक बांस की छोटी सी खूंटी लगाते हैं फिर उसमें घोड़े की पूंछ के लंबे-लंबे बालों को लगाकर बनाया जाता है तथा इसको बजाने के लिए एक अर्द्ध वृत्ताकार की कमनिया की इसी तरह बनाई जाती है फिर दोनों के बालों में मोम लगाकर बजाने से वह सुरीली तान छेड़ती है जो अत्यंत सुहावनी व मनोहारी लगती है। दक्षिण भारत की श्री रंगम यात्रा के दौरान अपनी पत्नी समेत यात्रा में मैंने देखा कि संतों की दक्षिण भारतीय गायन शैली में ग्रामीण व आधुनिक दोनों रूपों में खजरी का प्रयोग संत त्यागराज, मुतु दीक्षित, श्यामा शास्त्री, दक्षिण भारत की रामायण जो संत कंबन द्वारा लिखित है, दक्षिण भारतीय लोक रंजक यह गायक खजरी जिसको थे ''खजीरा'' कहते हैं चाहे शैव मतावलंबी हो य वैष्णव सभी करते हैं। उड़ीसा में भी ग्रामीण लोक रंजक गायक महान संत कवि ''जयदेव'' की रचना ''गीत गोविंद'' को बजाकर गाते हैं।

इनके गायन में बहुत ही गंभीर शब्दों का चयन किया जाता है। इस क्षेत्र में ''दाता साईं'' संप्रदाय के बहुत से आश्रम हैं जो बियाबान जंगल में स्थित हैं। इस संप्रदाय के संत गांव व समाज में नहीं आते हैं इनके कुछ शिष्य होते हैं जिनको ''हंसा'' कहते हैं। यही वह जाते हैं। समाज में व गांव में शिक्षा वृद्धि मना है सब जगह उनकी वाणी जिसको यह ''शब्द'' कहते हैं, गाते हैं। इसको यह वाणी विलास की वस्तु नहीं मानते, तथा इनका ग्रंथ जिसको यह परम-पूज्य मानते हैं—''अस्स'' कहते हैं। उस अरस में लिखी भाषा यही पढ़ पाते हैं। क्योकि इनके मठों में जाकर मैंने देखा है कि तकरीब 3 सौ वर्ष से लेकर अब तक करीब कुंतल ''शब्द'' लिखी पुस्तकें (अनुभव अरस) मौजूद है न तो इनको छपाया जा सकता है। क्योंकि मना है। स्वयं लेखन करना, बाइडिंग करना अवधूत संत करते हैं।

वैसे कछयई राग में भजन, गारी, राई इत्यादि गायन करने वाली बहुत सी टीमें पूरे बुंदेलखंड में है, लेकिन ''दाता साईं'' के ''शब्द'' जो बहुत ही गूढ़ व

प्राच्य साहित्य से पूर्ण हैं तथा शाब्दिक अर्थों में अच्छा-अच्छा विद्वान पुरुष भी इनका अर्थ खोजने व पढ़ने में अपने को दुरूह महसूस करता है। इसका गायन पूरे बुंदेल खंड में केवल यही गायक करते हैं।

अन्य अनुसूचित जाति के वे अन्य ''हंसा'' एक अलग विद्या जिसको अवधूती शब्द मापने कहते हैं। ढोलक व हारमोनियम के साथ व मजीरा, चिमटा तथा करताल के साथ मिलकर करते हैं। संप्रदाय सौहार्द की मिसाल इतनी बड़ी है कि मुस्लिम समुदाय भी इसका अनुयायी है तथा ''तकमा'' लेकर ''हंसा'' बनते हैं तमाम मुस्लिम अनुयायी अवधूत भी हुए हैं और इन्हीं शब्दों को प्राचीन बायकी विद्या के रूप में गाते हैं। इस ''दाता साईं'' के भक्ति संगीत व साहित्य पर न किसी विद्वान पुरूष की निगाह पड़ी है, न कोई शोधा हुआ है अगर विद्वान लोग इन ग्रंथों पर शोध करना चाहे तो बहुताय की संख्या में सोध किये जा सकते हैं इसी तरह मृत्यु संस्कार में बुंदेलखंड में तेरहवीं संस्कार होता है उसमें तंबूरे के साथ यह ''अनहद'' अवधूती शब्दों के रूप में पूरी रात-रात भर गाई जाती है।

''दाता साईं के अरिल्ल शब्द''

1. जगत कहर दरियाव माया को जाल है।
   आशा-फांसी लाइ मारता काल है॥
   बचे संत विज्ञान माया को छोड़िकै।
   अरे हां-हो मोहन मार लिया मैदान छिगा को ओढ़कै॥
2. नाम निअक्षर नूर शब्द उजियार है।
   ज्योति बरै निशिवासर अकह के पार है॥
   आठ पहर झरि लाग है कि अमिय पियउ दुर्वेश॥
   अरे हां-हो मोहन जियत मुक्ति जो चाहै सो चले हमारे देश॥

''शब्द''

3. सत् महले पै सरगी बाजै हो।
   मन मंजीरा तत्तु कै तबला ज्ञान का गुटका लागैहो।
   आशा-तृष्णा देखै तमाशा सुरत सुहागिलि नाचै हो॥
   राय निरंजन बने मसालची अलख पुरुष इक जागै हो।
   मोहन शाह छवि देखि मगन भये पांच-पचीसौ ताकै हो॥
4. घर कै सुध विसराय विदिशिया।
   माया जाल काल बहु जोरउ जुग-जुग जीव गंवायचो विदिशिया॥
   सुत परिवार देख बहु भूल्यो काया नरक कमायो विदिशिया॥
   संशय षोग-रोग नित घेरे सपने सुखन पायो विदिशया।
   मोहन कहै कबौ न छूटै सत्तगुरु शरण न आयो विदिशिया॥

संगीत में घराना : उद्‌भव विकास एवं महत्त्व

प्रो.वी. वालाजी

प्रोफेसर, वाद्य संगीत विभाग, संगीत एवं मंचकला संकाय,
काशी हिन्दु विश्वविद्यालय, वाराणसी

संगीत जगत में 'घराना' एक चिरपरिचित शब्द है, जिसका संगती में विशष महत्त्व है। प्राचीन संगीत की जो विशेषताएँ आज भी सुरक्षित व संरक्षित होकर प्रवाहित हैं, उनमें घरानों का योगदान सर्वप्रमुख है। 'घराना' शब्द ज्यादा प्राचीन नहीं है, पहले यह मत व सप्रदाय के रूप में व्यवहृत होता था। 'घराना' शब्द संस्कृत के 'गृह' शब्द से उद्‌भूत है। यह घर का भाववाचक है। शब्दकोष में 'घराना' शब्द का अर्थ वंश या कुल है। सांगीतिक परिभाषा में भी इसही अर्थ काप्रयोग होता है। इस सम्बन्ध में संस्कृत में कहा भ गया है—"वंशों द्विविधाजन्मना विद्यया च।" अर्थात् वंश दो प्रकार से चलते हैं, एक जन्म से दूसरा विद्या से। एक घर में जन्म लेने वले सभी व्यक्तियों का एक 'परिवार' या 'घराना' होता है, वेसे ही एक गुरु से विद्या पाने वाले सभी शिष्यों का एक परिवार या घराना होता है।

प्राचीन काल में संगीत-शिक्षण की कोई विद्यालयीन व्यवस्था नहीं थी। प्राचीन काल में संगीत-शिक्षा एक साधन मानी जाती थी। वेदों में भी संगीत का उल्लेख मिलता है। इससे लगता है कि वेदपाठी ब्राह्मण भी संगीत-साधना करते थे। अतिप्राचीन काल में संगीत केवल मनोरंजन का साधन नहीं था अपितु एक साधना थी। अतः इस प्राकर की साधना के लिए विशेष शिक्षण आवयश्यक था।

भरत मुनि को, प्राप्त इतिहास के अनुसार, संगीत ग्रंथ के प्रथम लेखक तथा 'नाट्यशास्त्र ग्रन्थ को प्रथम पूर्ण प्राप्त संगीत ग्रंथ माना जाता है। भरत ने 'नाट्यशास्त्र' ने अपने सौ पुत्रों (शिष्यों) का उल्लेख किया है। इनमें कोहल, शांडिल्य आदि शामिल थे। इससे स्पष्ट होता है कि उस समय भी गुरु-शिष्य परम्परा थी। इसी भारत परम्परानुसार उनके द्वारा लिखित एवं प्रतिपादित संगीत-सम्बन्धी परम्परा को याष्टिक, तुम्बरु नन्दिकेश्वर, दुर्गाशक्ति आदि संगीत विद्वानों ने प्रतिपादित किया है।

इससे यह सिद्ध होता है कि प्राचीन काल में विशेष संगीतकार द्वारा अपनी बुद्धिमत्तानुसार संगीत में कुछ विशेषताओं के साथ विशेष प्रकार की शैली का प्रादुर्भाव करउसकी तालीम अपने शिष्यों तथा पुत्रों को देकर संगीत सम्बन्धी ज्ञान दिया जाता था। इदस प्रकार गुरु द्वारा दिये गये विशेष प्रकार के ज्ञान को शिष्य भी अपने शिष्यों को, फिर शिष्य अपने अपने शिष्यों को देकर उस विशेषता को कामय रखते थे। ऐसी गुरु—शिष्य परम्परा को 'आदिगुरु का मत' कहा जाता था; अर्थात् एक संगीतज्ञ द्वारा संगीत में कोई विशेष कार्य कर उस कार्य की शैली को गुरु-शिष्य परम्परा द्वारा तालीम, अनुशासन, नियमों कापालन आदि द्वारा कायम रखाजाता था तो ऐसी संगीत-शैली को संगीतकार की 'घरानेदार शैली' (पीढ़ी-दर-पीढ़ी गुरु-शिष्य परम्परा) या 'घराना' कहा

जाता है। प्राचीन काल में हम इसे सम्प्रदाय के रूप में भी समझ सकते हैं, जैसे-शिवमत, ब्रह्ममत, भरतमल आदि। दक्षिण भारत में आज भी 'सम्प्रदय' शबद उपयोग में लाय जाता है।

साधारणा भाषा में 'घराना' शब्द का अर्थ 'वंश-परम्परा' होता है संगीत के घराने कब से प्रारम्भ हुये, इसका उत्तर ठीक-ठीक देना कठिन है। अधिकतर विद्वनों के अनुसार घरानों की परम्परा करीब ढाई-तीन सौ साल से अधि पुरानी नहीं है। वैसे तो मध्ययुग में ध्रुपद की चार वाणियाँ प्रचलित थीं; जिन्हें आज की भाषा में चाचर घराने कहा जा सकता है। इन चार वाणियों के पूर्व भी भरत मत, शिव मत, हनुमन्त मत, नारद मत, ऐसे चार मत प्रचलित थे, जो घराने के सामने ही थे। अतः हम निश्चित रूप से कह सके हैं कि पहले भी घराने थे, किन्तु उनका स्वरूप भिन्न था। 'वाणी' और 'मत' को घराने का ही पर्यायवाची माना जा सकता है।

कुछ विद्वानों के अनुसार, संगती के घरनों की नींव 8वीं से 12वीं शताब्दी के बीच राजपूत काल में पड़ चुकी थे। संगीतकारों को राजदरवार में आश्रय मिलता था। इन संगीतकारों ने अधिकतर राजश्रय में ही उन्नति की। परन्तु संगीतकार अपने ज्ञान को इतना छिपाकर रखते थे कि वे किसी अन्य जातिवालों को तो कया अपनी जातिवालों को भी बताने में संकोच करते थे। वे संगीत-संगीत-ग्रंथ भी नहीं लिखते थे। इसी संकीर्णता के फलस्वरूप संगीत के क्षेत्र में घरानों की नींव पड़ गयी, इन घरानों के माध्यम से संगीत पीढ़ी-दर-पीढ़ी चला करता था। परन्तु अच्छा शिष्य और पुत्र न होने से कभी-कभी संगीतकारों के साथ ही उनका संगीत समाप्त हो जाता था। अंग्रेजों के काल में संगीत-कला अनपढ़, व्यवसायी लोगों के हाथ पहुँच गयी। इन संगीतकारों के सामने व्यक्तिगत स्वार्थ ही प्रधान था, जहाँ घरानों को और आश्रय मिला और उनकी जड़े मजबूत हो गयीं।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो कि राजपूत युग में घरानों की पृष्ठभूमि तैयार हुई और आधुनिक घरानों का पूर्णतः विकास अंग्रेजों के शासनकाल में ही हुआ।

कुछ विद्वानों के अनुसार संगीत में घरानों का प्रारम्भ मुगल युग के अन्तिम समय से ही हुआ है, क्योंकि किसी भी प्राचीन या मध्यकालीन ग्रंन्थों में घराना शब्द का उल्लेख नहीं मिलता। अतः घरानों का अस्तित्व ढाई-तीन सौ साल से अधिक पुराना नहीं हो सकता। यदि घरानों के उद्भव के पूर्व की स्थिति पर विचार करें तो हम देखते हैं कि मुसलमानों के आक्रमण और शासन के पश्चात् शुद्ध रूप से हिन्दू कहलाने वाली सभी भारतीय कलाओं पर यवन संस्कृति का प्रभाव पड़ता आरम्भ हो गया। मुगल युग में कुछ व्यवसायी कलाकारों के ऐसे समुदाय अस्तित्व में आये, जिन्होंने अपने कलात्मक प्रस्तुतीकरण में कुद अपनापन तथा कल्पना, सौन्दर्य की कुछ विशिष्ट शैली का प्रयोग करना आरम्भ किया। प्रत्येक समुदाय के प्रमुख कलाकारों के प्रस्तुतीकरण में अपना आरम्भ किया। प्रत्येक समुदाय के प्रमुख कलाकारों के प्रस्तुतीकरण में अपना निजी योगदान होता था, इस तरह घराने तथा घरानेदार कलाकार अस्तित्व में आये।

अकबर-युग में जिस तरह ध्रुपद की चार वाणियाँ प्रसिद्ध थी, उसी तरह इन्हीं व्यवसायी कलाकरों के कारण मुगल बादशाह मोहम्मदशाह के पश्चात् तबला, पखावज तथा ख्याल गायकी के घरानों की नींव पड़ने लगी, जो मुगल युग के बाद अधिक समृद्ध एवं विस्तृत हुई। इस तरह पिछले ढाई-तीन सौ वर्षो में अर्थात् 18वीं शताब्दी के बाद आधुनिक घराने प्रचार में आये।

इन घरानेदार कलाकारों को अपने घराने की विद्या पर बेहद वर्ग था अधिकांश गुरु अनपढ़ थे, तथा अपने शिष्यों को मौखिक शिक्षा देते थें किसी को संगीत सीखना हो तो वर्षों उस्ताद के घर रहकर उसकी सेवा करनी पड़ती थी। ये कलाकार अपने घराने के अतिरिक्त दूसरे घराने की विद्या सीखना तो क्या, सुनना भी नहीं चाहते थे। इन अशिक्षित कलाकारों की संकीर्ण मनोवृति के फलस्वरूप संगीत के क्षेत्र में घरानों की नींव पड़ गयी। यह अशिक्षित, अनपढ़ कलाकार ऐसी कुशाग्र बुद्धि के थे कि वे ये गुण आधुनिक शिक्षा प्रणाली से तैयार हुए विद्यार्थियों

में कम ही देखने को मिलता है। उन कलाकरों के पास विद्या का जो भण्डार था, बन्दिशों की जो विपुलता थी, दीर्घ साधना का जो तेज था, कला के प्रति जो सम्पर्ण की भावना थी, वह सचमुच आजकल कम मिलता है।

कुछ घरानेदार कलाकारों को छोटी-मोटी रियासतों के राजा, महाराजा, ठाकुरों अपने दरबारी कलाकार के रूप में आश्रय दिया। घरानों के संरक्षण और विकास के पीछे वास्तव में उन राजाओं-नवाबों का योगदान अमूल्य है। मैहर स्टेट के दरबारी कलाकार रहकर उस्ताद अलाउद्दीन खाँ ने सर्वश्री अली अकबर खाँ, रविशंकर, निखिल बनर्जी, पन्नालाल घोष जैसे समर्थ कलाकारों को शिक्षा दी। जिसके फलस्वरूप आज पूरे विश्व में भारतीय संगीत का मस्तक ऊँचा हुआ है।

घरानों ने वास्तव में संगीत-कला को अवश्य समृद्ध किया है, और उसी के फलस्वरूप संगीत की माहानतम निधि आज हमारे पास है। सस्ते मनोरंजन के अधंकार भरे इस युग में, इन्हीं घरानेदार संगीतों ने अपनी कठोर साधना, असीम गुरु-भक्ति और तालीम से संगीत को जीवित रखा। यदि घराने न बने होत तो संगीत की परम्परागत विद्या अवश्य ही मध्य युग और अंग्रेजों के युग में नष्ट हो गयी होती। घरानों ने ही हमारी सांगीतिक संस्कृति की रक्षा की है और कला के रक्षक का दायित्व निभाया है।

घराने का आधार 'गुरु'है। प्रत्येक घराने में 'गुरु' या 'उस्ताद' केन्द्र-बिन्दु होता है। गुरु और उसका शिष्य, इन्हीं के बीच संगीत की विशेष शिक्षा दी जाती है। गुरु, शिष्य को अपने सामने बिठाकर शिक्षा देता और शिष्य अपनी पूरी लगन, परिश्रम ओर श्रद्धा से कला की विशेषतायें ग्रहण करता। गुरु की शैली की सारी विशेषताएँ शिष्य के कण्ठ या हाथ में आ जाती। गुरु की यह कोशिश होती कि शिष्य उसकी हूबहू तस्वीर बने और इसीलिए शिक्षा पूरी होने तक शिष्य को किसी दूसरे घराने की गायकी/वादकी सुनने का अधिकार न मिलता। गुरु की पूरी तसल्ली का अधिकार न मिलता। गुरु की पूरी तसल्ली यानी शिक्षापूर्ति के बाद शिष्य अन्य घरानों की विशेषताओं के साक्षात्कार कर सकता। इस अवस्था में उसे दो तरह की छूट अपने आप मिल जाती-एक तो यह कि वह जिस घराने दमें जो विशेषता अनुभव करे उसे चाहे तो अपना ले, परन्तु यहाँ भी शर्त यह थी कि उसके अपने घराने के मूल चरित्र पर कोई पर काई प्रभाव न पड़े। दूसरे, कलाकार अपनी बुद्धि, अनुभव और रुचि के आधार पर भी परम्परागत शैली में न्यूनाधिक परिवर्तन कर सकता है। उपर्युक्त इन्हीं दो प्रवृत्तियों के कारण घरानों की परम्पराओं की धारा विकसित, परिवर्तित, परिवर्द्धित होता रहतीहै। घराने की निरन्तरता केवल शिष्य-परम्परा के चलने में नहीं, वरन् उस्ताद की गायकीया बाज चलने में हैं।

समय या पारिस्थितिवश या इस प्रकार कह सकते हैं। कि संगीत-कला को पतन के गर्त में जाने रोकने हेतु घराने के महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है, किनतु यह कहना भी अनुचित न होगा कि घरानों की इस परिपाटी ने संगीत की आन्तरिक स्थिरिता या जड़ता को जन्म दिया। घरानों की आपसी काटुता के कारण वैमनस्य बढ़ा। इस प्रकार कुछ लाभ के साथ हानियाँ भी हुई। किसी भी घराने का गुरु केन्द्र-बिन्दु होता है। गुरु के गुणों के साथ उनकी बुराईयों को भी अपनाने में शिष्य हिचकिचाता नहीं, वरन् वह आत्मसात् करने में शान समझता है। शारीरिक ऐबों या व्यंग्य के कारण यदि गुरु में कोई दोष हो जाये तो शिष्य भी उसे तुरन्त आत्मसात् कर लेता है।

घरानों की प्रशंसा में यह भी कह सकते हैं कि जब कलाओं में परिपक्वता आ जाती है, तब वही परिपक्वता विशिष्ट शेली को जन्म देती है। भारत में ऐसी ही शैलियों ने घराना या परम्परा का रूप प्राप्त किया।

भारत में संगीत घरानोंद में ही पनपा है। हर घराने की अपनी एक शैली रही। संगीत तो वास्तव में वह कला है, जिसका बिना किसी परम्परा-विशेष के प्राप्त होना मुश्किल हैं पुराने जमाने में जबकि आज की तरह रेडियों, संगीत विद्यालय और टेप-रिकार्डर नहीं थे, इसी से घरानों की कल्पना

अनजाने में दृढ़ हो गयी और संगीत जैसी महान कला पुनर्जीवित रही।

संगीत का साधन माधवी आवाज है जो कि मानव रूप की तरह ही भिन्न है। यही आवाज जब योग्य गुरु द्वारा संस्कारित की जाती है और शिष्य भी निरन्तर अभ्यास से गुरु के मार्ग-निर्देशन से गूँज, लालित्य और स्निग्धता लाकरआवाज पर भिन्न-भिन्न अलंकार चढ़ाकर आवाज को स्वर का रूप देता है। तो घरानों का अविर्भाव शुरु होता है। संगीत मेंइस तालीम का बहुत महत्त्व रहा। प्राचीन इतिहास के अध्ययन से पता चलता है। कि मानव युगायुग से अपने को बचाये रखने के लिए नाना प्रकार के आयोजन करता चला आ रहा है। अन्य कलाओं की भाँति संगीत के क्षेत्र में भी संगीतकारों नरे अपनी रचनाओं को शिष्य-परम्परा के बीच बनाये रखना चाहा। गुरु अपने कण्ठ की विशेषताओं को शिष्य के गले में उतारने की कोशिश करता और शिष्य भी कठोर द्वारा गुरु की पूरी नकल करता।

घरानों के मध्यम से रात-दिन का रियाज करते हुए संगीत-साधना का क्रम वास्तव में प्रशंसनीय है। ताल, सुर की तालीम की कल्पना तो घरानों के बिना सम्भव ही नहीं। घराने तो वास्तव में, अतीत की साधना का प्रतिफल हैं।

यह शिक्षा आमतौर पर खानदान के ही पुत्र और पौत्रों को दी जाती थी, लेकिन बाहर से भी बहुत से शिष्य, पुत्रों की तरह बरसों गुरु के पास रहकर उनसे तालीम हासिल करते रहे हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उस समय तालीम और रियाज के जो अवसर उन परिस्थितियों में उपलब्ध थे, आज वे नवीब नहीं होते। तब कलाकार का भविष्य उतना अनिश्चित नहीं था, जितना कि आज है। बड़े-बड़े राजदरबार अच्छे उस्तादों को अपनी शोभा बनाने के लिए उत्सुक रहते थे और बस राजदरबार अच्छे उस्तादों को अपनी शोभा बनाने के लिए उत्सुक रहते थे और बस एक बार ऐसे उस्ताद की शागिर्दी ली नहीं कि सारा जीवन सुरक्षित हो गया। अनुशासन घरानों की तालीम का सबसे महत्त्पूर्ण हिस्सा था।

कला को स्थिर रखने की दृष्टि से घरानों की बहुत महत्ता रही। घरानों के कारण ही कलाकरो में बहार आयी। किसी महान कलाकार का निर्माण किसी घराने की परिपूर्ण शिक्षा पाये बिना असम्भव है।

प्रो. रामअसारे झा के अनुसार, "जिस प्रकार पतित पावनी गंगा की धारा में किसी प्रकार का अशुद्ध व अपवित्र जल तथा वस्तु मिल जाने से वह पवित्र समझा जाता है, उसी तरह संगीत के क्षेत्र में भी 'घराना' शब्द पतित पावनी गंगा की भाँति बना हुआ है। जिज्ञासुओं के इतना कह देरे से कि अमुक गायक/वादक अमुक घराने का है तो आत्मा-संतुष्टि हो जाती है।"

सन्दर्भ

1. उत्तरी भारत में संगीत शिक्षा, तृप्त कपूर, हरमन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
2. संगीत बोध, डॉ. चरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे, म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।
3. ताल-वाद्य शास्त्रा, मनोहर भालचन्द्रराव मराठे, शर्मा पुस्तक सदन, ग्वालियर।
4. भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण, स्वतन्त्र शर्मा, टी.एन. भार्गव एण्ड संस, इलाहाबाद।

शास्त्रीय संगीत में आलापचारी का महत्त्व (ध्रुपद की डागर-परंपरा के संदर्भ में)

आशुतोष भट्टाचार्य

संगीत सेवी, वाराणसी

हमारा भारतीय शास्त्रीय संगीत पूर्व रूप से राग आधारित संगीत है। इसके अंतर्गत रागों का ही गायन या वादन होता है। परिपाटी के अनुसार राग के गायन में हम सर्वप्रथम राग की स्थापना करते हैं। तत्पश्चात इसका क्रमशः विस्तार किया जाता है। राग के आवाहन एवं विस्तार की इस क्रिया को ही हम राग का आलाप या आलप्ति के नाम से जानते हैं।

ध्रुपद-गायन में आलाप का महत्त्व सर्वोपरि होता है। इसमें मंगल सूचक वर्णों का प्रयोग होता है, जिन्हें हम 'तेनक' के नाम से भी जानते हैं। त, र, न, आदि वर्ण 'ॐ तू अनंत हरि नारायण तरन तारन' महामंत्र से लिए गए हैं। हमारे भारतीय संगीत में आलाप एक विशेष सांगीतिक संस्कार है जिसे समझने व प्राप्त करने के लिए वर्षों तक गुरू के सान्निध्य में रहकर परंपरागत शिक्षा प्राप्त करने की आवश्यकता होती है।

आलाप हमारी सांगीतिक परंपरा का वह महत्त्वपूर्ण अवयव है जिसकी समझ होना साधक के लिए आवश्यक है ही अपितु श्रोताओं को भी इसका करना आना चाहिए। आलाप द्वारा ही राग एक पुष्प की भांति प्रस्फुटित होता है और उसकी सुगंध वातावरण में फैलकर आनंदित करता है। आलाप से ही राग का अस्तित्त्व निरूपित होता है। आलाप वह क्रिया है जिसके द्वारा हम राग का मंथन कर उसके भाव एवं रस को खोजते हैं।

राग का सौंदर्य, माधुर्य एवं उसका संपूर्ण व्यक्तित्व उसके आलाप में ही निहीत है। आलाप द्वारा ही राग का चित्रण एवं वर्णन किया जाता है।

राग का प्रेम, राग की करुणा, राग की वेदना तथा उसका हर एक व्यवहार गुणी साधक आलाप के माध्यम से प्रस्फुटित कर सकता है। राग के लिए आलाप उस आंगन की तरह होता है जिसमें राग खेलता है, खिलता है और विस्तार लेता है। आलाप ही राग की भाषा है, तथा आलाप में ही राग की अभिव्यक्ति होती है। हम यह भी कह सकते हैं कि राग का चलायमान रूप ही उसका आलाप है। यही राग की प्राण शक्ति है। आलाप राग का वर्णन तो हे ही साथ ही आलाप गायक तथा वादक के व्यक्तित्त्व को भी प्रकट कर देता है। उसकी योटको सामने ले आते हैं। जैसी हमारी सोच होगी वैसा ही हमारा गाना-बजाना होगा।

राग स्वयं ही अपने स्वभाव के अनुरूप आलाप की दिशा को तय करता है। आलाप को मुक्त आलाप भी कहते हैं परंतु यहां मुक्त का अर्थ है राग हमें अपने साथ जहां ले चले हम यही चलें, उन्मुक्त होकर राग के साथ वह निकलें। यहां यह कदापि नहीं है कि आलाप में कोई छंद और लय नहीं होता। आलाप की अपनी गति होती है जो वह स्वयं तय करता है। इसमें छंद एवं लय दोनों का ही समावेश होता है। राग और उसके आलाप को भिन्न समझना सूर्य एवं उसकी किरण को भिन्न समझने जैसा

होगा। जब राग है तभी उसका आलाप है और जब सुंदर आलाप है तो उसी में राग खिलता है या यह भी कह सकते हैं रागमय-आलाप या आलापमय-राग। यह दोनों ही एक दूसरे के पिरपूरक हैं। स्पष्ट अर्थों में यह कहा जा सकता है कि आलाप के बिना राग की परिकल्पना एवं राग के बिना भारतीय शास्त्रीय संगीत के बात हम कर नहीं सकते।

हमारी गुरू परंपरा (ध्रुपद के डागर परंपरा) जो लगभग 500 वर्षों की अखंड परंपरा है जिसमें आलाप को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया गया है। आलाप के दर्शन को इस परंपरा के नाद-उपासकों ने जितनी गहराई से समझा है संभवतः ऐसा कहीं और नही है। संगीत के ग्रंथों में वर्णित सभी गूढ़ तथ्यों को जिन्हें केवल किताबी बातें समझा जाता था इन साधकों ने अपनी आलापचारी में उनका सुंदर समावेश किया तथा संगीत जगत को यह समझाया कि ये केवल किताबी बातें नही हैं इनका एक समृद्ध प्रायोगिक पक्ष भी है। इस परंपरा के बीनकारों एवं गायकोम के पास समय-समय पर अनेक ख्याल गायकों ने भी तालीम लिया जिससे न केवल उनकी ख्याल-गायकी समृद्ध हुई, वे आगे चलकर मूर्धन्य ख्याल गायकों के रूप में प्रसिद्ध भी हुए। हमारी परंपरा की आलाप की पद्धति केवल गाना मात्रा नहीं है, यह एक संस्कृति है। यह हमारे जीवन के हर भाग पर अपना प्रभाव छोड़ती है और हमारी सोच एवं व्यक्तित्त्व को निखारने का काम करती है। आलाप आध्यात्म है। आलाप किया नहीं जाता है आलाप में जिया जाता है।

डागर परंपरा के श्रेष्ठ-वरिष्ठ-गायक तथा संगीतत्त्वविद मेरे गुरू पंडित ऋत्विक् सान्याल जी के अनुसार आलाप उपासना है। ध्रुपद की इस परंपरा में आलाप की पद्धति की संज्ञा मेरूखंड है। इसमें दस प्रकार के सूक्ष्म प्रयोग आवश्यक हैं—आकार, डगर, धुरन, मुरन, कंपित, आंदोलित, लहक, गमक, हद और स्फूर्ति संगीतरत्नाकर के खंडमेरू को ही मेरूखंड कहा जाता है। उनके अनुसार गुरुशिष्य-परंपरा में ही आलापचारी के प्रखर शिक्षण संभव हैं।

हमारी युवा पीड़ी से अब यह उम्मीद है तथा उनका परम दायित्व बनता है कि वो आगे आएं और हमारी इस थाती को संभालें। इसके लिए उन्हें किसी शास्त्र-प्रवीण नाद-उपासक से परंपरागत तरीके से तालीम लेनी होगी और विद्या को आत्मसात करना होगा। दुनिया के भागम-भाग से अछूते रहते हुए शांत चित्त से पहले शिक्षा लेनी होगी उससे भी ज्यादा साधना करनी होगी और सबसे जयादा ऊपरी सोच को विस्तार देना होगा।

संदर्भ ग्रंथसूची

1. ध्रुपद वार्षिकी 1989, 1990
2. भारतीय संगीत का इतिहास, उमेश जोशी
3. भरत का संगीत सिद्धांत, कैलासचंद्र बृहस्पति
4. संगीतरत्नाकर, टीका सुभद्रा चौधरी

ग्वालियर की समृद्ध संगीत परम्परा

प्रमोद कुमार तिवारी

शोध छात्र, गायन विभाग

संगीत एवं मंचकला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

ग्वालियर की संगीत कला भारतवर्ष के संगीत इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित करने योग्य है। ग्वालियर का संगीत-वैभव और उसकी संगीत परम्परा बहुत प्राचीन है।

भारतीय संगीत के संरक्षण, संवर्द्धन एवं प्रचार में ग्वालियर का प्रमुख स्थान रहा है। अनेक अलौकिक गायक, अद्वितीय वादक तथा संगीतशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित इसी ग्वालियर की पुण्य-भूमि से समस्त भारत-भू को अपनी अनुपम कला से मुग्ध कर चुके हैं। यह वह भूमि है जहाँ नायक बैजू जैसे अमूल्य रत्न ने कार्य किया है, संगीत सम्राट तानसेन ने जन्म लिया हैं, यह वह भूमि है जहाँ से संगीतज्ञ हस्सू, हद्दू एवं नत्थू खां, रहमत खां, निसार हुसैन खां, पं. बालकृष्ण बुआ इचलकरंजीकर, उस्ताद हाफिज अली खां, जोरावर सिंह, पर्वत सिंह, शंकरराव पंडित, एकनाथ पंडित, राजाभैया पूछवाले तथा कृष्णराव पंडित आदि प्रतिभा सम्पन्न गायक-वादक हुए जिन्होंने अपने शिष्य समुदाय द्वारा ग्वालियर और ग्वालियर के बाहर संगीत का अभूतपूर्व प्रचार-प्रसार एवं पुनरूत्थापन कर भारतीय संगीत में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

ग्वालियर की संगीत परम्पराएवं तोमर वंश के बहुत पूर्व ही अत्यंत समृद्ध रही है। तोमर वंश ने इसे गतिशील बनाया और राजा मानसिंह ने इसे इतना सजाया-संवारा एवं परिष्कृत किया कि यह परम्परा जनसाधारण तक में प्रचलित होकर सम्पूर्ण भारत में लोकप्रिय हो उठी।

ग्वालियर परम्परा के शिखर पुरुष राजा मानसिंह ने ही ध्रुपद शैली का आविष्कार किया था। उन्होंने स्वयं कई ध्रुपदों की रचना की एवं अपने संगीताचार्यो को भी पद रचना हेतु प्रोत्साहित किया। राजा मान सिंह तोमर ने भारतीय संगीत को शुलभ बोधगम्य एवं लोकप्रिय बनाने के लिए उसके सर्वांगीण विकास एवं प्रचार के लिये योजनापूर्वक कार्य किये थे। उन्होंने ही ग्वालियर में सर्वप्रथम संगीत विद्यालय की स्थापना की थी और उन्होंने ही सर्वप्रथम संगीत सम्मेलन का आयोजन कर 'मानकुतूहल' जैसे अप्रतिम ग्रंथ की रचना की थी। राजा मान द्वारा स्थापित संगीत विद्यालय में नायक वैजू, नायक बक्शू एवं नायक चरजू से ही संगीत सम्राट तानसेन ने संगीत की विधिवत शिक्षा प्राप्त की थी। राई ग्राम में 'नृत्य संगीत गृह' स्थापना अपने आप में एक अपूर्व कार्य था।

संगीत के पर्याय माने जानेवाले सुर सम्राट तानसेन ने नए-नए रागों का आविष्कार, ध्रुपद संबंधी अनेक उच्चकोटि के पदों की रचना, रबाब जैसे वाद्य का आविष्कार, त्रिवट-चतुरंग जैसी गायन शैलियों का परिष्कार कर एवं संगीतकार, रागमाला, तथा गणेश-स्त्रोत जैसे अद्वितीय संगीतशास्त्र संबंधी ग्रंथों की रचना करके भारतीय संगीत के विकास एवं प्रसार हेतु अपूर्व कार्य किया। वस्तुतः उन्होंने भारतीय संगीत को एक नई दिशा एवं सर्वोच्च रूप दिया।

ग्वालियर के तोमर वंश के अस्त के बाद ग्वालियर का राजनीतिक महत्व यद्यपि नष्ट हो चुका था।

तथापि वहाँ संगीत का समुचित वातावरण अवश्य रहा। इस अवधि में ग्वालियर निरंतर मुस्लिम शासन की सल्तनत का एक प्रमुख नगर होने से एवं प्रायः सभी मुस्लिम शासक संगीत प्रेमी, संगीतानुरागी एवं संगीतज्ञ होने के कारण ग्वालियर में भी अवश्य ही संगीत की अविरत धारा अखण्ड रूप से प्रवाहित होती रही होगी।

सिंधिया वंश के नरेशों ने ख्याल शैली के साथ-साथ ध्रुपद शैली के संगीतज्ञों को भी उदार अन्तःकरण से आश्रय देकर इन प्राचीनतम शैलियों का संरक्षण किया है।

एक ओर जहाँ इन नरेशों ने ख्याल शैली के प्रमुख घराने के रूप में ग्वालियर घराने को स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है वहाँ दूसरी ओर संगीत के विकास, प्रसार हेतु सभी सामग्री उपलब्ध कराते हुए ग्वालियर नगर को संगीत का तीर्थ स्थान बनाने में भी अद्वितीय योगदान दिया है।

श्रीमंत दौलतराव सिंधिया के राज्यकाल में ही गुरू-शिष्य परम्परा का उदय हुआ। ग्वालियर घराने के मूल पुरूष नत्थन पीरबक्श खाँ साहब से सीखी हुई परम्परागत गायकी एवं बड़े मुहम्मद खाँ साहब से सुनी हुई गायकी के मिश्रण से उस्ताद हस्सू, हद्दू, एवं नत्थू खां ने एक अलौकिक गायकी का निर्माण कर ग्वालियर घराने की स्थापना की। उन्होंने उदारतापूर्वक संगीत विद्या का दान करते हुए असंख्य शिष्यों का निर्माण कर ग्वालियर परंपरा को एक विशाल शिष्य-प्रशिष्य-परम्परा में स्थापित किया।

ग्वालियर की ख्याल परंपरा के अद्वितीय संगीताचार्यों में उल्लेखनीय नाम हैं। बाबा दीक्षित, वासुदेव बुवा जोशी, बालकृष्ण बुवा इचलकरंजीकर, देवजी बुवा परांजपे, रहमत खाँ, बंदेअली खाँ, रामकृष्ण बुवा वझे, निसार हुसेन खाँ, बालासाहब, अनंत मनोहर जोशी, पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर, मिराशी बुवा, नानू भैया तेलंग, काशीनाथ पंत मराठे, भाऊसाहेब, शंकरराव पंडित, कृष्णराव पंडित, राजाभैया पूछवाले, ओंकारनाथ ठाकुर, विनायक राव पटवर्धन पटवर्धन, बी. आर. देवधर, कुमार गंधर्व, पं. डी.वी. पलुस्कर, पं. नारायण राव व्यास, ठाकुर जयदेवसिंह, विनयचंद्र मौदगल्य, बालाभाऊ उमडेकर, लक्ष्मणराव पंडित,एन. राजम् मालिनी राजुरकर आदि।

ग्वालियर की ध्रुपद परम्परा में उल्लेखनीय नाम हैं-

पं. चिंतामणि मिश्र, पं.नारायण शास्त्री, पं. वामनबुवा, पं.विष्णु भैया, पं.सखाराम आदि।

ग्वालियर की सरोद परम्परा में उल्लेखनीय नाम हैं-

गुलाम अली खाँ नन्हे खाँ, हाफिज अली खाँ, मुबारक अली खाँ, रहमत अली खाँ, अमजद अली खाँ आदि।

ग्वालियर की तबला पखावज परम्परा में उल्लेखनीय नाम हैं -

कुदऊ सिंह, जानकी प्रसाद, जोरावर सिंह, सुखदेव सिंह, पर्वतसिंह, मानवसिंह, रामप्रसाद, अयोध्याप्रसाद, रज्जनलाल आदि।

इसके अतिरिक्त वादनाचार्यो में गुलाब खाँ, चाँद खाँ, मुराद खाँ, शेर खाँ, सरदार खाँ (सारंगी) अमीर खाँ, भैय्यासाहेब मालवणकर, केशवराव गडकर (सितार) केशवराव सुरंगे (वायलिन) ग्वालूहेरकर (जलतरंग) एकनाथराव पंडित (बीन) आदि। अनेक वर्षो की परंपरा, उच्चकोटि के गुरू और कई पीढ़ियों की गुरू शिष्य परम्परा के गर्भ से ही किसी घराने की सुस्पष्ट धारणा का जन्म होता है। घराने से तात्पर्य है ऐसी किसी सुदीर्घ पृष्ठ तथा तपी हुई विशिष्ट संगीत शैली की परम्परा से, जिसका निर्वाह विधिवत् अनुशासनबद्ध एवं अनवरत रूप से वंश परंपरा और शिष्य परम्परा में होते चला आ रहा हो।

मेरे अनुसार यदि घराना शब्द को परिभाषा में आबद्ध करना है तो कहा जा सकता है, 'संगीत में घराना वह परम्परा है जिसकी स्वर तालादि अंगों की भिन्नता से विशिष्ट पहचान होती है तथा शैली में मूल विशेषताओं का सिलसिला बना रहता है। प्रचलित रागों का ही गायन, जोरदार तथा खुली आवाज का गायन, परम्परागत गायकी, ध्रुपद अंग के ख्याल, डबल-स्वरों का प्रयोग, बोलताने, लयकारी, गमक तथा जबड़े का प्रयोग साधारण विलंबित लय का प्रयोग, राग का स्वरूप स्पष्ट एवं शुद्ध रूप से प्रस्तुत करना आदि विषेशताओं के कारण ही ग्वालियर

परम्परा की गायकी वर्तमान में प्रचलित घरानों में अग्रणी मानी जाती है। ग्वालियर घरानें की गायकी में जहाँ एक ओर ध्रुपद-धमार, टप्पा, तराना आदि के अंगों को कुषलता से समावेष किया गया है, वहाँ दूसरी ओर इस घरानें की गायकी में ध्रुपद में ख्याल के विकास के स्पष्ट प्रमाण भी मिलते है।

ग्वालियर घराने की गायकी में स्वर, एवं लय का अद्‌भुत सामंजस्य रखते हुए सभी अंगों का संतुलित अनुपात में प्रयोग किया जाता है। इसलिए इसे 'अति प्राचीनतम' सर्वांगीण घरानेदार गायकी कहा जाता हैं

ग्वालियर घराने को अन्य घरानों की 'गंगोत्री' कहा जाता है। इसका अर्थ है कि ग्वालियर घराने के पश्चात् आगरा, किराना, सहसवान, आदि जो अन्य घराने निर्माण हुए है उनका प्रेरणास्रोत ग्वालियर घराने की गायकी ही है।

ख्याल की आकृति (Form) ग्वालियर की गायकी ने सिद्ध की। उसी के आधार पर अन्य घरानों के आधार पुरूशों ने कुछ विशिष्य सौंदर्य तत्वों पर आधारित अपनी गायकी का आविश्कार किया है।

इस परम्परा के संगीताचार्यों ने ग्वालियर में एवं ग्वालियर से अन्यत्र जाकर भारतीय संगीत को जीवित व सुरक्षित रखने में, उसको प्रचलित एवं प्रतिष्ठित करने में, उसके विकास प्रचार एवं प्रसार में जो योजनापूर्वक कार्य किये है वे निम्नानुसार है -

असंख्य रागों का सृजन

सावंती, मानशाही-कल्याण, रामदासी-मल्हार, नायकी-कान्हड़ा, गुर्जरी तोड़ी, प्रणवेंद्र-मध्यम, लगनगंधार, निदियारी, भवानी केदार, दरबारी-कान्हड़ा, मियाँ की तोड़ी, मियाँकी-सारंग आदि।

संगीत संबंधी मासिक पत्रों का सर्वप्रथम प्रकाशन

सन् 1885 में 'संगीत दर्पण' मासिक पत्रिका का सर्वप्रथम प्रकाशन पं. बालकृष्ण बुवा इचलकरंजीकर ने किया।

सन् 1905 में 'संगीतामृत प्रवाह' मासिक पत्रिका का प्रकाशन पं. वि. दि. पलुस्कर ने किया।

सन् 1947 में पं. शंकरराव व्यास, पं. वी. आर. देवधर, पं. नारायणराव व्यास आदि ने संगीत कला विहार मासिक पत्रिका का प्रकाशन किया।

ध्वनि मुद्रिकाएँ

ग्वालियर संगीत परम्परा के मूर्धन्य गायनाचार्यों की लगभग 250 से अधिक ध्वनिमुद्रिकाएँ तैयार की गई जिससे यह प्रमाणित होता है कि इस परम्परा के गायक कितने लोकप्रिय थे।

पुस्तकों का प्रणयन

संगीत के प्रायोगिक एवं शास्त्र संबंधी लगभग 300 पुस्तकों का प्रणयन एवं प्रकाशन जिनमें कुछ उल्लेखनीय है -

मानकुतूहल, संगीतसार, सहसरस, प्रणवभारती, संगीत कला प्रकाश, संगीतोपासना, अनूपराग विलास, भारतीय संगीत माला, व्यास कृति, राष्ट्रीय संगीत, राग बोध, प्रवीण दर्शिका, ग्वालियर घराना, राग-विज्ञान, संगीतांजलि, द्रावरंग लहरी आदि।

नवीन शैलियों का आविश्कार/परिष्कार

अनेक नवीन शैलियों का आविष्कार/परिष्कार किया जिनमें उल्लेखनीय है -

ध्रुपद, धमार, अष्टपदी, सामवेदी ऋचाओं का गायन, टपख्याल, ख्यालनुमा आदि।

स्वरलिपि पद्धतियों का आविश्कार

पं. वि. दि. पलुस्कर, पं. अनंत मनोहर जोशी, पं. कृष्णराव पंडित, द्वारा स्वतंत्र स्वरलिपि पद्धति का आविष्कार एवं पं. नारायण मोरेश्वर खरे द्वारा रागवर्गीकरण की रागांग पद्धति का आविष्कार।

ध्रुपद शैली के असंख्य पदों की रचना

राजा मानसिंह तोमर, नायक बैजू बक्शू, धोंडू, चरजू एवं संगीत सम्राट तानसेन द्वारा ग्वालियर परम्परा की लगभग 400 बंदिशों की स्वरलिपि का निर्माण

एवं पं. भातखण्डे जी की क्रमिक पुस्तक मालिका में अग्रणी स्थान इंगित करता है कि इस परम्परा की बंदिशें कितनी प्रामाणिक एवं लोकप्रिय थी।

सांगीतिक संस्थाओं की स्थापना

लगभग 70 सांगीतिक संस्थाओं की स्थापना जिनमें से प्रयाग संगीत समिति इलाहाबाद एवं अ. भा. गा. मंडल, मिरज सस्थाओं का विश्वविद्यालय के रूप में मान्यता प्राप्त करना।

शिष्यों का निर्माण

गुरू शिष्य परम्परा के अंतर्गत लगभग 550 से अधिक प्रसिद्ध एवंसुयोग्य शिष्यों का निर्माण ।

विदेशों में भारतीय संगीत का प्रचार-प्रसार

इस परम्परा के वरिष्ठ संगीताचार्यों द्वारा विदेशों में अनेक बार दौरे कर भारतीय संगीत का प्रचार एवं प्रसार किया गया।

राष्ट्रीय पुरस्कार

ग्वालियर परम्परा के संगीतज्ञों को निम्नानुसार राष्ट्रीय पुरस्कार दिये गये हैं जैसे-

पद्म भूषण, पद्मश्री, केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी के अॅवार्ड/फेलोशिप, संगीत नाटक अकादमी राज्य सरकार के पुरस्कार आदि।

इसी से यह कल्पना की जा सकती है कि इस परम्परा के संगीतचार्यों का कार्य कितना अभूतपूर्व था।

ग्वालियर परम्परा की संगीत की विधिवत् शिक्षा अधिक से अधिक विद्यार्थियों को सुलभ कराने हेतु ग्वालियर में अनेक सांगीतिक संस्थाओं की स्थापना की गई है जिनमें उल्लेखनीय है -

शंकर गांधर्व महाविद्यालय, माधव संगीत महाविद्यालय, भारतीय संगीत महाविद्यालय, चतुर संगीत महाविद्यालय, महारूद्र संगीत महाविद्यालय तथा राजा मानसिंह तोमर संगीत एवं कला विश्वविद्यालय।

इन संस्थाओं में कार्यरत् कुशल संगीताचार्यो ने संगीत विद्या का मुक्त हस्त से दान करते हुये संगीत जगत को अनेक उच्चकोटि के गायक-वादक कलाकार एवं योग्य शिक्षक प्रदान किये हैं। भारतीय संगीत के शैक्षणिक क्षेत्र में ग्वालियर की इन संस्थाओं का अभूतपूर्व योगदान रहा है। इन संस्थाओं से संगीत की विधिवत शिक्षा ग्रहण कर अनेक गायक-वादक कलाकार एवं शिक्षक संपूर्ण भारत में भारतीय संगीत के विकास प्रचार एवं प्रसार में संलग्न हैं।

वस्तुतः जहाँ एक ओर ग्वालियर राज्य के तोमर एवं सिंधिया-वंशीय नरेशों ने अनेक विद्वान संगीताचार्यों को उदारता से आश्रय देकर संगीत कला को जीवित एवं सुरक्षित रखने में अद्वितीय योगदान दिया है, वहीं दूसरी ओर ग्वालियर परम्परा के संगीताचार्यों ने अनेक सांगीतिक संस्थाओं की स्थापना कर, असंख्य बंदिशों की रचना कर, विशाल शिष्य-प्रशिष्य परम्परा का निर्माण कर भारतीय संगीत को लोकप्रिय बनाने में तथा उसके प्रचार-प्रसार में अभूतपूर्व योगदान दिया है। इसलिये ग्वालियर नगरी को 'संगीतकारों की प्रथम स्थली' एवं 'संगीत कला की तीर्थस्थली' कहा जाता रहा है। अतः हम निःसंदेह पूर्वक कह सकते हैं कि ग्वालियर की संगीत परंपरा एक समृद्ध परंपरा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. शर्मा, डा. दीपक, ग्वालियर घराने की ख्याल गायकी, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
2. बांगरे, डा. अरूण, ग्वालियर की संगीत परंपरा, कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।
3. संगीत कला विहार (पत्रिका) मिरज, नवम्बर 2006।
4. कलाकुंज भारती (पत्रिका) लखनऊ, मई 2014।

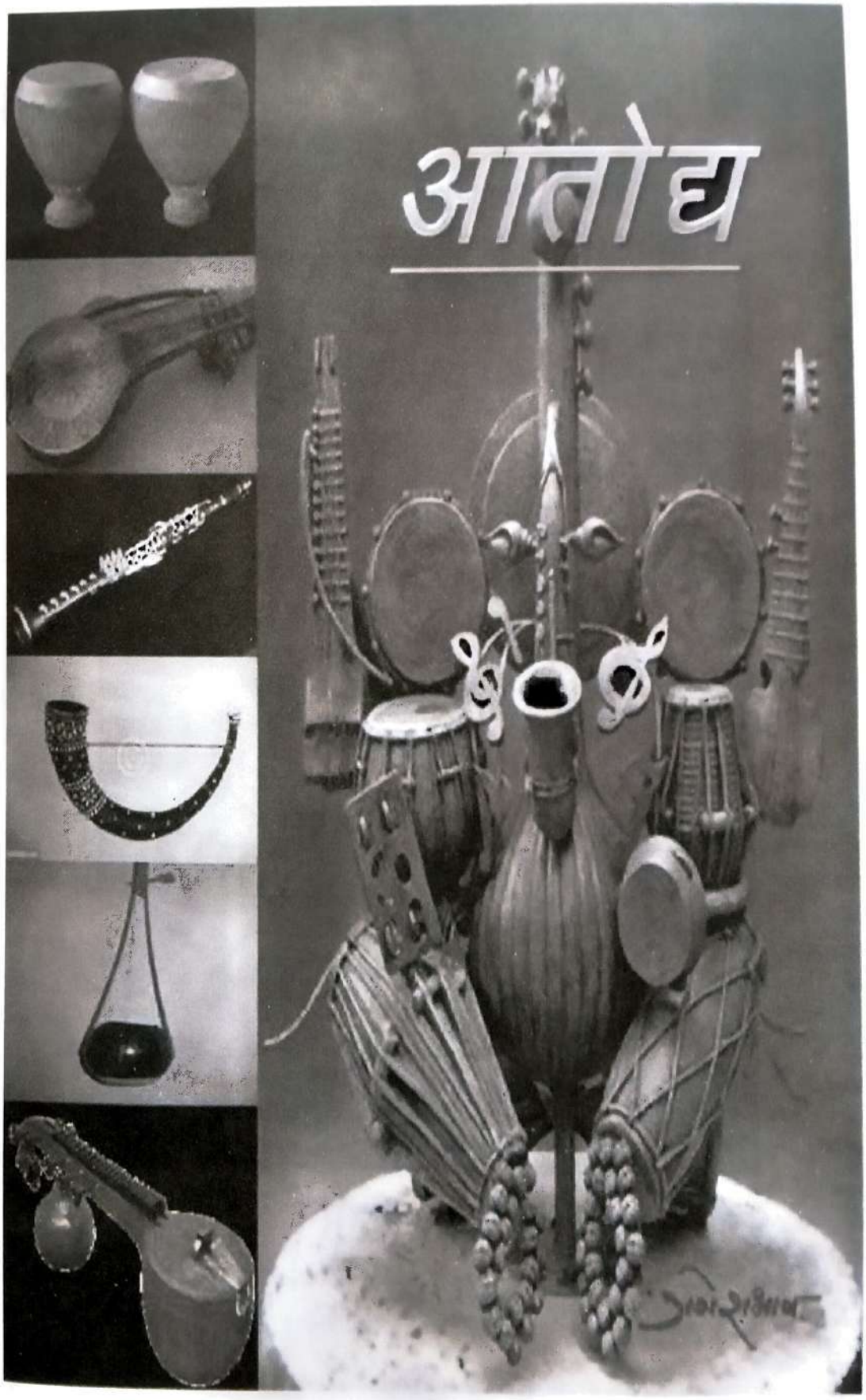
आतोद्य

ए. आर. रहमान

Sarasvati Veena and Fretting –an Overview

Dr. Shanti Mahesh

Assistant professor Dept. of Music, Queen Mary's College, Chennai

Introduction Veena is known to us as Stringed instument from the ancient era. Yagnavalkya Maharishi observed

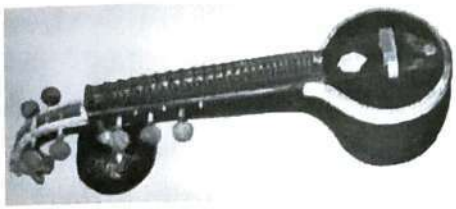

7"Veena vadana tatvagjah Srutijaati Visarathah
Talagjascha$prayatnena mokshamargam sa gachchati ||" indicating that salvation can be effortlessly attained by rendering, executing Veena.

Veena instruments developed more like a tree which is branching out into instruments as diverse as the exotic harp-like Akasa (a veena that was tied up in the top of trees for the strings to vibrate from the currents of wind) and the Audumbari veena (played as an accompaniment by the wives of Vedic priests as they chanted during ceremonial Yajnas). Veenas ranged from one string to one hundred, and were composed of many different materials like eagle bone, bamboo, and wood and coconut shells.

While there are many varieties in Veena, Sarasvati Veena, Rudra Veena, Vichitra Veena are three quite popular forms Veena.

Sarasvati Veena is used in the system of Karnatik, i.e. South Indian Classical music, while Rudra Veena, Vichitra veena figure in the Hindustani or North Indian Classical music.

Sarasvati Veena

It is made of Jack Wood. The body of the Veena is made by joining three parts made out of jack wood. The kudam is the larger resonator. The hollow gourd is covered with a flat piece of wood. The trunk is joined to the kudam at kankana. The curved structure at the end with decorative designs is attached at the other end of the trunk. This part is called the yali. It is at the base of the yali that the pegs or birdai of the four main strings are attached. The fingerboard called the dandi that is fixed on to the trunk is made of a special kind of wax that is made by mixing two kinds of beeswax, paraffin wax and charcoal powder. The frets called 'mettu' are made

out of bronze and fixed on the dandi at specific distances. There are seven strings on the Veena. Four of these are the main strings tuned to shadjam and panchamam of two octaves used to play the raaga and the remaining three are drone strings also used to keep time. All seven strings are tied together at the base of the kudam called nagapasham. Each string passes through beads known as langar before they reach the sound board where there are two bridges. The larger one is used for the four main strings while the smaller one is used for the drone strings. Each drone string also has its own pegs on the trunk. The strings are played using a wire plectrum on the index and middle finger. The drone strings are played with the thumb. A second resonator is attached to the bottom of the trunk at the other end for a deeper sound.

"The current form of the Saraswati veena with 24 fixed frets evolved in Thanjavur, Tamil Nadu, during the reign of Raghunath Nayak and it is for this reason sometimes called the Tanjore veena, or the Raghunatha veena.

The Four main strings are tuned as

STRING	STHANA
SARANI – FIRST STRING	MADHYA STHAYI SHADJA
PANCHAMA- SECOND STRING	MANDRA STHAYI PANCHAMA
MANDRA- THIRD STRING	ANUMANDRA STHAYI SHADJA
ANU MANDRA- FOURTH STRING	ANUMANDRA STHAYI SHADJA

There are three strings- referred to as Drone strings, Tala strings are used for having the fine pitch and rhythm. They are tuned as:

STRING	STHANA
FIRST TALA STRING	MADHYA STHAYI SHADJA
SECOND TALA STRING	MADHYA STHAYI PANCHAMA
THIRD TALA STRING	TARA STHAYI SHADJA

"The current form of the Saraswati veena with 24 fixed frets evolved in Thanjavur, Tamil Nadu, during the reign of Raghunath Nayak and it is for this reason sometimes called the Tanjore veena, or the Raghunatha veena.

Prior to his time, the number of frets on the veena were less and also movable.

There are 24 frets which are made of brass bars set into wax. 24 brass or bell-metal frets set in scalloped black wax.

The Svarastahans given by pressing the frets

F.N.	STRING 1	STRING 2
1.	Suddha Rishabha	Suddha Dhaivata
2.	Chatusruti Rishabha	Chatusruti Dhaivata
3.	Sadharana Gandhara	Kaisiki Nishada
4.	Antara Gandhara	Kakali Nishada
5.	Suddha Madhyama	Shadja
6.	Prati Madhyama	Suddha Rishabha
7.	Panchama	Chatusruti Rishabha
8.	Suddha Dhaivata	Sadharana Gandhara
9.	Chatusruti Dhaivata	Antara Gandhara
10.	Kaisiki Nishada	Suddha Madhyama
11.	Kakali Nishada	Prati Madhyama

It may be noted that the twelfth Fret gives Tara Sthayi Shadja in the first string and Madhya Sthayi Panchama in the second string, the sthanas are the same as indicated above in the next Sthayi or octave.

The Third string sthanas are similar to that of the first and the fourth to the second as the Sthanas are similar and only Sthayi differs.

The Frets are fixed with Bee Wax. Fretting Honey is stored by honey bees in their beeswax honeycomb; in framed bee hives, the honey is stored on a wooden structure called a frame. The honey frames are typically harvested in the late summer, when they will be most filled with honey. On a completely filled frame, the cells will be capped over by the bees for storage; that is, each cell containing honey will be sealed with a capping made of beeswax. It is accomplished using an automated uncapper machine or with a manually-operated uncapping knife. Usually, these tools are used together, along with a pronged cappings fork. To facilitate cutting off these wax cappings, the knife is often heated. The removed bits of wax, called cappings, are rich in honey which can be slowly drained off with the help of some heating. This 'cappings wax' is very valuable and often used to make candles or other products.

Bee wax is processed to glue the frets. As observed very few technicians like Mr. Venkateswaran son of Mr. Govinda Swami strictly adhering to his fathers lineage in construction of Veena, its fretting use pure Bee Wax. There are technicians who mix Candle Wax, chemical Kungiliyam in proportion for setting the wax. Fixing the frets is indicated by the word 'Melam' .

Proportion like

One Kilogram of Bee Wax with One and a half Kilograms of Candle Wax and half a Kilogram of Kungilium is used. The chemical Kungilium is considered by many to give stiffness to the wax, but few techinicians like Mr. Venkateswaran, plus performers like me find fretting made with Bee Wax alone more comfortable and durable and the mixture little brittle feel.

Kerosene is used for final finishing of the Fretting. The wax is coloured black with the poeder made by burning the roots of Palm Tree.

To have perfection in Sthanas of each Fret, it is best for a performer to check while the fretting is done by the technician by hearing the harmonics heard in the four main strings after them faultlessly in Pitch.

Harmonics heard for example

STRING	SVARA STHANA	HARMONIC STHANA
SARANI- FIRST	i) SUDDHA-MADHYAMAi	i) SHADJA
	i) PANCHAMA	ii) PANCHAMA
PANCHAMA-SECOND	i) SHADJA	i) PANCHAMA
	ii) GANDHARA	ii) KAKALI NISHADA
MANDRA-THIRD	SHADJA	PANCHAMA
ANUMANDRA-FOURTH	SHADJA	PANCHAMA

Each fret may be thoroughly checked with harmonics, Sthana revealed perfectly when the performer checks and it would definitely enable perfection while sounding the Veena.

About fifteen years before, Karaikudi. Shrimati. Rajeswari Padmanabhan (1939-2008)- a performer from her age of nine, belonging to the ninth generation of the Karaikudi Veena Gharana who has mesmerised listeners all over our universe, innovated fretting with Acrylic substituting the Bee Wax.

Acrylic sheet is processed to place the frets in position. The advantage of using Acrylic Melam is the Frets are in position at any climate. Wax gets softer in hot weather displacing the position of fret.

Note:

Melam is a word also used in Karnatik music in many contexts like
Mela indicates system of ragas, Melam indicating music by group of instruments like Nagasvara, Ottu, Tavil.

Bibliography and Citations

i) What is Veena - veena class in mississauga veena lesson in ...
ii) www.veenasaraswathi.com/What_is_Veena.html
iii) Know Your Instrument: Saraswati Veena – Life Is Music
iv) www.lifeismusic.in/blog/know-your-instrument-saraswati-veena/
v) Beeswax - Wikipedia, the free encyclopedia
Images from
Images for Sarasvati Veena.

आफताबेहिन्द बाबा अल्लाउद्दीन खाँ

डॉ. सीमा कपूर

शिक्षिका, प्रयाग संगीत समिति, इलाहाबाद

भारत का गौरव आफताबे हिन्द, पद्म भूषण पद्म विभूषण संगीत नायक, देशीकोत्तम इत्यादि अनेक अलंकरणों से विभूषित महान संगीत तपस्वी स्वनामधन्य कलाकर उस्ताद अलाउद्दीन खाँ ने अपनी अलौकिक आभा से न केवल सम्पूर्ण जगत को प्रकाशमान किया अपितु अपने जीवनकाल में निजी साधना के अतिरिक्त पूरे संगीत जगत को इतने गहरे ढंग से प्रभावित किसी ने किया हो ऐसा उदाहरण प्राप्त नहीं होता।

बाबा ने कई वर्षो तक विषय परिस्थितियों से संघर्ष कर अपनी अथक साधना व तप द्वारा विभिन्न गुरूओं से संगीत ज्ञान अर्जित किया तथा विभिन्न वाद्यों सरोद, वायलिन, वलेरियोनेट, कार्नेट, शहनाई, रबाब, सुरबहार व सुरसिंगार आदि में तकनीकी ज्ञान व निपुणता हासिल की।

उस्ताद अलाउद्दीन खाँ ने अपनी विलक्षण प्रतिभा से न केवल भारत अपितु विदेशों के संगीतानुरागियों को भी अत्यधिक प्रभावित किया एवं भारतीय संगीत का प्रचार प्रसार किया।

उस्ताद अलाउद्दीन खाँ ने अपनी छत्र-छाया में गायन तथा विभिन्न स्वरवाधों सरोद, वायलिन सितार, सुरबहार, बाँसुरी इत्यादि का प्रशिक्षण देकर एक विशाल शिष्य परम्परा कायम जो आज तन्त्रवाद्य के क्षेत्र में 'मैहर सेनिया घराने के नाम से विश्व में विख्यात है। इस सन्दर्भ में पुत्र उस्दाद अली अकबर का कथन है कि–

'बाबा ने जिस शैली का प्रचलन किया वह ध्रुपद पर आधारित होते हुए भी उनकी विशिष्ट पद्धति थी जिसे आज सनिया मैहर अथवा मैहर शैली या मैहर घराना कहा जाता है इसमें ध्रुपद, ख्याल, टप्पा, ठुमरी के विविध रसों का एक साथ आस्वादन हो जाता है।[1]

देने की क्षमता जैसा अभूतपूर्ण प्रदर्शन बाबा अलाउद्दीन ने किा वह अन्यत्र दुर्लभ है। जो कुछ भी उन्होंने अर्जित किया था वह बिना किसी भेदभाव के अपने शिष्यों के बीच वितरित किया।

बाबा द्वारा मैहर घराने रूपी अरोपित बीज को पल्लीवत पुष्पित करने तथा बाबा के मैहर घराने रूपी उपवन को सजाने सवाँरने का श्रेय बाबा के सुयोग्य पुत्र एवं शिष्य उस्ताद अली अकबर खाँ पं. निखिल बनर्जी, उस्ताद बहादुर खाँ पं. ज्योतिन भट्टाचार्य तथा श्री पन्ना लाल घोष सरीखे शिष्यों एवं प्रशिष्यों को जाता है।

उस्ताद अलाउद्दीन खाँ भारतीय शास्त्रीय संगीत के कण्ठ और वाद्य (विशेष रूप से सरोद) दोनों कला माधुर्य के अनन्य उपासक व साधक रहे। आप ऐसे प्रथम सरोद वादक थे जिन्होंने सदोद बाएँ हाथ से बजाया और सरोद वाद्य पर दारा बोल प्रारम्भ किया। इससे पूर्व सभी वादक दाहिने हाि से बजाते हुए दिर-दिर बोल ही प्रयुक्त करते थे। आपने सरोद जैसे क्लिष्ट सारिका विहिन वाद्य पर कृन्तन व जमजमें के कार्य को भी प्रारम्भ किया। आपने तत्कालीन सरोद वाद्य की आकृति व मुख्य तारों में संशोधन व

परिवर्धन भी किया। जिसके फलस्वरूप वाद्य की ध्वनि प्रभावशाली हुई व आस भी बढ़ गयी।

बाबा उस्दात अलाउद्दीन खाँ ने अपने बहुमुखी अनुभव से वाद्य संगीत का क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत कर सभी अंगों को कलापूर्ण ढंग से शृंखलित कर एक सुव्यवस्थित एवं क्रमवद्ध रूप प्रदान किया जिसमें आलाप जोड़ लड़ी लड़लपेट, ठोंक झाला, तारपरन, धुँआ, माठा, कत्तर, विलम्बित मध्य एवं द्रुत शत, झाला, (जिसमें साथ संगत की विशेषता भी थी), ठुमरी या धुन सभी का अद्‌भूत समन्यवय था।

बाबा की वादन शैली के विषय में पं. रवि शंकर की मान्यता थी–

'बाबा की वादन कला में आध्यात्मिक पुटथा, उनका संगीत उन्तर्मुखी था। उनके वादन में इतने सच्चे सुर लगते थे कि उनकी दो तान लेने से ही हमारी आँखों में आँसू आ जाते थे। बचपन से ही मिली संगीत शिक्षा की हर चीज का प्रभाव उनके संगीत में था, जितने भी वाद्य उन्होंने सीखे थे उन सबकी विशेषताओं को अपनी वादन शैली में ढाल लिया था, अतः उनकी वादन कला अत्यन्त समृद्ध शील हो गयी थी।'[1]

बाबा उस्ताद अलाउद्दीन खाँ के शिष्य सुप्रसिद्ध बायलिन वादक पं. रॉविन घोष का बाबा की वादन शैली के सन्दर्भ में कथन है कि–

'बाबा जैसे महान पुरूष के लिए मैं कुछ भी कहने में असक्षम हूँ। एक पर्वत या सागर का वर्णन कैसे किया जा सकता है। उनके वादन में अत्यन्त गम्भीय एवं गहनता थी। उनके द्वारा प्रयुक्त अलंकार भीड़, कृन्तन, रामक एवं कठिन लयकारियों ने भारतीय शास्त्रीय संगीत को नई दिशा दी।'[2]

'साजों के जादूगर' नाम से विख्यात उस्ताद अलाउद्दीन खाँ साहब ने अपनी कल्पना शक्ति एवं असाधारण बुद्धिमता से चार अनूठे नवीन वाद्य यन्त्रों सितार बैन्जों, सारंगा, नलतरंग व चन्द सारंग का सृजन कर वाद्य संगीत को समृद्ध शील बनाया।

बाबा द्वारा संस्थापित मैहर कॉलेज ऑफ मैहर वाद्यवृन्द (मैहर बैण्ड) की संयोजना अनमोल देन है।

उस्ताद अलाउद्दीन खाँ ने अपनी सृजनात्मकता व परम्परा का अद्‌भूत समन्वय स्थापित करते हुए अपने नवीन रागों की सृष्टि भी की जिनमें हेमन्त, हेमन्त भैरव, हेम विहाग, मदन मंजरी, प्रभाकली, शुभावती, सुरसति, दुर्गेश्वरी, भुवनेश्वरी, धवलेश्वरी, राजेश्री, मुहम्मद, माँझ खमाज, मलय, दीपिका, चण्डिका, माधव श्री, माधव गिरी, गांधी गांधी बिलावल, रविन्द्र उल्लेखनीय है।'[3]

उस्ताद अलाउद्दीन अपने शिष्यों को सदैव एक ही वाद्य चुनने की सलाह देते थे। वे कहा करते थे 'एक साधे सब सधे सब साधे सब जाये।' यर्थात वे स्वयं कई वाद्यों को बजाने में सिद्धहस्त थे किन्तु वह एक सरोद व वायलिन वादक के रूप में ही प्रमुख रूप से जाने गये।

बाबा की शिक्षा प्रणाली में विद्यार्थी को स्तर, छंद व राग विस्तार का ज्ञान एक साथ हो जाता था। बाबा मुख्यतः तीन थाटों पर ही जोर देते थे–कल्याण (मयन), भैरव व काफी उन्होंने विद्यार्थियों हेतु सुर साधने के लिए 'राग यमन' में बन्दिश की रचना भी की थी जो इस प्रकार है–

'सुर साधों गुनी, सुर को पहचानो
सुर को जो नहीं पहचाने सो ही तो निर्गुनी
बेसुरा गायक वादक सो ही विष खावत
सुर ज्ञान जो करे करत अमृत पान"

बाबा ने अति विलिम्बत रात बजाने की अपनी विशेष पद्धति प्रारम्भ की यद्यपि पहले सभी मसीतर बानी गातें ही बजाते थे। आपने विभिन्न रजाखानी गलों की भी रचना की।

उस्ताद अलाउद्दीन खाँ ने अपने गुरू उस्ताद वजीर खाँ के नाम पर 'वजीरखानी गत' को भी ईजाद किया। यह गतें ध्रुपद पर आधारित रहती है तथा साधारणतया सम से प्रारम्भ होती हैं।

किसी भी राग को बाबा निम्न क्रम से बजाते थे–अति विलमिब्त गत, मध्य गत, विलम्बित गत, मध्य द्रुत गत तथा अति द्रुत गत।

इसमें बोलों का विशेष महत्त्व नहीं रहता था केवल 16 मात्रायें ही होती थीं। बाबा ने द्रुत गतों

को सम से (विशेषकर जमजमे की गत) प्रारम्भ करने की अपनी विशेष पद्धति प्रारम्भ की। बहुत सी द्रुत गतें तराने पर भी आधारित रहती थीं।

बाबा द्वारा निर्मित राग भैरवी में तराने की गत इस प्रकार है–

राग भैरवी
ताल/तीनताल
(तराने की गत)

स्थाई–

स संस नि सं - ध - ग - म नि सं - सं - पध निध पम
ता दिर ता ना ऽ ता ऽ ता ऽ न दि म ऽ ता ऽ दिर दिर दिर
प, ग म - सरे गरे गम गम पम पध धप मग रेस निस
तुमता ना ऽ ब्रेदा रेंब्रे दारे ब्रेदा रेंब्रे दारे ताना ताना तान दिन

अन्तरा–

स संसं नि सं - ध - ग - म नि गं - सं - सं गंगं रें
ता दिर ता ना ऽ ता ऽ ता ऽ न दि म ऽ ता ऽ ना दिर ता
गं - मं - गंरें सांनिधपमग रेस स सं - स -
ना ऽ ता ऽ तुम ताना ताना तानाताना ता दिम ऽ दिम ऽ

(उपर्युक्त गत में स्तरों के साथ लिपि में बोलों के स्थान पर तराने के बोल निबद्ध किये गये हैं। स्थाई व अन्तरे दोनों का प्रारम्भ सातवीं मात्रा से है तथा दोनों को दो-दो आवर्तन में निबद्ध किया गया है। गत रचना की विशेष बात यह है कि स्थाई व अन्तरे दोनों के उठान में मध्य व तार सां का एक साथ प्रयोग हुआ है जो स्वरों के सप्तक उछाल का द्योतक है। दूसरी विशेष बात यह है कि स्थाई व अन्तरे दोनों में स्वरों को उत्तरांग में प्रमुखता से निबद्ध किया गया है।)

उस्ताद अलाउद्दीन खाँ द्वारा स्थापित मैहर वाद्यवृन्द की रचनाये मुख्यतः शास्त्रीय एवं सरल शास्त्रीय रागों पर आधारित हैं। वाद्यवृन्द में राजस्थानी, घूमर, माँड (केसरिया बालम), कलकत्ता की बाउल धुन, मालवा की लोकधुनें तथा पाश्यत्य धुनों पर आधारित रचनायें सुनने को मिलती हैं। किसी भी राग के स्वरों को अलग-अगल प्रकार से अभिव्यक्त करना आपके द्वारा रचित वाद्यवृन्द की रचनाओं का मुख्य वैशिष्टय है।

पाश्चात्य शैली 'वोलगा' धुन ताल/दादरा पर आधारित रचना

स्थाई–

प ऽ प प ध प म प म ग म ग
रे ग रे ग म प म ऽ ऽ स ऽ ऽ
सा ऽ नि ध ऽ ऽ सा ऽ ऽ म ऽ ऽ
सा ऽ नि ध ऽ ऽ सा ऽ ऽ ध ऽ ऽ
प ऽ म रे ऽ ग म प ध म ऽ ऽ

तबले के घराने एवं उनकी विशेषताएं

डॉ. मंजू श्रीवास्तव

शिक्षिका, प्रयाग संगीत समिति, इलाहाबाद

ऐसा संगीत के विद्वानों का मानना है कि दिल्ली के निवासी सिद्धार खां ने पखावज के पटाक्षरों अथवा वर्णों को संयोजित करके तबले पर बजाने योग्य रचनाएं की जिन्हें उन्होंने पेशकार, कायदे, रैले, टुकड़े आदि नामकरण दिये तथा सर्वप्रथम स्वतंत्र तबला वादन की शैली को प्रचार में लाये। इस शैली को दिल्ली निवासी सिद्धार खां के वंशजों और शिष्यों ने भी अपनाया ओर उसे एक घराने की मान्यता दिलाई।

इसके पश्चात् दिल्ली घराने के शिष्य उत्तर भारत के विभिन्न शहरों में फैल गये तथा वहां अपनी प्रतिभा के आधार पर तबले के दिल्ली बाज (शैली) में कुछ परिवर्तन करके अपनी अलग पहचान बनाकर नये घरानों की स्थापना की। उत्तर भारतीय संगीत में तबले के छः घराने प्रसिद्ध हैं—(1) दिल्ली घराना, (2) अजराड़ा घराना, (3) लखनऊ घराना, (4) फर्रूखाबाद घराना, (5) बनारस घराना, (6) पंजाब घराना (स्वतंत्र घराना)

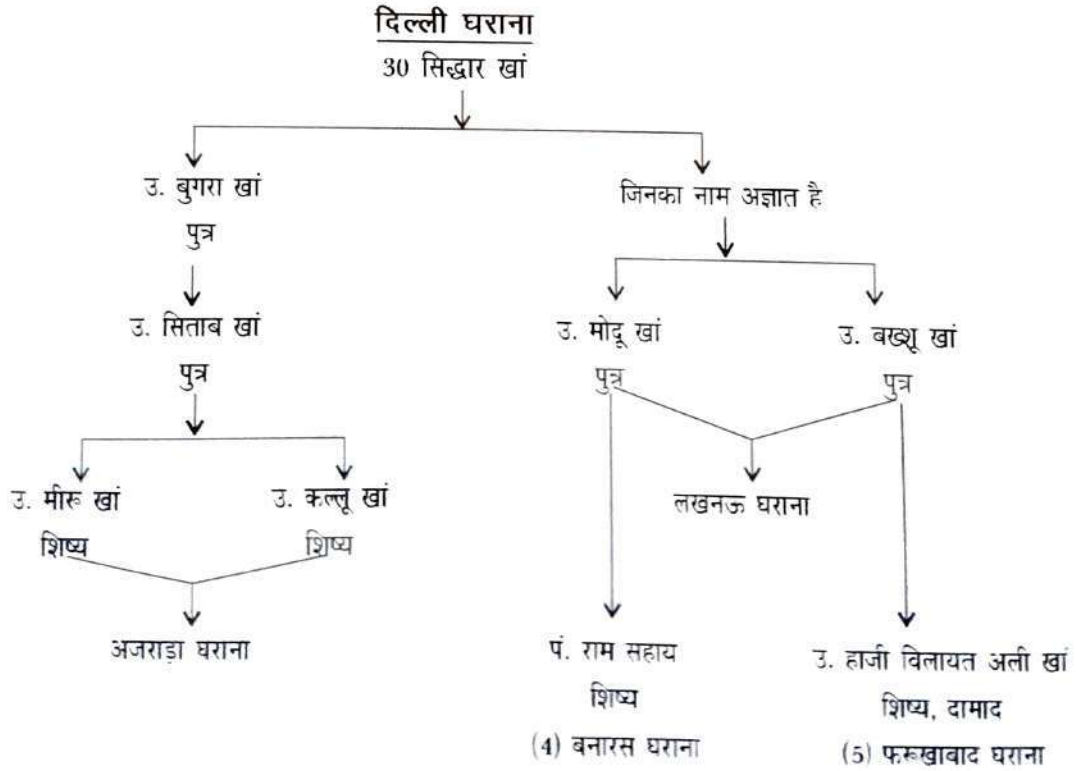

दिल्ली घराना

दिल्ली घराने की नींव उ. सिद्धार खां दाढ़ी वाले द्वारा मानी जाती है। पखावजी भवानी सिंह, खब्बे हुसैन ढोलकिया, नियामत खां 'सदारंग', खुसरो खां आदि कलाकार हुए। सिद्धार खां ने समय की मांग को समझते हुए पखावज के खुले बोलों को तबले पर बजाने योग्य बनाया, अंगुलयों के रख-रखाव में परिवर्तन किया और चांटी प्रधान कुछ नवीन विस्तारशील रचनाएं पेशकारा, कायदे, रेले तथा अन्य रचनाएं जैसे गत टुकड़े, मुखड़े-मोहरे आदि की रचना करके एक क्रांतिकारी कदम उठाया, आगे चलकर वंश परंपरा एवं शिष्य परंपरा ने उस घराने को सुदृढ़ किया तथा अन्य घरानो के जनक होने का गौरव प्राप्त किया।

सिद्धार खां के तीन पुत्र हुए; घसीट खां, दूसरे का नाम अज्ञात है, तीसरे बुगरा खां। बुगरा खां के पुत्र उ. नजर अली खां, दौहित्रे बड़े काले खां, वंशज शादी खां और शिष्य मीरू खां, कल्लू खां आदि हुए। बडे काले खां पुत्र बोली बख्श, पौत्र नत्थू खां, शिष्य उ. मुनीर खां एवं बादशाह बहादुर शाह जफर के पौत्र फिरोज खां दिल्ली वाले ने देशभर में ख्याति प्राप्त की। तबले के इतिहास में उ. मुनीर खां का नाम श्रेष्ठ उस्तादों में लिया जाता है। इनके शिष्य श्री उ. अहमद आन थिरकवा, अमीर हुसैन खां, गुलाम हुसैन खां, हबीबुद्दीन खां, शमशुद्दीन खां, नजीर हुसैन पानीपत वाले, चांद खां बिजनौरी, सुब्बा राव अंकोड़कर, विष्णुपंत शिरोड़कर, कृपाराम खब्बास, रहेमान खां, रहीम बख्श, बाबालाल इस्लामपुरकर आदि। इस परंपरा में लतीफ अहमद खां, फैयाज खां, बशीर अहमद, शफात अहमद खां, सुभाष निर्वाण, रफीउद्दीन साबरी, राम धुर्वे आदि हुए।

दिल्ली घराने की वादन शैली की निम्नलिखित विशेषताएं हैं–

"1. यह अत्यंत कोमल एवं मधुर बाज है।
2. यह दो अंगुलियों का बाज है।
3. इसमें तर्जनी एवं मध्य अंगुलियों का सर्वाधिक प्रयोग होता है। साथ ही अनामिका का भी प्रयोग होता है।

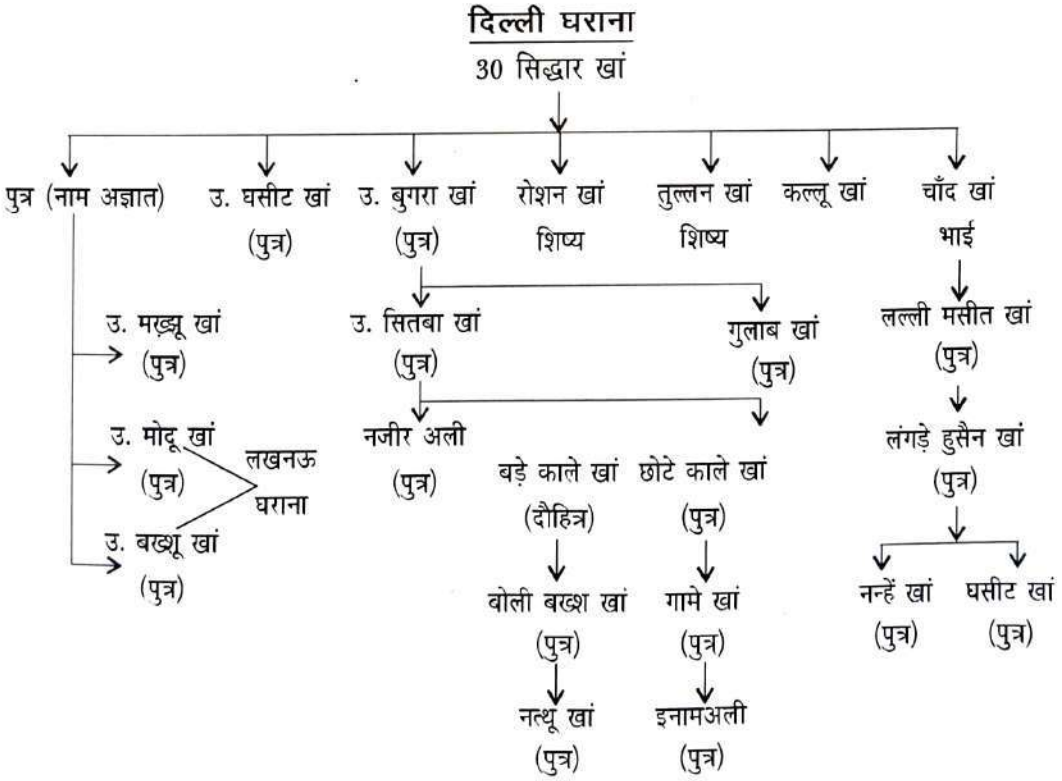

4. इस बाज में ध्वनि सीमित है। इसलिए इसे बंद बाज कहते हैं।
5. यह बाज चांटी प्रधान है, इसे किनार का बाज भी कहते हैं।
6. इसमें अधिकांशतः चतुरस्त्र जाति की रचनाएं होती हैं।''[1]

अजराड़ा घराना

''अजराड़ा घराने की स्थापना उ. सिताब खां के शिष्य मीरू खां और कल्लू खां द्वारा मानी जाती है''।[2] दिल्ली के निकट मेरठ जनपद में एक गांव है, जिसका नाम अजराड़ा है। वहां के मूल निवासी दो भाई मीरू खां और कल्लू खां ने दिल्ली आकर सिद्धार खां से तबले की शिक्षा ली और वापस जाकर इसे अजराड़ा घराने के नाम से स्थापित किया। इनकी वंश परंपरा में मोहम्मदी बख्श, चांद खां, काले खां, कुतुब खां, तुल्लन खां एवं घीसा खां हुये। लगभग 1940 ई. में उ. शंभू खां के पुत्र उ. हबीबउद्दीन खां संगीत जगत में अपना नाम रौशन किया। इन्होंने उ. मुनीर खां से शिक्षा प्राप्त की थी। उ. हबीबउद्दीन खां के पुत्र मंजू खां तथा शिष्यों में सर्वश्री सुधीर कुमार सक्सेना (बड़ौदा), हजारी लाल कथक (मेरठ), करण सिंह (इंदौर), राम धुर्वे, महाराज बनर्जी (कलकत्ता), पप्पन खां, यशवंत केलकर, श्रीधर शर्मा, महेशनाथ मिश्रा, राम प्रवेश सिंह (दरभंगा), अमीर मोहम्मद खां (टीक) अकरम खां आदि।

इस घराने की वादल शैली की विशेषताएं–

1. कायदे की रचनाओं का प्रारंभ सर्वप्रथम इसी घराने में हुआ व तर्जनी व मध्यमा अंगुलियों के साथ अनामिका उंगली का प्रयोग भी प्रारंभ हुआ।
2. बायें डग्गे का प्रयोग मोड़युक्त, सुंदर एवं दाहिने के बोलों से लड़ता हुआ होता है।
3. ये घराना कायदों की खूबसूरती और विविधता के लिए प्रसिद्ध है। कायदे 'धा' और धिं के अलावा कत, त्ति, धिगन, धेनक आदि बोलों से प्रारंभ होता है।
4. ''यह बाज आड़ी लय प्राधान्य है, इसलिए कुछ विद्वान 'धागेनतिनकधिन' के आधार पर, इसे कहरवा की डेढ़गुन का बाज भी कहते है''।[1]

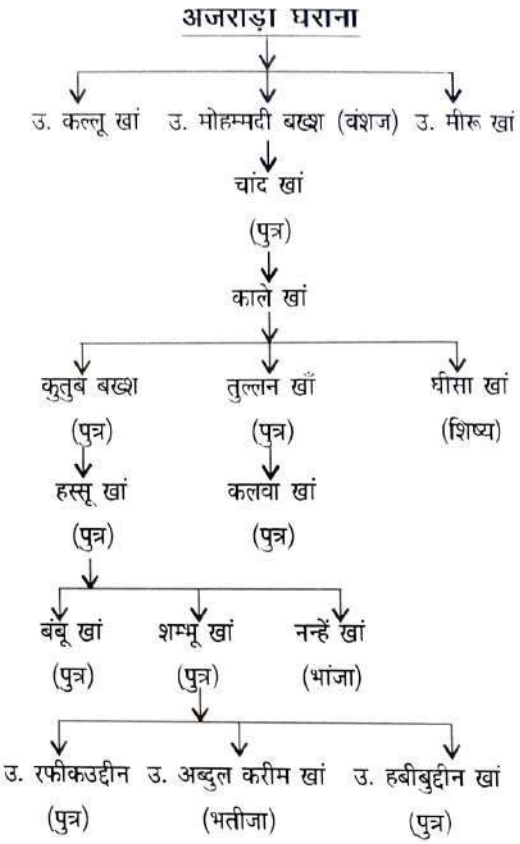

लखनऊ घराना

लखनऊ घराने की स्थापना उ. मोदू खां साहब जो कि नवाब आसुफुद्दौला के शासन काल में लखनऊ आये एवं उनके अनुज उ. बख्शू द्वारा हुई। नवाब वाजिद अलीशाह के समय में सैकड़ों गायक, वादक एवं नृत्यकार हुए। लखनऊ घराने में कथक नृत्य को महत्त्वपूर्ण माना गया, इसी कारण तबले का प्रचार-प्रसार अधिक हुआ। लखनऊ में नवाबों के संगीत प्रेमी होने के कारण सैकड़ों कलाकार जीविकोपार्जन की चिंता से युक्त होकर कला साधना में लीन हो सके तथा इन्हीं की छत्र छाया में तबले के लखनऊ घराने को उदित तथा विकसित होने का मौका मिला। उ. मोदू खां के पुत्र जाहिद खां अच्छे

तबला वादक के रूप में जाने जाते हैं। मोदू खां के शिष्यों में पं. राम सहाय मिश्र विशेष थे। मोदू खां की पत्नी के द्वारा भी पं. राम सहाय मिश्र जी को शिक्षा प्राप्त हुई। मोदू खां के दूसरे शिष्य मग्मन खां उर्फ ममू खां थे। उ. बख्शू खां के तीन पुत्र थे–मम्मन खां, सलारी खां तथा केसरी खां तथा उनके दामाद तथा शिष्य हाजी विलायत अली खां, जो फर्यखाबाद के निवासी थे। वे अपने युग के उत्कृष्ट तबला वादक थे। राजनेतिक स्थिति के कारण दिल्ली छोड़कर लखनऊ आये मोदू खां तथा बख्शू खां ने लखनऊ के स्थानीय सांगीतिक वातावरण, गीत एवं नृत्य के लिये उपयुक्त खुले बोल बंदिशों की रचना की।

चांटी के स्थान पर स्याही का अधिक प्रयोग, बाएं पर मोड़-घसीट; नृत्य के अनुसार लंबी गते एवं परने, नौहक्का, टुकड़े आदि विशेषताओं के साथ-धेत्, नगन्न, तकतक, धिड़ान, क्ड़ा, आदि बोल प्रकारों का बाहुल्य, ठुमरी के लिए लग्गी-लड़ियों का नया वादन आदि के कारण यहां तबले की अलग-वादन शैली का प्रादुर्भाव हुआ तथा इस नई परंपरा को 'लखनऊ घराना' के नाम से कहा जाने लगा।

लखनऊ घराने की विशेष्ता–

1. लखनऊ में पखावज और मृत्यु के प्रभाव से दिल्ली के बंद बाज, खुला और जोरदार हो गया।
2. यहां ध्वनि-निर्माण हेतु चांटी की अपेक्षा लव तथा स्याही का प्रयोग हुआ।
3. इस बाज में दो अंगुलियों में स्थान पर पांचों अंगुलियों का उपयोग होता है।
4. बाएं पर अंगूठे द्वारा भीड़, घसीट (घिस्सा) लगाने की भी प्रथा है।
5. इस बाज की विशेषता यह है कि इसमें कायदे की अपेक्षा परन्, गत-परन, टुकड़े, नौहक्का, चक्रदार, स्तुति अथवा श्लोक परने इत्यादि gSA[1]
6. "लखनऊ ठुमरी-गायन शैली तथा कथक-नृत्य के साथ पखावज बाद्य का प्रयोग होने के कारण उसके स्थान पर तबले का प्रयोग होने लगा"।[2]

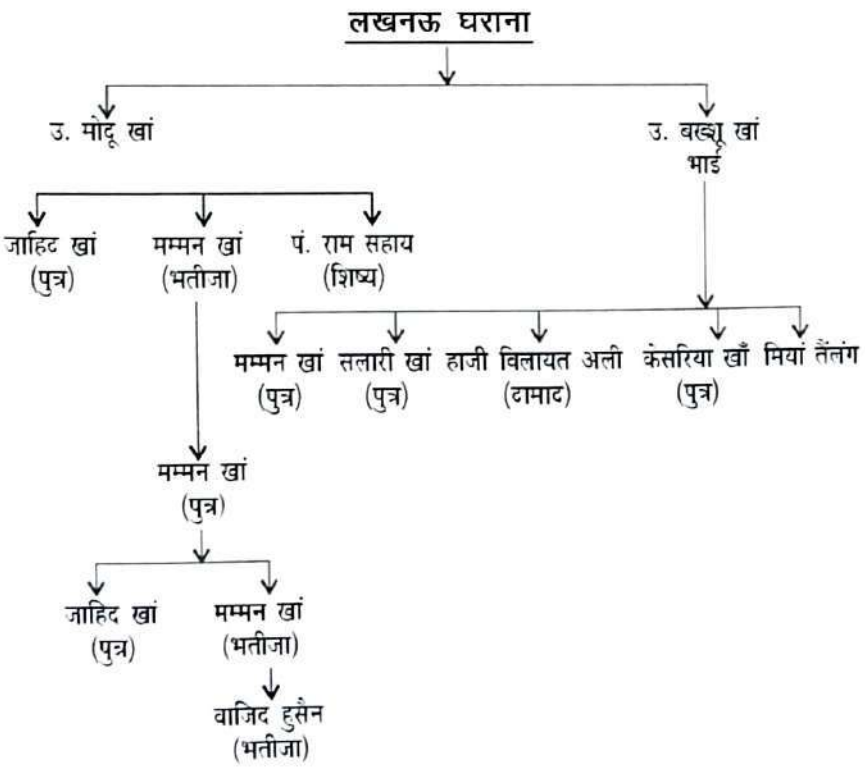

फर्रुखाबाद घराना

उ. विलायत अली खां फर्रूखाबाद घराने के प्रवर्तक माने जाते हैं। इन्होंने अपनी शिक्षा लखनऊ घराने के प्रवर्तक बख्शू खां से प्रापत की जो इनके गुरू तथा ससुर दोनों थे। ''उ. विलायत अली खां जी ने लखनऊ घराने के बाज में परिवर्तन करके एक नवीन शैली को जन्म दिया''।[1] हाजी विलायत अली के ज्येष्ठ पुत्र निसार अली खां तबले तथा पखावज के विद्वान एवं ज्ञाता थे। उनके शिष्यों में उनके छोटे भाई हुसैन अली खां का नाम प्रमुख है। इनके दूसरे पुत्र का नाम अमान अली खां जो तबला वादन में पारंगत थे। अमान अली खां के शिष्यों में पं. जियालाल का नाम नृत्य और तबला दोनों में अ‍ितीय थे। इलाहाबाद के स्व. प्रो. लाल जी श्रीवास्तव ने पं. जियालाल जी से तबले की शिक्षा प्राप्त की थी जिनके शिष्य-प्रशिष्यों की संख्या काफी लंबी है। हाजी विलायत अली खां के तीसरे पुत्र हुसैन अली खां जिन्हें अपने पिता से तबला विरासत में मिला था। उ. हुसैन अली खां की फर्रुखाबाद घराने के विस्तार ओर प्रचार में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। उनके शिष्यों में उ. मुनीर खां का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

इनके शिष्यों में उ. अमीर हुसैन खां, उ. गुलाम हुसैन खां, उ. अहमद जान थिरकवा, उ. नासिर खां, उ. हबीबुद्दीन खां (मेरठ) आदि थे।

हाजी साहब के एक प्रसिद्ध शिष्य पटना के मुबारक अली खां थे; उनसे इंदौर के उ. जहांगीर खां तथा लियाकत अली वगले ने शिक्षा प्राप्त की थी।

घराने की वादन शैली की विशेषताएं–

1. ''इस घराने में वादन का प्रारंभ गत से किया जाता है।
2. विभिन्न लयकारियों से युक्त गतों का प्रयोग।
3. फर्यखाबाद घराने में रेले और रौ का विशेष प्रयोग
4. तकतक, धिरधिर का विशेष प्रयोग बंदिशों का विशेष चलन आदि''।[2]

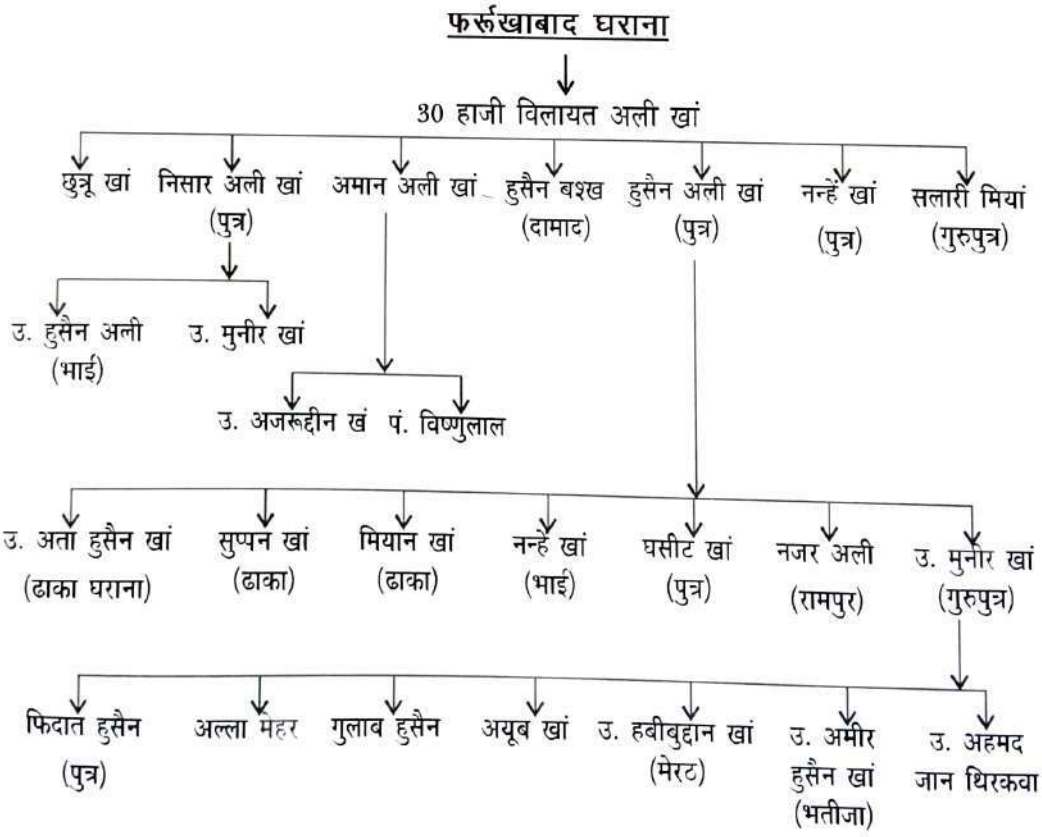

बनारस घराना

आधुनिक युग के तबला वादन के क्षेत्र में बनारस घराने की ख्याति विश्वव्यापी है। बनारस घराने के संस्थापक पं. राम सहाय मिश्र को माना जाता है। पं. राम सहाय के भाई जानकी सहाय उनके प्रथम शिष्य हुए। उसके बाद पं. राम शरण, भैरो सहाय, जगत जी और प्रताप महाराज उर्फ परताप् जी उनके शिष्य हुए। ''पं. राम सहाय मिश्र जी के पांच शिष्यों के द्वारा बनारस घराने का विकास हुआ''।[1] पं. राम सहाय मिश्र का जन्म 1830 के लगभग हुआ। आपने तबला वादन की शिक्षा अपने पिता और चाचा से ली। दिल्ली घराने के मोदू खां से आपके संपर्क होते ही उन्होंने आपकी प्रतिभा को देखते हुए आपको अपना शिष्य बना लिया। बारह वर्षों तक उनके घर पर ही रहकर तबला वादन की विधिवत शिक्षा प्राप्त की। इस अवधि में आप तबला की कला में पूर्ण परिपक्व हो गए। उनके वादन का ऐतिहासिक एवं सार्वजनिक प्रदर्शन 1846 में उस समय हुआ जब अवध के सिंहासन पर नवाब वाजिद अली शाह बैठे।

उसी समय पं. राम सहाय मिश्र जी का वादन हुआ। अंत में सभी ने उस समय का सर्वश्रेष्ठ वादक स्वीकार किया। इसके बाद पं. राम सहाय लखनऊ छोड़कर स्थायी रूप से बनारस चले गये। यहां आकर उनहोंने अपने वंशजों एवं शिष्यों को शिक्षा दी, वादन शैली में मौलिक परिवर्तन किया, अनेक रचनाएं की और एक सशक्त घराने 'बनारस घराने' की स्थापना की। आपके प्रमुख शिष्यों में पं. जानकी सहाय जिनके गोकुल और विश्वनाथ दो शिष्य हुए। राम शरण के पुत्र दुर्गा जी, बिक्कू जी, उनके सुपुत्र गामा महाराज, गामा जी के सुपुत्र पं. रंग नाथ मिश्र प्रसिद्ध तबला वादक थे। तीसरे शिष्य भतीजे भैरो सहाय इनके पुत्र बलदेव सहाय प्रपौत्र नन्हू जी, नन्हू जी के शिष्य भोला और कंठे महाराज हुए। ''कंठे महाराज के भतीजे व दत्तक पुत्र पं. किशन महाराज थे''।[1] भगतजी इनके शिष्य भैरव प्रसाद हुए। पं. अनोखे लाल भैरव प्रसाद के शिष्य हुए। पं. राम सहाय के पांचवे शिष्य परतापू जी के पुत्र पं. जगन्नाथ हुए। दो पुत्र शिव सुंदर और पं. बाचा मिश्र हुए। श्री बाचा मिश्रा के पुत्र पं. सामता प्रसाद उर्फ गुदई महाराज हुए।

बनारस घराने की विशेषताएं–

1. ''इसमें अनामिका (तीसरी उंगली) को थोड़ा टेड़ी करके बजाना।
2. इसमें कायदे से अधिक उठान, गत, परन, मोहरे, मुखड़े, रैला, लग्गी, लड़ी, बांट आदि का प्रयोग।
3. बनारस घराने में मर्दानी गत तथा जनानी गत का विशेष चलन।
4. इस घराने के कलाकार तीनताल के ठेके ''धाधिंधिंधा'' को ''नाधिंधिंना'' कहते हैं।
5. गति और स्पष्टता बनारस घराने की अपनी विशेषता है''।[2]

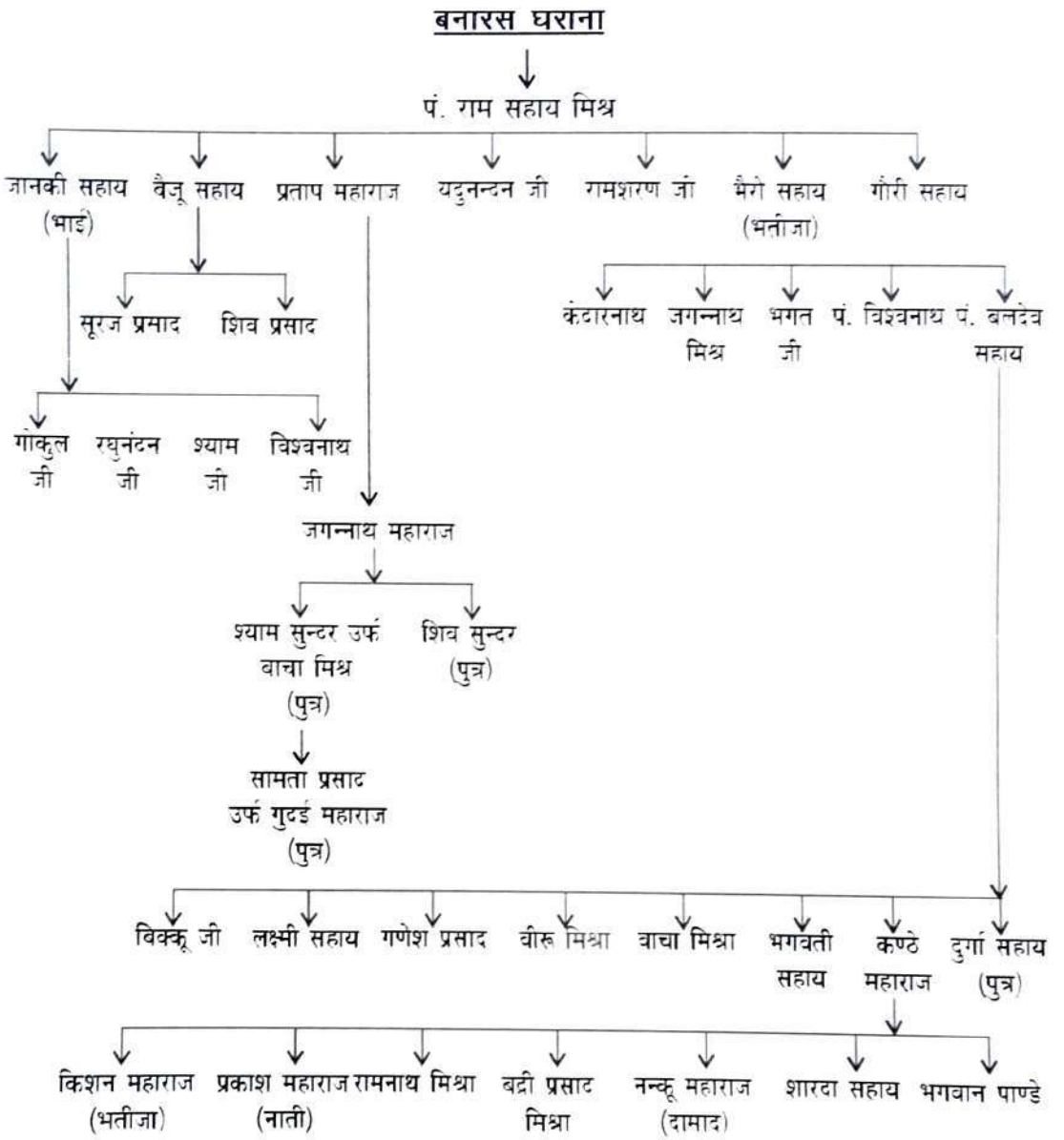

पंजाब घराना

''पंजाब घराने के प्रतर्वक लाला भवानीदास हैं, जिन्हें भवानी दीन या भवानी सिंह भी कहते हैं। 'मअ्दन-उल मूसकी', 'राग अर्पण' तथा अन्य पुस्तकों के अनुसार ताज खां डेरेदार तथा कुदऊ सिंह पखावजी, दोनों ने लाला भवानी दास से ही तबला वादन सीखा था''।[1]

पंजाब घराने की परंपरा पांच शिष्यों द्वारा विकसित हुई–मियां कादिर बख्श, हद्दू खां लाहौर, ताज खां डेरेदार, अमीद .... (खब्बे हुसेन ढोलकिया के पुत्र), पांचवें शिष्य का नाम अज्ञात है, परंतु उनकी ..... है।

लाल भवानी दास के प्रथम शिष्य मियां कादिर बख्श (प्रथम) उनके पुत्र मियां हुसेन बख्श, पौत्र मियां फकीर बख्श एवं शिसा भाई बाग, फकीर बख्श के पुत्र मियां कादिर बख्श तथा शिष्यों में करब इलाही मियां मलंग, मीरा बख्श घिलवालिये,

बहादुर सिंह इत्यादि तथा उ. कादि बख्श (द्वितीय) के शिष्यों में लाल मोहम्मद खां, महाराजा टीकमगढ़, सादिक हुसैन, रामयगढ़ राजा चक्रधर सिंह, अल्ला धेता खां तथा उ. अल्लारखा खां आदि थे। उ. अल्लारखां के पुत्र जाकिर हुसैन हैं।

भाईबाग के पुत्र भाई अमीर दशरथ भाई मंदा और वंशज तथा प्रशिष्यों में भाई नासिरा, भाई संतु, गुसमल हैं। हद्दू खां लाहौर वाले की परंपरा का साक्ष्य कम दिखाई पड़ता है। ताज खां डेरेदार में पुत्र नासिर खां पखावजी (जो अपने समय के अचछे पखावजी थे), पुत्र निसार खां तथा नाजीर खां तथा शिष्य कांता प्रसाद हैं।

पंजाब घराने के प्रचार सुसार का शेष इन तमाम कलाकारों को जाता है। पंजाब घराने में पखाबज से प्रारंभ होने के कारण इसके वादन में जोरदारी दिखाई देती है। लयकारी में गणित का काम अधिक होने से घराना गतों एवं रेलों के लिए प्रसिद्ध है।

संदर्भ

1. ताल प्रबंध–पं. छोटे लाल मिश्र पृ. सं. 13
2. ताल तरंग अंक–जनवरी-फरवरी-1999, मधुकर गणेश गोडबोले-पृ. सं-11
3. ताल तरंग अंक–जंनवरी-फरवरी-1999, 'तबला के विभिन्न बाज और उनका तुलनात्मक अध्ययन-मधुकर गणेश गोडबोले' - पृ. सं.-11
4. ताल प्रबंध–पं. छोटे लाल पृ. सं. 15
5. संगीत पत्रिका - जुलाई - 2007
6. पखावज एवं तबले की घराने एवं परंपरायें– डॉ. अबान-ए-मिस्त्री-पृ. सं. 155
7. ताल वाद्य शास्त्र-मनोहर भाल चंद्र राव मराठे - पृ. सं. 205
8. तबले का उद्‌गम, विकास और वादन ..... डॉ. योगमाया शुक्ल - पृ. सं. 159
9. तबले का उद्‌गम, विकास और वादन शैलियां– डॉ. योगमाया शुक्ल - पृ. सं. 159
10. पखावज और तबला के घराने एवं परंपरायें – डॉ. अबान-ए-मिस्त्री - पृ. सं. 167
11. ताल प्रबंध–पं. छोटे लाल मिश्र–पृ. सं. 22

स्वर वाद्य- सारंगी

प्रीती सिंह

अतिथि प्रवक्ता सितार, इ.वि.वि., इलाहाबाद

सारंगी एक अति मधुर, चित्ताकर्षक और प्राचीन साज है। गले की सचे नकल यदि कोई साज करता है तो उसका नाम सारंगी है। कुछ विद्वान इसे सारंग वीणा भी मानते हैं।

गायन की संगति के लिए यह साज सबसे अधिक उपयोगी माना गया है। आज भी इसकी लोकप्रियता बराबर बनी हुई है।

सारंगी का उद्‌भव एक पहेली की तरह छुपा हुआ है। क्योंकि इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानों के विभिन्न मत हैं।

डॉ. लालमणि मिश्र के अनुसार- ''सारंगी की परिकल्पना 'रावणास्त्र' तथा 'रावणहस्त वीणा' से हुई है। संगीत शास्त्रों में इसका प्रथम उल्लेख 'संगीतराज' में प्राप्त होता है। पं. रामनारायण के मतानुसार भी 'सारंगी रावण का आविष्कार है। इसका मूल नाम रावणहत्था था'।

प्रसिद्ध सारंगी वादक पं. राम नारायण ने इस वाद्य के संबंध में बताया है कि - ''एक जमाने में सारंगी को सौरंगी कहते थे। सौरंगी नाम संगीतज्ञो ने ही रखा था क्योंकि कोई बात ऐसी नहीं है, जिसको इसमें बजाया न जा सके। कालांतर में सौरंगी से बिगड़ कर सारंगी नाम प्रचलित हो गया।

सारंगी का विकास किसी भी वीणा से रहा होगा परन्तु इतना तो निश्चित है कि प्राचीन रावण हस्त तथा शारंगदेव काल में वीणा को धनुष अर्थात् गज से बजाये जाने की परम्परा विद्यमान थी। समस्त भारत वर्ष के विभिन्न राज्यों में सारंगी के विभिन्न रुप देखने को मिलते है। वर्तमान समय में जो सारंगी का रुप देखने को मिलता है, वह लोक वाद्य परम्परा का विकसित रुप है, यह मानना अनुचित नही होगा। आज इस वाद्य ने इतना विकास कर लिया है कि शास्त्रीय संगीत में गायन के साथ संगत वाद्य के अतिरिक्त एकाकी वादन में भी इस वाद्य को स्थान मिलने लगा है। सारंगी वाद्य में कंठ की सभी विशेषताओं को आत्मसात करने की क्षमता है।

बनावट - मूलतः सारंगी को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं - चमड़ा वाला भाग तथा दूसरा जिससे वादन प्रक्रिया की जाती है।

1-मन्थान - सारंगी को एक लकड़ी के टुकड़े से खोखला करके बनाया जाता है। तथा इसके नीचले भाग पर बकरी के खाल के चमड़े को मढ़ा जाता है। इस भाग को मन्थान भी कहते है। यह भाग नीचे से चौड़ा रहता है तथा उपर के भाग में पतला रहता है जिससे गज को चलाने अथवा घुमाने में सुविधा रहती है।

2-छाती - बीच वाले भाग को जहाँ वादन प्रक्रिया की जाती है छाती कहते है।

3-मगज - सबसे ऊपर आयताकार अथवा चौकोर भाग को सिर अथवा मगज नाम से जाना जाता है।

4- ब्रिज - सारंगी का ब्रिज बारहसिंगा की हड्डी का बना होता है, हाथी दाँत का ब्रिज इसकी तुलना में कच्चा होता है जिसे चमड़े वाले भाग पर

लगाया जाता है। ब्रिज को स्थान पर रखने के लिए चमड़े की बद्धी का प्रयोग किया जाता है।

5- आड़ - नीचे के भाग जिस पर तार खड़े रहते हैं, आड़ कहते हैं।

6- तार - इसमें चार तार होते हैं। जिसमें तीन तार ताँत के होते हैं जो कि. ड्ज, मन्द्र पंचम तथा खरज में मिलाए जाते है। चौथा तार ताँबे का होता है। जिसे मध्यम या गन्धार मे मिलाया जाता है। जो केवल स्वर देने के काम में आता है। डॉ. प्रकाश महाडिक के अनुसार-''वर्तमान सारंगी में तरब के तारों की संख्या 34-35 रहती है।

7- गज - सारंगी को गज की सहायता से बजाया जाता है। जो कि घोड़े के बाल से बना होता है।

वादन प्रक्रिया - सारंगी का वादन करते समय दाहिने हाथ से गज तथा बायें हाथ की अंगुलियों का प्रयोग स्वरों को निकालने के लिए किया जाता हैं।

यह एक सनातन सत्य है कि संगीतात्मक वातावरण की दृष्टि से जितना सामर्थ्य वाद्य संगीत में विद्यमान है, उतना गायन अथवा नृत्य कला में नहीं। यह दोनों कलाएं इस उद्देश्य के लिए वाद्य संगीत पर ही अवलंबित रहती हैं, नृत्य तो वाद्य के अभाव से लगभग अर्थहीन सा ही प्रतीत होता है। उसी प्रकार गायन के साथ भी यदि कम-से-कम एक तालवाद्य व एक स्वरवाद्य द्वारा सहयोग न प्राप्त हो, तो वह जन मनोरंजन के अपने प्राथमिक उद्देश्य में पूर्णतया सफलता नहीं पा सकता।

स्वरों की अविच्छिन्नता, जिस प्रकार गज से बजाए जाने वाले वाद्य सारंगी में सम्भव है, उतनी सुलभता मिजराव अथवा जवा आदि से तारों को छेड़कर बजाए जाने वाले वाद्यों में सम्भव नहीं है।

डा. राय के अनुसार - स्वर माधुर्य, सटीक संगत सप्तक विस्तर ही नहीं बल्कि नाट्य संगीत और डा. वार्टन द्वारा निर्धारित आदर्श वाद्यों की कसौटी पर सारंगी भारतीय संगीत का सर्वश्रेष्ठ वाद्य है तथा लोक वाद्य का सर्वगुण सम्पन्न वाद्य, बीन लुप्तप्राय हो जाने पर ख्याल ठुमरी आदि शैलियों की संगत के लिए सारंगी एक उत्कृष्ट वाद्य है। सारंगी को ख्याल, ठुमरी, टप्पा की संगति के लिए उत्कृष्ट वाद्य के रूप में माना जा सकता है क्योंकि कई दशकों तक सारंगी ही की मिठास संगीत जगत में छाई रही परन्तु हारमोनियम और वायलिन द्वारा संगत के प्रचलन ने सारंगी वादन का क्षेत्र सीमित कर दिया।

आधुनिक युग के संगीत के उत्थान और उद्धार में जब संगीत में ऐसी जागृति हो रही है और जब गायन और वादन की भिन्न-भिन्न शैलियों को उचित प्रोत्साहन देकर हम उनको सुरक्षित रखने का प्रयत्न कर रहे हैं तो यह भी आवश्यक है कि हम सारंगी की भिन्न-भिन्न शैलियों को भी सुरक्षित रखें। सारंगी ही एक ऐसा साज है जो प्राचीन गायन परम्परा और आधुनिक गायन परम्परा के बीच में एक सम्बन्ध जोड़ सकती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. संगीत, वाद्य-वादन अंक, जनवरी, फरवरी, 1975, पृ.-78
2. हमारा आधुनिक संगीत, डॉ. सुशील कुमार चौबे, पृ.-121
3. भारतीय संगीत कोश, विमलकान्त राय चौधरी, पृ.-136
4. संगीत मीमांसा, डा. श्रीमती मृदुला पुरी, पृ.-155, 156, 157
5. भारतीय संगीत के प्रमुख तंत्रीवाद्य : सितार एवं सरोद, डॉ. अलका नागपाल, डॉ. सपना गोयल, पृ.-83
6. संगीत बोध, डॉ. शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे, पृ.-148
7. भारतीय संगीत वाद्य, डॉ. लालमणि मिश्र, पृ.-121
8. भारतीय संगीत के तंत्री वाद्य, डॉ. प्रकाश महाडिक, पृ.-156, 163
9. भारतीय संगीत शास्त्रों में वाद्यों का चिंतन, डॉ. अंजना भार्गव, पृ.-224, 225
10. जहान-ए-सितार, डॉ. वी.एस. सुदीप राय, पृ.-33
11. भारतीय कंठ संगीत एवं वाद्य संगीत, डॉ. अरूण मिश्र, पृ.-53, 54

लखनऊ तबला घराने की गुरु शिष्य परम्परा

रुचि रानी गुप्ता
शोध छात्रा, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

भारतीय परिवेश में किसी विद्या या कला का शिक्षक आचार्य या किसी मन्त्र के उपदेष्टा को 'गुरु' कहते हैं। भारतीय संस्कृति में गुरु का स्थान ईश्वर के समान माना गया है। गीता में गुरु के महात्म में यहाँ तक कहा गया है कि 'गुरु ही ब्रह्मा है, गुरु ही विष्णु है, गुरु ही महेश्वर और गुरु ही साक्षात् परमब्रह्म है, उस गुरुदेव को नमस्कार है-

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरु साक्षात् परमब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः।।

आज के इस बदले हुए परिवेश में भी गुरु शिष्य की परम्परा संगीत विद्या में ही अधिक देखने को मिलती है। गुरु द्वारा दिए गए विशेष प्रकार के ज्ञान को शिष्य अपने शिष्यों को, फिर शिष्य अपने शिष्यों को देकर उस विशेषता को कायम रखते थे ऐसी गुरु शिष्य परम्परा को 'आदि गुरु का मत' कहा जाता था।

भारतीय परम्परा के अनुसार, हमें प्राचीन काल से ही अपने जीवन के सर्वांगीण विकास के लिए-

'तमसो मा ज्योर्तिगमय, असतो मा सद्गमय,
मृत्योर्मामृतं गमय।'

अर्थात् अंधकार से प्रकाश में चलने की प्रार्थना करते आ रहे हैं, इन तीनों आकांक्षाओं की पूर्ति गुरु के चरण-शरण में पहुँचकर ही संभव है। वही वस्तुतः अमरत्व की प्राप्ति कराने में सर्वथा सक्षम है। यदि चिन्तन की गहराई में बैठकर निष्पक्ष भाव से देखा जाये, तो समग्र विश्व में गुरु का मह व सर्वोपरि है। गोस्वामी तुलसीदास के शब्दों में-

''गुरु बिन भवनिधि तरहिं न कोई''

लखनऊ घराने के संगीत में गुरु की विशिष्ट मौलिक विचारधारा, रीति या शैली रही है, जिसे शिष्यों ने आत्मसात कर आगे बढ़ाया है। यही कारण है कि लखनऊ घराने के वादक, वादन में अपनी विशिष्टता बनाये हुये हैं। जिस समय लखनऊ शहर में उ0 सिद्धार खाँ के पौत्र उ0 मोदू खाँ और बख्शू खाँ आकर बसे, उन दोनों भाईयों ने लखनऊ की सांगीतिक परिस्थितियों के अनुसार अपनी वादन-शैली में परिवर्तन किया। कथक नृत्य की संगति हेतु तबले में परिवर्तन आवश्यक था। अतः इन दोनों भाईयों ने चाँटी से अधिक स्याही को तथा दो उंगलियों के स्थान पर पाँचों उँगलियों का प्रयोग शुरू किया। किनार की अपेक्षा लव का अधिक प्रयोग किया। बोलों के निकास में परिवर्तन किये और नवीन टुकड़ों और चक्रदारों का समावेश किया। यही नवीन बाज दिल्ली के बन्द बाज की अपेक्षा अधिक खुला और जोरदार था। इस प्रकार लखनऊ घराना अर्थात् पूरब बाज का निर्माण हुआ। लखनऊ बाज थपिया बाज के नाम से भी मशहूर है। क्योंकि इस बाज में विशेषतः दायें हाथ की चार उँगलियों को मिलाकर पूरे हाथ से आघात किया जाता है। बाद में स्वतंत्र वादन में बाँयें हाथ से बाँयें पर खुला आघात करना कम हो गया। उससे लखनऊ घराने

का स्वतंत्र तबला-वादन जोरदार होने के साथ-साथ कर्णप्रिय भी हो गया।

लखनऊ बाज लव और स्याही प्रधान बाज है। यह अधिक जोरदार और गूँजयुक्त वादन शैली है। इसमें नृत्य के लिए विशेष रचनाओं का समावेश किया गया। यह बाज संगति के लिए अधिक उपयुक्त रहा है। लखनऊ घराने के प्रवर्तक उस्ताद मोदू खाँ और बख्शू खाँ ने तबले में परिवर्तन कर लखनऊ बाज की स्थापना की और उन्होंने उससे अपने शिष्य परम्परा को आगे बढ़ाया। उनके शिष्यों ने विद्यारूपी धरोहर को सम्भाला और उसे आगे अपने शिष्यों को प्रदान किया। इस प्रकार लखनऊ घराने की गुरु-शिष्य परम्परा आगे बढ़ी।

लखनऊ घराने की गुरु-शिष्य परम्परा की सारणी इस प्रकार है-[1]

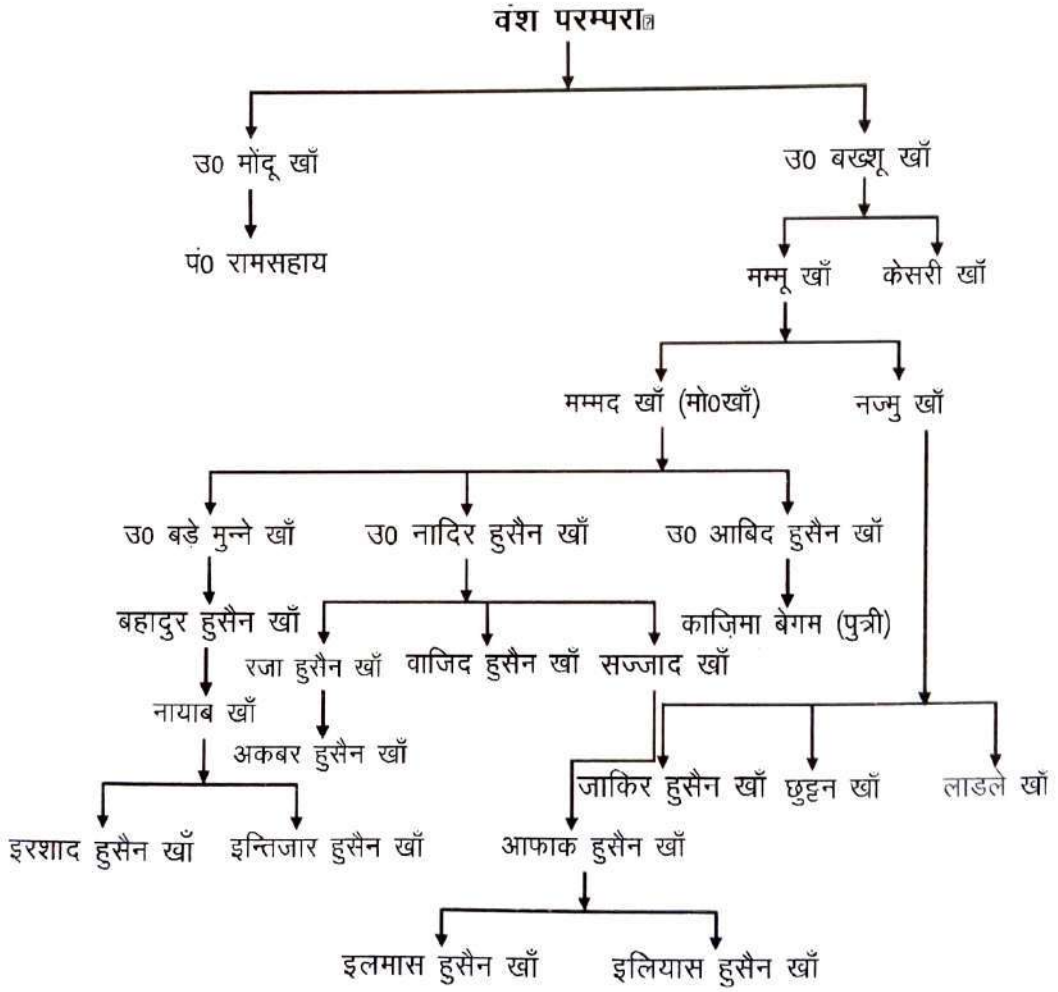

1. The Tabla of Lucknow Gharana-Written by James R. Kippen.

लखनऊ घराने की निम्न परम्परा, लखनऊ घराने के वर्तमान कलाकार उस्ताद इलमास हुसैन खाँ जी के साक्षात्कार के आधार पर प्रस्तुत है :-

लखनऊ का तबला–घराना

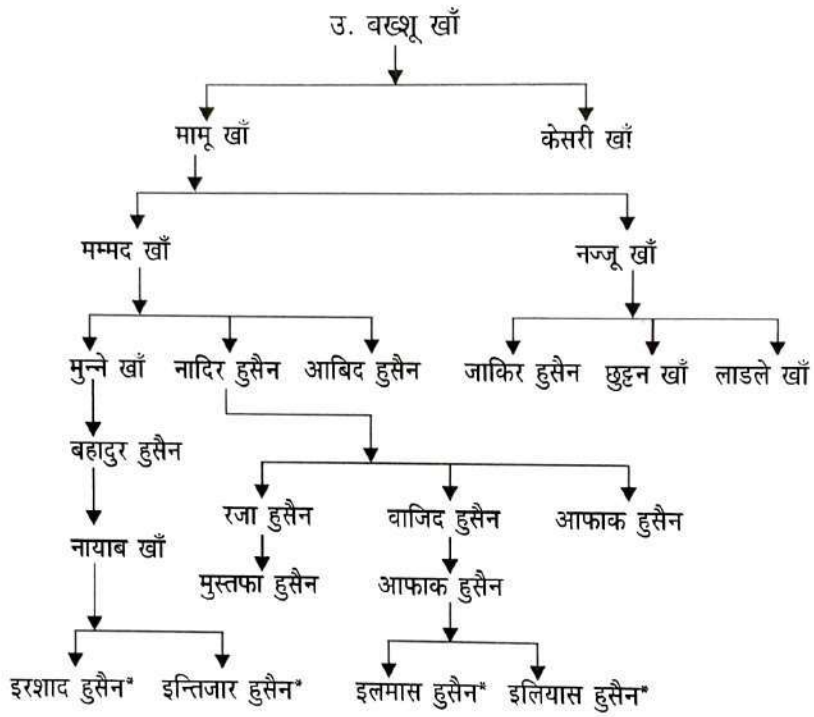

'चिन्हित नाम घराने की वर्तमान पीढ़ी में है।

सन्दर्भ सूची

1. Kippen Mr. James (Canada), Tabla of Lucknow Gharana
2. मिश्रा, डॉ0 सुशीला, लखनऊ की संगीत परम्परा, संगीत नाटक अकादमी
3. मराठे, डॉ0 मनोहर भाल चन्द्र, ताल वाद्य शास्त्र, सरस्वती प्रकाशन ग्वालियर
4. शुक्ला, श्रीमती योगमाया, तबले का उद्गम, विकास और वादन शैलियाँ, दिल्ली विश्वविद्यालय प्रकाशन दिल्ली
5. चौबे, श्री सुशील कुमार, संगीत के घरानों की चर्चा
6. मिस्त्री, डॉ0 आबान ई0, पखावज और तबले के घराने और परम्पराएँ, पं0 के0सी0एस0 जीजिना स्वर साधना समिति मुम्बई

तबला वादन में पाटाक्षर का महत्व एवं उसकी उपयोगिता

ऋतु सोनी

शोध छात्र

संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

पाटाक्षर या पाटवर्ण से तात्पर्य है अवनद्ध वाद्यों पर निकलने वाली ध्वनियों का नामकरण। प्राचीन शास्त्रकारों ने अपनी कल्पना शक्ति के अनुसार अवनद्ध वाद्यों के चर्म के विभिनन क्षेत्रें से विभिन्न प्रकार के आघातों द्वारा निकलने वाली निश्चित ध्वनियों को समझने एवं समझाने के लिए उनका निश्चित अक्षरों के रूप में नामकरण किया जिन्हें पाटवर्ण या पाटाक्षर कहा गया। इन पाटाक्षरों को स्वर, व्यंजन अथवा दोनों के योग से प्रस्तुत किया। मनुष्य द्वारा उच्चारित ध्वनियाँ (वर्ण) वाद्य पर स्पष्ट रूप से नहीं निकल सकती थी, ना ही अवनद्ध वाद्यों पर निकलने वाली ध्वनियों का उच्चारण मनुष्य अपने मुख से कर सकता था। अतः अवनद्ध वाद्यों पर निकलने वाली ध्वनियों का सर्वमान्य नामकरण करके उन्हें पाटाक्षर कहा।

तबले पर दाहिने तथा बाँए दोनों पर मिलाकर कुल दस बोल होते हैं। ये 'ध ग द त र क ट न घ ड़' पखावज शैली की तालों में कभी-कभी 'म' और 'थ' बोल भी तबले पर बजाये जाते हैं।

यदि ध्यान से देखा जायें तो तबले के मुख्य वर्ण सात ही होते हैं, जो 'ध ग द त र क और ट; होते हैं। उदाहरण के लिए 'त' का अनुयायी 'न' है, 'ट' का 'ड' और 'ग' का अनुयायी 'घ' होता है।

दाहिने हाथ से बजने वाले बोल :-

1. ता या ना, 2. तिं या ती, 3. दिं या थूँ, 4. तू, 5. ते या ती, 6. रे या टे है।

बाँये हाथ से बजने वाले बोल :-

1. ग, घ और 2. का, कि या कत् है।

दोनों पर एक साथ बजने वाले वर्ण :-

1. धा 2. धि या धिं

खुले और बंद बोल :-

जिन बोलों को बजाने के बाद तबले की गूँज सुनाई देते रहे, उन्हें खुले और इसके विपरीत जिन बोलों के बजने के बाद गूँज समाप्त हो जाए उन्हें बन्द बोल कहते हैं।

तबला वादन में पाटाक्षर का महत्व एवं उसकी उपयोगिता में वर्तमान भारतीय अवनद्ध वाद्यों में तबला एक सर्वाधिक उपयोगी और लोकप्रिय वाद्य है। यह 'संगत' का वाद्य होने पर भी तबला वादन आज इतना उन्नत, कलात्मक व समश्द्ध हो गया है कि संगत के अतिरिक्त स्वतन्त्र वाद्य के रूप में भी प्रतिष्ठित है। तबले में पाटाक्षर से युक्त 'ठेका' वादन के द्वारा ताल के मूल स्वरूप की अभिव्यक्ति करते हुए विभिन्न पाटाक्षरों (बोलों) से उसमें लय,

यति, छन्द, ग्रह, प्रस्तार आदि का संप्रयोग किया जाता है अतः 'ठेका' तबला वादन का मुख्य आधार होता है।

वर्तमान समय में तबले पर बजाये जाने वाले प्रचलित ताल इस प्रकार हैं :-

तीनताल, तिलवाड़ा, पंजाबी, अद्धा, एकताल, आड़ा-चारताल, झूमरा, धमार चारताल, झपताल, रूपक, फरोदस्त, सूलफाक, सवारी, दीपचन्दी, जत, दादरा, कहरवा इत्यादि।

ख्याल गायन और सितार वादन दोनों में ही बंदिशों को गाते या बजाते समय बीच-बीच में रूपकालप्ति अर्थात् आलापतान करते हुए एवं मुखड़ा पकड़ते हुए बंदिश के मुख्य सम पर आने की प्रक्रिया की जाती है। इसके लिये प्रायः तालों का चयन किया जाता है जिसमें ताल का कालमान करते समय तालार्ध पर 'निःशब्द क्रिया'; अर्थात् 'खाली' का व्यवहार होता है। 'खाली' के व्यवहार से गायक या वादक को मुखड़ा पकड़ना सुविधाजनक हो जाता है। तबले में 'ठेको' के बोलों की संरचना विशेष रूप से ऐसी की गई है जिसमें तालार्ध की खाली को प्रदर्शित करने के लिए प्रायः बन्द बोल का व्यवहार किया जाता है और यहीं से तबला वादन की रचना विधि पखावज़ वादन से भिन्न हो जाती है। क्योंकि तबला वादन में ठेके को आधार मानकर ही उसमें पेशकारा, कायदा, रेला आदि की ठेके के समान भरी और खाली भागों के अनुसार खुले और बन्द बोलों के सिद्धान्त पर विकसित हुई।

तबला वादन शैली के लिए विशेष रूप से 'बाज' शब्द का व्यवहार किया जाता है। अतः तबला वादन के सभी 'बाज' तबले पर थाप और चाँट इन दो प्रमुख प्रहार भेदों के आधार पर विकसित हुए है जिनका विकास प्राचीन त्रिपुष्कर के त्रिप्रहार वादन विधियों से हुआ है। सभी घरानों में 'धा' को 'धा' और 'धिं' को 'धिं' ही कहते हैं। परन्तु विभिन्न घरानों में उनके (वर्णों को) निकालने की विधि में थोड़ा-थोड़ा अन्तर होता है। प्रत्येक घराने में कुछ विशेष प्रकार की मौलिक रचनाएँ भी हुई और घराने के कर्णधार, विद्वानों ने बंदिशों के लिकालने की विधि (Sound Production) में परिवर्तन किये। इसी से विभिन्न घराने अलग-अलग अस्तित्व में आये और उनकी पहचान बनी। तबले पर बजने वाली रचनायें पेशकारा, कायदा, परन, गत आदि है। परन्तु उन सभी का महत्व विभिन्न घरानों में भिन्न-भिन्न है। जैसे - दिल्ली घराने में पेशकारा, कायदा और रेलें जैसी विस्तारशील रचनाओं को अधिक महत्व दिया जाता है तो फर्रूखाबाद में रौ, गत और चाला या चलन को, बनारस घराने में छन्द, परन जैसे अविस्तारशील बंदिशों को तो पंजाब घराने में रेला, लयकारी और बोल बाँट को अधिक महत्व दिया जाता है। इस प्रकार प्रत्येक घराने के अपने नियम है। उन्हीं की सीमा में बद्ध होकर भारतीय संगीत में विविध घराने अस्तित्व में आये, जो अपनी निजी विशेषताओं के कारण एक-दूसरे से पृथक् हो सकें।

आज भारतीय संगीत में तबला वादन इतना प्रचलित व लोकप्रिय है कि उसका प्रयोग संगीत की अनेक शास्त्रीय, उपशास्त्रीय और सुगम विधाओं में किया जाता है। इसीलिए भारतीय संगीत में तबला एक बहु उपयोगी कलात्मक उन्नत अवनद्ध वाद्य के रूप में प्रतिष्ठित है।

वर्तमान युग में तबला लोकप्रिय वाद्य होने के कारण इसने अपने समृद्ध कलात्मक गुणों से विश्व के अनेक देशों के संगीतज्ञों व जनमानस को आकृष्ट करके पूर्णरूप से लोकप्रिय हो रहा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 मनोहर भालचंद्रराव मराठे - ताल-वाद्य शास्त्र
2. भगवत शरण शर्मा - ताल प्रकाश
3. गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव - ताल परिचय, भाग-एक
4. मोहिनी वर्मा - प्रमुख ताल वाद्य पखावज तथा तबले की विभिन्न परम्परायें
5. डॉ0 आबान ई0 मिस्त्री - पखावज और तबला के घराने एवं परम्परायें

नर्तन

आशा भोसले

Dance in India

Dr.Deepti Omchery Bhalla

Mohiniyattam dancer

Prof. Karnatak Music, Faculty of Music and Fine Arts, University of Delhi

(With special reference to ancient Indian literature)

The importance of dance in India can be seen from the dancing female figurine of a young aborigine girl, excavated from Mohenjo-daro in Sind dating to 5^{th}-4^{th} millennium BC. Dancing in India is as old as the start of the Dravidian and the Aryan culture.

dancing figurine in Mohenjadaro, National Museum

Numerous Texts in both Tamil and Sanskrit give ample descriptions about dancers and their dancing as part of their sacred and secular life. The Dravidians divided dancing into four categories namely 1. 'Koothu' and 'Attam' which were strictly indigenous to the Tamil land,2.Those borrowed from the Aryans ,3. Those borrowed from the north or 'Vadakkar' (term used for north) , 4. Those borrowed from the Sinhalesementions dance 'Nritya' to be performed during certain planetary positions of the Sun and the Moon, on the occasions of Tribal or Jubilations in the kingdom, festive occasion of the Gods, during marriages, Griha Pravesha, birth of a child and other auspicious occasions.

The Aryans further subdivided dance into Nritta ,Nritya and Natya.The creator of Indian dance was Shiva who taught the art of dancing with Karnas and Angaharas to his pupil Tandu , who in turn taught them to Sage Bharata , the author of Natya Shastra the famous Treatise on Indian Dramaturgy .The categorization of dance into Tandava and Lasya , Nritta and Natya , Chari and Mandala ,Karana , Angaharas and Abhinaya have all been dealt in detail in **Natya Shastra** .

The Vedas, Brahmanas, Aranyakas

Amongst the Sanskrit treatises or text the earliest reference of dance can be seen in the **'Rik Veda'**, which contains many

descriptions of the Art of dancing prevalent during that period. The hymns dedicated to **'Usha', the Goddess of Dawn** describe her to be a beautiful dancer.

Indra is described as the most accomplished male dancer who always danced before and after a war and whose dance came to be termed as **'Alida'**. The **'Maruts'**, the Gods of thunderstorm were also equally accomplished in the art of dancing. The Rikveda also throws light on dances performed as part of marriages, harvest, sacrifices, and communal gatherings with men, women and children participating. In the Krishna **Yajurveda** the term **'Iyati'** signifies recitation with gestures. The **Brahmanas and Aranyakas** mention about the importance of dance in the society with its performance in every social activity.

The Epics

The Two Epics, **Ramayana** and **the Mahabharata** provide valuable information about the kind of music and dance that were prevalent in that period. In Ramayana dancing occupied a very important place in the social life of the people. The dancers were invited to perform in all important Royal occasions like during the horse sacrifice. They even danced to please Gods to induce rain and save the Kingdom from draught and famine. The **Ayodhya Kanda** describes how the dancers added to the gaiety during the Coronation ceremony of Rama.. Ravana was not only adept

In playing the lute and the drum but was equally accomplished as a dancer who danced before Shiva showing some very intricate Tandava footwork performed by Shiva himself. The absence of dancers from a community was considered as the worst of all misfortunes that could fall on them

In **Mahabharata**, the significance of dance can be met within the **'Virata Parva'** which mentions about each Palace having special place, wherein the young and unmarried princesses and daughters of noble men were taught the art of music and dance. **Arjuna** disguised as **'Brihannala'**became proficient in the Art of Dancing and taught the same to Uttara the Princess.

The Puranas

Few of the Puranas which come next to the Epics also contain chapters on dance. The **Vishnu Dharmottara Purana** describes the interdependence of all fine arts. King Vajra who goes to a sage Agastya, seeking the way to attain peace within him is asked to build Temples of worship. To build them it was required for the king to first learn the art of making the images of Gods and to learn the Art of Sculpture he needed tolearn the art of painting, the art of dancing, vocal and instrumental music.

The dances of Shiva and Krishna are described very beautifully in the **Skanda** and **Bhagavata Purana.** The Brahma **Vaivarta Purana** describes in detail young Krishna dancing 'Raas' with the Gopis. So also the description of Raas performed by Krishna with the Gopis in Bhagavata Purana , is one of the most beautiful poetry ever found in the Sanskrit language.

Another Puranic version mentions dance as the invention of Vishnu. After His victory over the two Giants Madhu and Kaitabha , Vishnu's wife Lakshmi who watched His fight , was deeply enamoured by the beautiful body movements that

Vishnu assumed during the war and asked Him to teach Her the Art of dancing. Vishnu then taught this to Brahma, who then taught Shiva. The spectacular execution of **Shiva's dance movements won Him the Title of 'Nateswara'.**

The **Agamas** and the **Tantra,** the Shaiva , Vaishnava and the Shakti , contain many aspects on dance.

Works on **Natya**by **Bhasa , Kautilya and Kalidasa** written even before Natya Shastra ,also give a detailed account of 'Abhinaya'.

The dramas and poetry of Kalidasa give a lot of references to dancing as an Art and a form of recreation. Special importance may be given to three of his works **'Meghadootam' 'Raghuvamsham'** and **'Malavikagnimitram'**. In Raghuvamsham while describing a carnival wherein the entire dancing community participated, the poet writes that even the peacock and the new tender leaves of the mango tree swaying to the southern breeze, taught the people gestures and dance steps. Kalidasa also mentions about Indra dancing Alida while fighting with Raghu. A lot of reference about dance can be found in the chapter on Agnivarna , the last ruler of the dynasty who had deep passion for dancing . To whom Bharata's 'Kaisiki vritti' appealed most while Bharati , Arabhati and Satvati vritti excited in a different ways. This morbid attitude not only made him one of the finest dancers but also an excellent teacher of dance.

In the historical play 'Malavikagnimitra' fo Kalidasa, Malavika dances before a gathering of elite critics winning their appreciation. The poet writes about dancing with a high degree of appreciation while giving an accurate description of the dance and the dancer. In one of the slokas he mentions that even sages revere dancing, praising it to be a delightful ritual which satisfies the eye and that for the sake of the art, Shiva, who created this art to please His consort Parvati, transformed into half man and half woman, the Ardhanareeshwara.

Silappadikaram

The famous Tamil Kavya 'Silappadikaram' written by a Jaina prince Illango Adigal , gives a good insight into the general attitude of people towards Art, the encouragement given by the Kings and the rich nobles, to artistes who entertained them. Silappadikaram reflects the ordinary Tamil folk as being religious to the extent of being extremely superstitious and God fearing. Dancing was part of the ritual worship and both music and dance was also an integral part of all rural festivals and ceremonies. Dance was referred to as; 'Natam', 'Aadal' , 'Natanam' , and 'Kuttu'. Besides the courtesans and professional artistes, the King, Queen, Lords, Merchants and ordinary citizen all were experts in music and allied arts like dance, painting etc.

Devadasi, the courtesan

The poem especially mentions about a community who specialized in the Art of Dancing .They were called 'Saakkayan' or Cakiyar. Their main duty was to perform before the king or devotees in a Temple and were held in high esteem. The Chakkiyar community still exist and perform in Temples of Kerala.

The highly evolved system of dance existed even in early times can be understood from the text Silappadikaram which mentions 11 types of dances 'Aadal', which included the different intricate movements of limbs and body movements. Two kinds of dance traditions are found mentioned in this text, the Marga or the orthodox and the Desi or the secular. There is also mention of division of dance into Santi koothu, performed for the elite and the Royals and the VinodaKoottu', performed for entertaining the ordinary folks.

There is a chapter which is about the dance of the female cowherds whose performance of 'Kuravai '(Rasakrida) was the remedy for averting any tragic happening. This goes to show the importance of dance in warding off the evil. It is thus clear from the various texts written in the ancient period, that dance had a very important place in the socio-religious and cultural life of the people of India. Besides literature there are several texts on music, dance and drama which are of considerable value.**Bharatarnava** which is considered as a reference material for Abhinaya Darpana is a text on Abhinaya and Nritta and gives details on Hastas, Drishtis, Sthiro bhedas and Padabhedas. Few other Sanskrit texts like the one written by **Panini** mention the **'Natasutras'** .**Amarakosa** written possibly around 4th AD mentions the eight rasas.

Narada in 'Sangita Makaranda' describes Shiva engaged in dancing with Brahma keeping time with his hands , Vishnu playing the drum 'Pataha', Saraswati playing the lute, the Sun and the Moon playing the flute, the Siddhas and the Kinnaras providing the drone , Bhringi and Ida playing on the kettle drums and Narada singing soulfully.

Nandikeshwaras 'Abhinaya Darpana' not only describes various kinds of dances and their technique but also mentions the occasions during which these were to be performed. The 'Margi' being religious in its significance was to be performed only in and around the Temples during annual festivals and never in secular events. This type of dance can be seen today in the **'Chakkiyar Koothu'** performed in the temples of Kerala.

Nangiarkoothu (female dancers in Chakiyar Koothu)

The Sangita Ratnakara, divides dance into **'Vishama'** or the difficult, **'Vikata'** or the ungraceful and **'laghu'** or the simple. The 'Vishama' included

movements that were quick and intricate, the 'Vikata' emphasised poses and gestures of body that were not charming while 'Laghu' emphasised body movements which were gracefully executed , without any physical strain experienced by the dancer.

Nritta Ratnavali of Jayasenapati is an important text on dance which throws considerable light on the three major aspects on dance, the Nritta ,Nritya and Natya.

Besides the above texts and treatises, the regional texts on music and dance also have played a very important role in the development of the classical dance of that region. **Balaramabharatam** by Maharaja Kartika Thirunal of Travancore and **Hastalakshana Deepika** are two major texts adopted by Kathakali , Mohiniyattam , the two popular classical dance forms of Kerala.

For a dancer to become adept in the Art of dancing, besides training ,the study of both the regional and the ancient texts are extremely important as they benefit greatly in understanding, expanding and enhancing their dance form.

It's unbelievable, how dance alone can keep us fit. It has all the benefits of yoga, aerobics and cardio exercises. It helps in gaining control of body and mind, brings steadiness and firmness to our motor skills. It gives us the right posture, brings grace to our walk and generally keeps the machine in good running condition. In my opinion, an active dancer does not need to engage in any form of physical exercise other than dancing itself. A daily practice routine improves blood circulation and maintains a steady body weight.

Having said this, let me also state that dance is notorious for making one gain weight. This happens when practitioners of Indian classical dance do not adhere to the core principles of their dance forms. Dance must be practiced the way it is meant to be. Only then can we expect to benefit from dance as a form of fitness. Dance will treat us the way we treat dance. Casual dancing will not do. We have to sweat it out.

What happens when dancers stop active dancing - we all have to at some point of time. I would like to be called a dancer till the day I die. Once a dancer, always a dancer. When a dancer weans herself from active dancing, she involves herself in other dance related activities which may be more meaningful to her at that stage of her dance journey. When this happens, she does not cease to be called a dancer, because her mind and soul are still actively dancing. Unfortunately her body, which was conditioned to dance exercise, does not get that level of physical activity any more. It is at this point of time that a dancer needs to hit that gym, enroll in yoga classes, invest in a treadmill or buy walking shoes. Whatever the form of exercise, it is essential that a dancer maintain her body weight even after having reduced active dancing.

Coming back to active dancers. Many maintain that a regular routine in a gym will help to tone muscles and reduce excess fat. Yes, a regular gym routine will tone up those sagging arms or reduce those thunder thighs to look presentable in that tell all dance costume. In fact, I would recommend all overweight dancers to do specific exercises for weight loss under professional supervision. Do not expect your dancing

to do this job for you. Dance will only maintain your body weight and prevent any unwanted weight gain. If you need to loose weight specifically, then it's good to chalk out a regular weight loss program over and above your regular dancing. Dancers getting back to shape after childbirth or long illnesses need to engage in special exercises meant for weight loss. Once you have achieved your desired body weight, then its best to gradually reduce the gym and concentrate actively on dancing.

Many dancers are gym regulars to increase their stamina. I have a different point of view. For developing stamina in dance, one has to dance and dance and only dance. The energies required for normal exercises are different from energies required for classical dance. One can go through a gym routine mechanically but cannot dance in the same way. What about mental strength and the mind to body coordination that we need to develop? One can go through a 45-minute gym routine effortlessly but will struggle through that 45-minute varnam if we have not developed our stamina through the right channels. To gain stamina we can only rely on intensive and extensive dance practice sessions.

Yoga - India's gift to the world - is a fantastic pathway for building emotional and physical strength. It helps us dancers to keep our joints in perfect condition, improves our concentration and protects our bodies from injuries. I feel dance has all the benefits of yoga. Our warm up exercises, movement dynamics, controlled expression of sahitya, holding of postures are all yogic - so to speak. I would rather spend every possible waking moment dancing and keep yoga for a later stage of my life. It's time we look at our dance as a more holistic approach for fitness and give it its due. Practicing yoga is good, but practicing dance is even better!

Not Just Anybody : A Health and Fitness Column

Rama Vaidyanathan

Famous Bharatnatyam Dancer

It's unbelievable, how dance alone can keep us fit. It has all the benefits of yoga, aerobics and cardio exercises. It helps in gaining control of body and mind, brings steadiness and firmness to our motor skills. It gives us the right posture, brings grace to our walk and generally keeps the machine in good running condition. In my opinion, an active dancer does not need to engage in any form of physical exercise other than dancing itself. A daily practice routine improves blood circulation and maintains a steady body weight.

Having said this, let me also state that dance is notorious for making one gain weight. This happens when practitioners of Indian classical dance do not adhere to the core principles of their dance forms. Dance must be practiced the way it is meant to be. Only then can we expect to benefit from dance as a form of fitness. Dance will treat us the way we treat dance. Casual dancing will not do. We have to sweat it out.

What happens when dancers stop active dancing - we all have to at some point of time. I would like to be called a dancer till the day I die. Once a dancer, always a dancer. When a dancer weans herself from active dancing, she involves herself in other dance related activities which may be more meaningful to her at that stage of her dance journey. When this happens, she does not cease to be called a dancer, because her mind and soul are still actively dancing. Unfortunately her body, which was conditioned to dance exercise, does not get that level of physical activity any more. It is at this point of time that a dancer needs to hit that gym, enroll in yoga classes, invest in a treadmill or buy walking shoes. Whatever the form of exercise, it is essential that a dancer maintain her body weight even after having reduced active dancing.

Coming back to active dancers. Many maintain that a regular routine in a gym will help to tone muscles and reduce excess fat. Yes, a regular gym routine will tone up those sagging arms or reduce those thunder thighs to look presentable in that tell all dance costume. In fact, I would recommend all overweight dancers to do specific exercises for weight loss under professional supervision. Do not expect your dancing to do this job for you. Dance will only maintain your body weight and prevent any unwanted weight

gain. If you need to loose weight specifically, then it's good to chalk out a regular weight loss program over and above your regular dancing. Dancers getting back to shape after childbirth or long illnesses need to engage in special exercises meant for weight loss. Once you have achieved your desired body weight, then its best to gradually reduce the gym and concentrate actively on dancing.

Many dancers are gym regulars to increase their stamina. I have a different point of view. For developing stamina in dance, one has to dance and dance and only dance. The energies required for normal exercises are different from energies required for classical dance. One can go through a gym routine mechanically but cannot dance in the same way. What about mental strength and the mind to body coordination that we need to develop? One can go through a 45-minute gym routine effortlessly but will struggle through that 45-minute varnam if we have not developed our stamina through the right channels. To gain stamina we can only rely on intensive and extensive dance practice sessions.

Yoga - India's gift to the world - is a fantastic pathway for building emotional and physical strength. It helps us dancers to keep our joints in perfect condition. improves our concentration and protects our bodies from injuries. I feel dance has all the benefits of yoga. Our warm up exercises, movement dynamics, controlled expression of sahitya, holding of postures are all yogic - so to speak. I would rather spend every possible waking moment dancing and keep yoga for a later stage of my life. It's time we look at our dance as a more holistic approach for fitness and give it its due. Practicing yoga is good, but practicing dance is even better!

भारतीय संस्कृति में नृत्य की मान्यता

डॉ. अंजना झा

सुप्रसिद्ध कत्थक नृत्यांगना

नृत्य नयनों का उत्सव है, मन का उल्लास है, तन की तरंग है और आत्मा का अमृत है। नृत्य स्वर की सरगम है, लय की थिरकन है और राग का पराग है। भारतीय संस्कृति में नटराज शंकर और नटनागर श्रीकृष्ण नृत्य विलास के शाश्वत प्रतीक है।[1]

भारतीय संस्कृति जीवन को रागात्मक विधि से जीने का उपदेश देती है। भारतीय सभ्यता में जीवन भार नहीं, आनन्द का उत्सव है। भारतीय ऋषियों ने जीवन के जो मार्ग प्रशस्त किये, उन्हें पर्व और त्योहारों की बन्दनवारों से सजा दिया ताकि मनुष्य के मन में मोद और उत्साह की लौ कभी बुझने न पाये। वह जीवन जिये और आनन्द से जिये।

नृत्य उस मोद की पराकाष्ठा का प्रतीक है। यही कारण है, जब से भारतीय संस्कृति ने पहली सांस ली तब से आज तक नृत्य की सलिला पृथ्वी पर निरंतर बहती चली आ रही है। भारतीय संस्कृति का प्रारंभ वेदों के पूर्व से हो जाता है। तभी तो नृत्य के संदर्भ वैदिक साहित्य में भी देखने को मिलते हैं।

वेदों के सम्बन्ध में विद्वानों का मत है कि 'वेदों की रचना एक साथ न होकर अलग-अलग कालों में हुई। सबसे पहले ऋग्वेद लिखा गया। उसके वर्षो बाद सामवेद की रचना हुई। तदनन्तर यजुर्वेद लिखा गया और बहुत लम्बे अन्तराल के बाद अथर्ववेद लिखा गया।[2]

प्राचीन साहित्य में नृत्य के साथ नाट्य शब्द का प्रयोग भी बहुलता से देखने को मिलता है। वैयाकरणों ने नाट्य शब्द की व्युत्पत्ति और व्याख्या भी की है। सबसे प्राचीन ऋग्वेद है। इसमें एक स्थांन लिखा है - नृत्यमानों देवता।[3] अर्थात् देवतागण नृत्य करते हैं। ऋग्वेद की एक अन्य ऋचा में उषा की उपमा नर्तकी से दी गयी है।[4]

यजुर्वेद की वाजसनेय संहिता के पुरूषसूक्त में लिखा है - नृत्ताय सूतं गीताय शैलूषम।[5] अथर्ववेद के पृथिवी सूक्त के अध्याय 12, प्रकरण 1 तथा मंत्र 41 में भी गायन और नृत्य का उल्लेख है। वैदिक साहित्य में एक स्थान पर विचित बात कही गयी है - 'गन्धर्वसंगीतवाद्यादिजनित प्रमोदं प्राप्नोति गन्धर्वः स्वर्गगायकः अर्थात् गन्धर्व जन वाद्य आदि को बजाकर मोद और आनन्द प्राप्त करते हैं और देवताओं कराते हैं। अतः गन्धर्वो को स्वर्ग का गायक कहा जाता है।[6] अथर्ववेद के ही एक मंत्र में कहा गया है - आनृत्यन्तः शिखण्डिनः गन्धर्वस्याप्सरापतेः। पूरे मंत्र में वर्णन है कि उर्वशी, धृताची, रम्भा, तिलोत्तमा, मेनका आदि अप्सराओं के गन्धर्व पति सिर पर मोर का मुकुट लगाकर नृत्य करते हैं।

अथर्ववेद में एक स्थान पर कहा गया है - यस्याय गायन्ति नृत्यन्ति भूम्याम् मृत्योर्व्यैलवा।[7] अर्थात् आनंदभरी किलकारियों को अपने मधुर कंठ से निनादित करने वाले लोग जिस भूमि में गाते और नृत्य करते रहते हैं वह भूमि धन्य है।

अतः स्पष्ट हो जाता है कि वेदों की रचना से पूर्व ही लोक में नृत्य और गान प्रचलित हो चुका था। साहित्य में नर्तकी की उपमाएं दी जाने लगी थीं, जैसे कि

ऋग्वेद की एक ऋचा में उषा के आगमन पर उषा की उपमा नर्तकी से दी है। ऋग्वेद में यह कहा गया है कि देवता-गण नृत्य करते हैं। एक अन्य उद्धरण में गन्धर्वो के गायन-नर्तन की चर्चा है। साथ ही यह भी कहा गया है कि गन्धर्व स्वर्गलोक के गायक हैं; इससे स्पष्ट है कि नृत्य परमात्मा की वह विलक्षण और अद्‌भुत कला है, जिसका आनन्द स्वर्ग में देवता भी लेते हैं। एक अन्य तथ्य यह भी सामने आता है कि वैदिक-काल में नृत्य करने वाला वर्ग भी अलग से विकसित हो चुका था। साथ ही गायकों का वर्ग भी था। जैसा कि अथर्ववेद में कहा गया है - नृत्ताय सूतं, गीताय शैलूषं अर्थात् उस समय के समाज में नृत्य के लिए सूत तथा गीत के लिए शैलूष वर्ग के लोग हुआ करते थे।

छान्दोग्य उपनिषद में सामवेदन से सम्बंधित एक कथा है। उसमें कहा गया है कि महर्षि श्रृंगी ने देवकी पुत्र श्रीकृष्ण का वेदान्त शिक्षा का उपदेश करते हुए गायन और नर्तन की विधियों की दीक्षा दी थी। उस विधि का नाम छालिक्य पड़ा। श्रीकृष्ण छालिक्य नृत्य के अधिष्ठाता थे। वेणु-वादन में सामगान के साथ श्रीकृष्ण ने इस नृत्य का प्रयोग गोपियों के साथ किया था।[8] उसके बाद यादवों ने इस परम्परा का प्रवर्तन किया। आचार्य नन्दिकेश्वर ने अपने ग्रंथ अभिनय दर्पण में भी इस विचार को प्रकारान्तर से प्रस्तुत करते हुए कहा है - पार्वतित्वनुशास्ति स्म लास्यं बाणात्मजामुषाम। तथा द्वारवती गोप्यस्ताभिः सौराष्ट्रयोषितः।[9] अर्थात् पार्वती ने बाण की पुत्री उषा को लास्य की दीक्षा दी, जिन्होंने सौराष्ट्र द्वारका की अन्य गोपियों को लास्य नृत्य की शिक्षा दी। स्पष्ट है कि सौराष्ट्र में नृत्य का प्रसार बहुत प्राचीन काल में ही हो गया था।

"वैदिक साहित्य के संदर्भ में जिस पर्व का सर्वाधिक उल्लेख किया गया है वह है-समन। समन एक प्रकार का सांगीतिक मेला था, जहाँ आमोद के लिए नारियाँ जाती थी। युवा-युवतियाँ सह-नृत्य करते हुए फैले मैदानों की ओर दौड़ चलते हैं, मृदंग धमक उठते हैं, तरूण-तरूणियाँ एक दूसरे का हाथ पकड़ कर नाचने लगते हैं।[10]

वैदिक सभ्यता में सत्र-यज्ञ हुआ करते थे। यज्ञ की समाप्ति पर बड़ा उत्सव मनाया जाता था। उत्सव में नृत्य-गान की धूमधाम रहती थी। उत्तरवैदिक काल तक आते-आते समाज में वर्ण व्यवस्था प्रारंभ हो गयी। समाज में वर्ग बना दिये गये, उन वर्गो का कार्य निर्धारित कर दिया गया। कार्य के अुसार उन्हें ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र वर्ग के नाम दिये गये। इस सामाजिक परिवर्तन में सदियाँ गुजर गयीं। गायन, वादन, नर्तन करनेवालों को शूदवर्ग में रखा गया।[11] नट, नर्तक, गायक, मागध, वाद्यवादक सूत, शैलूष सभी को शूदवर्ग में गिना गया। इनके वर्ग में एक से एक श्रेष्ठ कोटि के कलावंत तथा विद्वान हो चुके थे और उस काल में भी थे।

महर्षि पाणिनि का समय ईसा पूर्व सातवीं शताब्दी माना गया है। पाणिनि से पूर्व समाज में गायन, वादन, नर्तन को शिल्प के अन्तर्गत गिना जाता था। "कौषीतकी ब्राम्हण में जहाँ एक स्थान पर कलाओं की विस्तृत सूची प्राप्त होती है, वहीं दूसरे स्थान में 'शिल्प' शब्द के अन्तर्गत केवल गायन, वादन, नृत्य की ही कल्पना की गयी है -विविधों शिल्प नृत्य गीत वादित्रयम्।

तौर्यत्रिक का अर्थ संस्कृत कोशों में यह दिया हुआ है कि जो व्यक्ति गायन, वादन तथा नर्तन तीनों विद्याओं में सूदक्ष हो, उसे तौयत्रिक कहते हैं।[12] तौर्यत्रिक शब्द की परम्परा लम्बी रही है। वैदिक काल से चलकर यह ईसा की छठी शताब्दी तक तो स्पष्ट ही दिखायी देती है। 'संस्कृत के प्रसिद्ध नाटककार भवभूति ने भरतमुनि को तौर्यत्रिक सूंकार कहा है। नाट्यशास्त्र में जिस प्रकार इसका प्रयोग हुआ है उसका अर्थ है तौर्यत्रिक माने गायन, वादन, नर्तन का विशेषज्ञ। नाट्यशास्त्र से इतर भी इसका प्रयोग नाट्यकला के विशेषज्ञों के लिए हुआ है। वाचस्पत्यम् तथा शब्दकल्पद्रुम में इसका अर्थ है गायन, वादन, नर्तन में प्रवीण व्यक्ति कदविषयक शास्त्र का ज्ञाता।[13]

नये शोधों के आधार पर अनेक भ्रान्तियाँ अब दूर हो चुकी हैं। यह स्पष्ट हो चुका है कि सूत, शैलूष, कृशाश्व, तौर्यत्रिक, भरत, नट आदि समाज के विशिष्ट वर्ग थे, जो धीरे-धीरे विकसित और संगठित होते गये। पाणिनि महाशय को अपने समय पर केवल नटों के कुछ

सूत्रों की पाण्डुलिपि ही प्राप्त हो पायी होगी, किन्तु पाणिनि में हजारों वर्ष पूर्व लिखित ऐतरेय ब्राह्मण ने यह स्पष्ट कर दिया था कि भारत में तूर्य-संग्रह नामक ग्रंथ लिखे जा चुके थे।[14] जैसे- नाट्यशास्त्र भी एक संग्रह ग्रंथ है। नृत्य बहुत प्राचीन विद्या है। इसे देवताओं ने अपनाया, गन्धर्वो ने अपनाया, मनुष्यों ने अपनाया। नृत्य का इतिहास वेदों से भी अधिक प्राचीन है।

महर्षि पाणिनि के अष्टाध्यायी पर महर्षि पतंजलि ने ईसा पूर्व दूसरी शती में महाभाष्य की रचना की। पतंजलि ने अपने ग्रंथ महाभाष्य में नट, नर्तक, नर्तकियों तथा अभिनय की चर्चा की। पतंजलि ने लिखा के पहले विशेष अवसरों पर समाज हुआ करते थे। उसके समय में कंसवध और बलिवध नामक दो नाट्य-प्रदर्शन हुए। प्रदर्शन से पूर्व नट और नटिनी मंच पर आकर गायन-वादन के साथ अपने कौतुक देखाकर दर्शकों का ध्यान प्रदर्शन की ओर केन्द्रित करते थे।[15] नटों के उस कौतुक का शिलापट्ट भा पुरातत्व का प्राचीन सामग्री में सुरक्षित है। उनके कौतुक का पुरातात्विक साक्ष्य 'भरत और उनके नाट्यशास्त्र' में मुद्रित है। उस प्रसंग की चर्चा पंडित तीरथराम 'आजाद' की पुस्तक 'कत्थक दर्पण' में भी देखने को मिलती है।

वेदों का ध्येय गायन-वादन-नर्तन की उत्पत्ति, विकास अथवा उनकी व्याख्या करना नहीं था। प्रसंगवश उनमें कहीं नृत्य के, गायन के, वादन के शब्द आ जाते थे। उन शब्दों से यह अवश्य प्रमाणित हो जाता है कि प्रागैतिहासिक काल से ही नृत्य, गायन, वादन आदि भारतीय संस्कृति और समाज के अपरिहार्य अंग बन चुके थे। भारतीय संस्कृति में कला के इन रूपों का बहुत विकास हो चुका था। 'नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरतमुनि उस परम्परा में एक अवतार पुरूष की भांति आये और नाट्य-शास्त्र को उन्होंने पंचमवेद कह कर समाज में शूद्रवर्ग के उत्थान का ऐसा अद्भुत काम किया जो आज भी अपना जयघोष कर रहा है। बल्कि उन्होंने आर्यो के विरूद्ध एक ललित आन्दोलन छेड़ा ताकि ब्राह्मणवादी समाज में उन्हें भी सम्मान प्राप्त हो सके।[16]

उत्तरवैदिक काल तक आते-आते वर्ण व्यवस्था कठोर हो चुकी थी। ब्राम्हणों ने नाचने, गानेवाले तथा वाद्यवादकों को शूद्र श्रेणी में रखा। आर्यो ने वेदों को द्विजातीय घोषित किया। वेदों के पठन-पाठन का अधिकार केवल ब्राम्हण और क्षत्रियों को दिया गया था। वेदों के समय में नृत्ताय सूतं अर्थात् नृत्य का काम सूतलोग करते थे। जो सूत वैदिककाल में नृत्य का पेशा करते थे। महाभारत काल में रथ चलाने वाले बन गये। कालान्तर में वे कथावाचक भी बन गये। जैसा कि सत्यनारायण की तथा अन्य कथाओं में देखने को मिलता है। बात प्रारंभ होती है - 'सूत जी बोले' नैमिषारण्य वन में सूतों का विद्यापीठ स्थापित हो गया, जहाँ सूतों को कथा-वाचन की शिक्षा दी जाती थी।[17]

उत्तरवैदिक काल में नटों का वर्ग अलग था, नर्तकों का अलग। जब शूद्रवर्ग के सूत नृत्य कला के क्षेत्र में सक्रिय हुए तो नटों ने भी अपने को इस विधि से जोड़ने का प्रयास किया। उनसे पूर्व के समाज में गायन-वादन-नर्तन के क्षेत्र में तौर्यत्रिक वर्ग के लोगों का वर्चस्व था। अब शूद्रों का आन्दोलन उठा और उन्होंने समाज में अपना स्थान ऊँचा बनाने के लिए कठोर प्रयत्न प्रारंभ कर दिये।

महर्षि वाल्मीकि का समय विदेशी विद्वानों द्वारा ईसा पूर्व 1600 वर्ष माना गया है।[18] यदि इसे स्वीकार कर लें तो यह सत्य हमारे समक्ष में आता है कि राम के समय नटों और नर्तकों के वर्ग अलग-अलग थे। वाल्मीकि ने लिखा है कि राम के अभिषेक के समय प्रजा में उत्सव हुआ था।

नटनर्तकसंघानां गायकानां च गायताम्।
यतः कर्णसुखा वाचः शुश्राव जनता ततः।।[19]

इससे स्पष्ट है कि उस समय नट, नर्तक तथा गायकों के वर्ग अलग थे। समाज में तौर्यत्रिक, भरत, नट, सूत, शैलूष, शिलालि, कृशाश्व आदि अनेक वर्ग थे जो इस कला के विविध अंगों से सम्पृक्त थे।[20] सामाजिक बदलाव प्रकृति का एक अनिवार्य अंग है। प्रकृति हो या समाज, परिवर्तन की क्रिया देश-काल के साथ चलती ही रहती है। सामाजिक व्यवस्था का अनुशासन जब कठोर हो जाता है, तब समाज में एक सहज आंदोलन स्वयं ही उठ खड़ा होता है। कालान्तर में ये सभी वर्ग उठे और समाज में अपना सम्मानपूर्ण स्थान बनाने के लिए प्रयत्न करने लगे।

संदर्भ सूची -

1. भरत और उनका नाट्यशास्त्र, डॉ. ब्रजवल्लभ मिश्र ; पृष्ठ 38, उत्तर मध्य क्षेत्र, सांस्कृतिक केन्द्र इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1988।
2. हिन्दू सभ्यता, प्रो. राधाकुमुद मुखर्जी, पृष्ठ 19, राजकमल प्रकाश लि. दिल्ली, प्रथम संस्करण-1952।
3. ऋग्वेद 5.33-6, आर्य प्रतिनिधि सभा, दीवान हॉल, दिल्ली।
4. ऋवेद 1.92-4, आर्य प्रतिनिधि सभा, दीवान हॉल, दिल्ली।
5. अथर्ववेद श्री वाजसनेही संहिता, अध्याय-1, मंत्र संख्या-6 चौखंबा विद्या भवन, वाराणसी।
6. कत्थक दर्पण, पं. तीरथराम आजाद, पृष्ठ 26, नटेश्वर कला मंदिर, दिल्ली।
7. अर्थववेद 12.1.14 आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली।
8. संस्कृत साहित्य का इतिहास, सेठ कन्हैयालाल पौद्दार, पृष्ठ 43, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद, 1946।
9. अभिनय दर्पण, आचार्य नन्दिकेश्वर, श्लोक-6, भातखंडे संगीत विद्यापीठ, लखनऊ प्रथमावृत्ति -1946।
10. कत्थक नृत्य शिक्षा, द्वितीय भाग, डॉ. पुरू दाधीच, पृष्ठ-3, विन्दु प्रकाशन उज्जैन, प्रथम आवृत्ति-1987।
11. अमर कोश, खंड-8, शूद्र वर्ग।.
12. संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी, सरमोनियर मोनियर नितियम्स, मोतीमहल, बनारसी दास, दिल्ली, देखे 'तौर्यत्रिकम्' शब्द।
13. वायस्पत्यम् तथा शब्दकल्पद्रुम में देखे - तौर्यक्षिकम्।
14. एतरेय ब्राह्मण, (2.25)।
15. कत्थक दर्पण, पं. तीरथ राम आजाद, पृष्ठ-31।
16. भरत और उनका नाट्यशास्त्र, डॉ. ब्रज वल्लभ मिश्रा-63।
17. सत्यनारायण व्रत कथा, पृष्ठ-4।
18. संस्कृत साहित्य का इतिहास, सेठ कन्हैयालाल पोद्दार, पृष्ठ-46।
19. रामायण, महर्षि बाल्मीकि, 2.67.13 गीता प्रेस गोरखपुर, एकादश संस्करण- 1961।
20. कत्थक दर्पण, पं. तीरथ राम आजाद, पृष्ठ-31।

कथक नृत्य का अन्यतम घराना : सुखदेव प्रसाद घराना

रंजना उपाध्याय

शोधार्थी, नृत्य विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

भारत में वैदिक काल से ही नृत्य का हमारे जीवन में एक अभिन्न अंग के रूप में वर्णन मिलता है। कालक्रमानुसार सभ्यता व संस्कृति के विकास के साथ नृत्य का एक स्वरूप कब 'कथक' कहलाने लगा, इसका निश्चित परिमाण ज्ञात करना एक विवादास्पद विषय रहा है। मुगलकाल में यह नृत्य मन्दिरों से निकलकर राजदरबारों की शोभा बढ़ाने लगा तो कथक को एक ओर हिन्दू राजाओं का आश्रय मिला वहीं दूसरी ओर मुगलों का यहीं से इस नृत्य में परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। एक ओर सात्विक अभिनय, ओज एवं तैयारी प्रदर्शित करने वाला कथक, दूसरी ओर शहंशाहों नवाबों की विलासिता दर्शाने वाला कथक। परन्तु इस नृत्य शैली का प्राचीन स्वरूप को भी रहा हो इस नृत्यशैली ने प्रत्येक कालक्रम से साथ नवाचार को आत्मसात कर स्वयं को समृद्ध ही किया है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी।

शास्त्रीय संगीत की प्रत्येक विधा चाहे वो गायन हो वादन अथवा नृत्य में घरानों का महत्व सर्वविदित है। वर्तमान समय में घराना शब्द से जो अर्थ हम समझते हैं उसका प्रचीनत्व 100 साल से अधिक का नहीं है। प्राचीन काल में इसे 'मत' नाम से जाना जाता है। घराना शब्द का सामान्य अर्थ वर्ग, सम्प्रदाय, घर, कुटुम्ब, वंशपरम्परा इत्यादि है। जिस प्रकार घर अथवा परिवार वर्ण अपनी विशिष्ट परम्पराएँ व संस्कृति होती हैं। उसी प्रकार नृत्य के क्षेत्र में भी घराना वह विशेष पद्धति है जो कि किसी वंश विशेष की परम्परागत थाती होती है तथा अपने पूर्वजों द्वारा पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होती है। जब कोई प्रतिभा सम्पन्न कलाकार अपनी नवनवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा के बल पर किसी नवीन कला शैली की उद्भावना करता है तथा अपनी शैली में कोई विलक्षणता अथवा अनोखे तत्व प्रदर्शित करता है। साथ ही वह शैली उसकी वंश परम्परा द्वारा अथवा शिष्यों के द्वारा कम से कम तीन पीढ़ीं तक यथावत् रूप से गतिमान रहती है तो वह शैली एक घराने के रूप में प्रतिष्ठित हो जाती है। कथक नृत्य में अपने-अपने विशिष्ट बोलों, लयकारी, निकास, भाव-पक्ष, तोड़े, टुकड़े के आधार पर भिन्न-भिन्न घरानों का आविर्भाव हुआ।

कथक नृत्य के लखनऊ, जयपुर व बनारस तथा वर्तमान में एक अन्य घराना रायगढ़ घराने के नाम हम सभी परिचित है परन्तु बनारस घराने का ही एक अंग सुखदेव प्रसाद घराना भी सितारा देवी जी द्वारा प्रतिष्ठित घराना है। प्राचीनता की दृष्टि से देखें तो यह एक नवनिर्मित घराना है, जिससे अधिकांश कथक समुदाय पूर्णरूपेण सहमत नहीं है। वास्तव में इस घराने को प्रतिष्ठत करने का श्रेय 'सितारा देवी' (08 नवम्बर 1920 से 25 नवम्बर 2014) जिनके नाम से सम्पूर्ण कथक जगत परिचित है तथा जो वास्तव में कथक नृत्य का एक दैदीप्यमान सितारा देवी को ही जाता है। पंडित रविन्द्र नाथ टैगोर द्वारा 'कथक साम्राज्ञी' की उपाधि से विभूषित सितारा देवी ने अपने पिता पं0 सुखदेव प्रसाद जी के नाम पर इस घराने को प्रस्थापित किया।

पं0 सुखदेव प्रसाद घराने की ऐतिहासिक पृष्ठभूमिः- सुविख्यात नृत्यांगना सितारा देवी ने अपने पिता एवं गुरू श्री सुखदेव प्रसाद जी के नाम से इस घराने को प्रस्थापित किया। श्रीमती सितारादेवी की मान्यता थी कि मेरे पिता श्री सुखदेव प्रसाद जी ने उस समय नृत्य को उभारा था जब मुगल राज्य के विलासी व श्रृंगारिक वातावरण तथा अंग्रेजो की सामन्तवादी समय में कथक नृत्य में भक्तिभाव का लोप होता जा रहा था, कथक नृत्य पतन के गर्त की ओर गिर रहा था। उस समय कथक नृत्य का चलन बाईजी अथवा वेश्याओं में अधिक था जिसके परिणामस्रूप सभ्य समाज में इसे हेय दृष्टि से देखा जाता था। ऐस नाजुक समय में इन्होंने धार्मिक पृष्ठभूमि के आधार पर लोगों का इस नृत्य के प्रति ध्यान आकर्षित करने का प्रयास किया। इस प्रकार भगवान के नाम से नृत्य देखें व सराहे गए। कला चल पड़ी और कथक नृत्य पुनः प्रतिष्ठित हो गया। उस समय समाज में लड़कियों का नृत्य करना अच्छा नहीं समझा जाता था। अतः पण्डित सुखदेवप्रसाद ने स्वयं अपनी लड़कियों-अलकनन्दा, तारा व सितारा-को मंच पर उतारा। जिससे धीरे-धीरे समाज में इसकी प्रतिष्ठा हुई व जनसामान्य में भी कथक नृत्य के प्रति रूचि एवं आदरभाव उत्पन्न हुआ। अपने इस कार्य के लिये उन्हें अनेक कष्टों का सामना करना पड़ा। उन्हें विरादरी से निष्कासित तक कर दिया गया। परन्तु वे तनिक भी विचलित न हुए। साथ ही अपने अथक प्रयासों से उन्होंने कथक नृत्य को सितारा देवी जैसे बहुमूल्य रत्न से समृद्ध किया। पण्डित सुखदेवप्रसाद जी ने कथक नृत्य को एक नया मोड़ दिया। ऐसा कहा जाता है कि रूप-सज्जा (डांम नच) एवं विभिन्न चरित्रों के अनुरूप वेशभूषा उन्होंने ही प्रारम्भ की थी। सितारादेवी का कहना है कि अन्य घरानों के नृत्यकारों एवं शिक्षकों ने इनके पिता श्री सुखदेवप्रसाद जी से सीखा एवं इनकी रचनाओं को आत्मसात् कर प्रदर्शित भी किया। किन्तु प्रदर्शन के समय ये लोग इनका कहीं नामोल्लेख नहीं करते। सिताराजी को यह ठीक प्रतीत नहीं हुआ। अतः इस समस्या के समाधान हेतु उन्होंने अपने पिता के नाम से ही 'सुखदेवप्रसाद घराना' नामकरण कर नृत्य जगत् में प्रस्थापित किया। इस प्रकार यह घराना प्राचीन नहीं नवनिर्मित घराना है।

सुखदेव प्रसाद घराने के नृत्यकारों की वंश-परम्परा :- श्री सुखदेवप्रसाद जी की दो पत्नियाँ थीं। उनमें से एक के तीन पुत्रियाँ-अलकनन्दा, तारा व सितारा व दो पुत्र-श्री पाण्डे महाराज (दुर्गाप्रसाद) व चौबे महाराज (चतुरभुज मिश्र) हैं। इनमें 'अलकनन्दा' व 'सितारा' नृत्य क्षेत्र में व 'तारा' गायन क्षेत्र में प्रवीण हैं। श्रीमती सितारादेवी आज देश की जानी-मानी सुविख्यात कथक नृत्यांगना हैं। संगीत-नृत्य के क्षेत्र में शायद ही कोई इनके नाम से अनभिज्ञ हो।

तारा देवी के एक पुत्र विख्यात नर्तक श्री गोपीकृष्ण थे। गोपीकृष्ण ने अपने कला-कौशल से विशेष ख्याति अर्जित की। सितारादेवी की दो पुत्रियाँ-जयन्तीमाला एवं प्रियमाला-इस घराने की परम्परा के प्रचार-प्रसार हेतु संलग्न हैं। चौबे महाराज (चतुरभुज मिश्र) के एक पुत्र अमरनाथ मिश्र भी उदीयमान कथक नर्तक हैं। इस घराने की वंशावली इस प्रकार है -

सुखदेवप्रसाद घराने की विशेषताएँ :-सुखदेवप्रसाद घराने की शैली के अपने अलग हस्तक, मुद्राएँ, बोल व पद-संचालन हैं, जिनके द्वारा

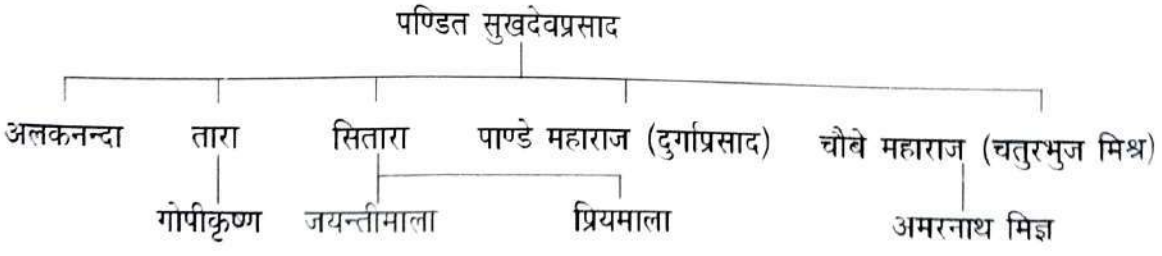

इस घराने का अंग स्पष्ट पता चलता है। पण्डित सुखदेवप्रसाद ने नाट्यशास्त्र व कुछ अन्य नृत्यों से प्रेरणा लेकर नृत्य के स्थानक व पैर के संचालन तथा हस्त मुद्राओं की अलग की अलग तकनीक रखी।

चूँकि नृत्य एक प्रदर्शनमूलक दृश्यकला है अतः इनकी बारीकियों एवं सूक्ष्म भेदों को शब्दों के माध्यम से व्यक्त करना मुश्किल है। इसके सूक्ष्म भेदों का अन्तर नृत्य-प्रदर्शन के समय ही अनुभव किया जा सकता है।

इस घराने की विशेषताएँ इस प्रकार हैं -

1. धार्मिक भावों की प्रधानता :-सुखदेवप्रसाद घराने की नींव धार्मिक पृष्ठभूमि पर आधारित है। जिस समय मुगल राज्य के प्रभाव स्वरूप कथक नृत्य के भक्तिभाव का लोप होता जा रहा था तथा नृत्य का सम्बन्ध 'बाइयों' व 'कोठेवालियों' तक ही सीमित हो गया था, ऐसे समय में पण्डित सुखदेव महाराज ने कथक नृत्य में धार्मिक भावना का पुट दिया और अनेक भक्ति भावना पूर्ण नृत्य-रचनाओं के द्वारा इस नृत्य कला को समाज में पुनः प्रतिष्ठित किया। इस घराने का नृत्य भक्ति से जुड़ा हुआ है।

2. वन्दना की महत्ता :- धार्मिक पृष्ठभूमि पर आधारित होने के कारण इस घराने में 'वन्दना' का विशेष महत्व है। ऐसी मान्यता है कि 'वन्दना' की परम्परा इसी घराने से प्रारम्भ हुई।

3. ताण्डव अंग की प्रधानता :- सुखदेव प्रसाद घराने में 'ताण्डव' जैसी वीर तथा रौद्र रचनाओं का प्राधान्य है। ऐसी मान्यता है कि अर्द्धनारीश्वर, ताण्डव नृत्य आदि का प्रदर्शन सुखदेवप्रसाद घराने ने ही प्रारम्भ किया। अतः इस घराने के नृत्य में अन्य रसों के साथ वीर रस का आधिक्य है। इसके अतिरिक्त कृष्णपरन, शिवपरन, दुर्गापरन आदि परनों की भी इस घराने में अधिक प्रदर्शित किया जाता है। सुखदेव प्रसाद जी द्वारा रचित 'शिव कवित्त'

ओम डिमक डिम डमरू बाजे
गिर कैलाश शिखर पर राजे
धिमंग धिमंग धुनि मृदंग बाजे
शीश गंग अरधंग बिराजे
उमा रमा हरि सब सुर साजे
कर त्रिशूल डमरू लिवे नाचे
शिव छम छम छम छन नन नन नन
तत थईया थईया ता - थईया थईया ता - थईया थईया ताऽ
शिव छम छम छम छन नन नन नन
तत थईया थईया ता - थईया थईया ता - थईया थईया ताऽ
शिव छम छम छम छन नन नन नन
तत थईया थईया ता - थईया थईया ता - थईया थईया ताऽ

4. पढ़न्त का महत्त्व :- इस घराने के नृत्यकारों की मान्यता है कि पढ़न्त के बिना कथक नहीं हो सकता। कथक में पढ़न्त जरूरी है क्योंकि हाथ, पाँव और मुख से ही कथक है। इससे दर्शकों में समझ बढ़ती है व समझाकर नृत्य करने से देखने वाला 'रस' में डूबता है।

5. नवीन रचनाओं का प्रदर्शन :- इस घराने में नवीन रचनाओं को प्रदर्शित करने की परम्परा रही है। कथक नृत्य-शैली द्वारा नृत्याभिनय सुखदेवप्रसाद घराने द्वारा ही प्रारम्भ हुआ। इस सन्दर्भ में सितारा देवी का कथन है-'तराना' पर नृत्याभिनय पहले नहीं होता था। इसे सर्वप्रथम मैंने ही 1956 में 'सुरसंगम कॉनफ्रेंन्स' बम्बई में प्रदर्शित किया था। किन्तु जयपुर घराने के नृत्याचार्य श्री गौरीशंकर जी का कहना है कि वह 1953 में ही 'तराना' को कथक नृत्य शैली द्वारा प्रदर्शित कर चुके हैं। अतः इस विषय में मतभेद है। इसके अतिरिक्त रामायण से प्रेरणा प्राप्त कर सितारा देवी ने 'जटायुमोक्ष' जैसी कठिन रचना प्रदर्शित की एवं अच्छन महाराज के 'मयूर नृत्य' को इन्होंने लच्छू महाराज से सीखकर प्रदर्शित किया। इस विषय में उनका कथन है कि केवल वे ही इस नृत्य का प्रदर्शन करती हैं। नवीन रचनाओं के सन्दर्भ में सितारादेवी ने 'मशीनगन' ध्वनि के आधार पर एक तोड़ा बनाया है जिसकी प्रस्तुति वे बड़े अनोखे ढंग से करती हैं, इनका कला-कौशल देखते ही बनता है। इन्होंने अनेक नवीन सांगीतिक रचनाओं का निर्माण कर उन्हें प्रदर्शित किया है।

6. विशिष्ट अभिव्यक्ति :- सुखदेव प्रसाद घराना विविध गुणों की खान है। इस घराने की प्रतिनिधि श्रीमती सितारादेवी ने पण्डित सुखदेव महाराज के अतिरिक्त 'लच्छू महाराज' का लास्य-अंग

व नागिन जैसी लचक, शम्भू महाराज का नटवरी नृत्य व तीव्र गति एवं सुन्दर प्रसाद व बिरजू महाराज की अनेक बन्दिशों को सँजोकर एक नवीन रूप में इस शैली को प्रस्तुत किया।

7. शास्त्रोक्त अंग-संचालन :- सुखदेव प्रसाद घराने में 'नाट्यशास्त्र' पर आधारित विविध अंग-संचालनों का प्रयोग होता है। इस घराने में भ्रमरी (चक्कर) का एक विशिष्ट तरीका है। जो अन्य घरानों से भिन्न हैं।

8. वेशभूषा :- सुखदेव प्रसाद घराने में वेशभूषा का अत्यधिक महत्व है। सितारा देवी की मान्यता है कि चूड़ीदार पायजामा आदि मुगल-वेशभूषा में श्रीकृष्ण-राधा की छेड़छाड़ उचित प्रतीत नहीं होती। तोड़े-टुकड़े इत्यादि तो मुगल परिधान में फिर भी चल सकते हैं किन्तु 'वन्दना', कृष्ण राधा की लीला इत्यादि का प्रदर्शन लहँगा, चोली व ओढ़नी पहनकर ही करना चाहिए। वे स्वयं आमद व कई प्रसंग चुस्त पोशाक में करती हैं। उनका कहना है कि यह 'आम्रपाली भूषा' है। अतः आम्रपाली गणिका की वेशभूषा के सदश्श ही इस घराने में वेशभूषा पहनी जाती है। इसके अतिरिक्त लहँगा, चोली, ओढ़नी इत्यादि भी पहनी जाती है। इस घराने में मुगल पोशाक नहीं पहनते। ऐसी मान्यता है कि रूप-सज्जा (डांम नच) का चलन इसी घराने के द्वारा प्रारम्भ हुआ।

9. संगीत-वाद्य :- कथक नृत्य में संगीत-वाद्यों में 'सारंगी' व तबले का प्रयोग तो प्रारम्भ से ही होता था किन्तु ऐसी मान्यता है कि धार्मिक पृष्ठभूमि होने के कारण पखावज व मंजीरे का चलन 'सुखदेव प्रसाद घराने' से ही शुरू हुआ।

10. पूरे मंच का उपयोग :- सुखदेवप्रसाद घराने की यह विशेषता है कि इस घराने के नर्तक अपने नृत्य-प्रदर्शन के दौरान पूरे स्टेज को कवर करते हैं, जिससे दर्शकों पर उचित प्रभाव पड़ता है। इससे खालीपन नहीं, लगता, भराव रहता है।

11. खुला दृष्टिकोण :- सुखदेवप्रसाद घराने की सुविख्यात नृत्यांगना श्रीमती सितारा देवी का मत है कि घरानेवाद के चक्कर में हम नहीं पड़ते, हाँ यह अवश्य है कि जिस गुरू से जो शिक्षा प्राप्त करो, प्रदर्शन के समय उनका नाम लो, चोरी मत करो। यही कारण है कि सितारा देवी ने अपने पिता के अतिरिक्त लखनऊ व जयपुर दोनों घरानों के नृत्याचार्यों से बहुत कुछ ग्रहण किया। सुखदेव प्रसाद घराने के कुछ प्रमुख नृत्यकार :-

1. श्री सुखदेव महाराज 2. सुश्री सितारा देवी
3. श्री गोपीकृष्ण 4. सुश्री जयंतीमाला

इस प्रकार अपने कलात्मक वैशिष्ट्य के फलस्वरूप वर्तमान समय में पं. सुखदेवप्रसाद की परम्परा एक घराने के रूप में प्रतिष्ठित है। देखा जाए तो घरानों की परमपरा आज भी विरोध और सहयोग दोनों को अपने में समाहित किए हुए हैं तथा प्रत्यक्ष व परोक्ष दोनों ही रूपों में कथक को संस्कारिक एवं संवर्द्धित बनाने के लिए सतत् प्रयत्नशील व प्रयोगशील है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में कथक नृत्य - डॉ0 माया टाक
2. कला वसुधा पत्रिका, सम्पादक - उषा बनर्जी, संयुक्तांक 5, 6 अक्टूबर 2002 मार्च 2002
3. कथक प्रसंग- रश्मि बाजपेयी

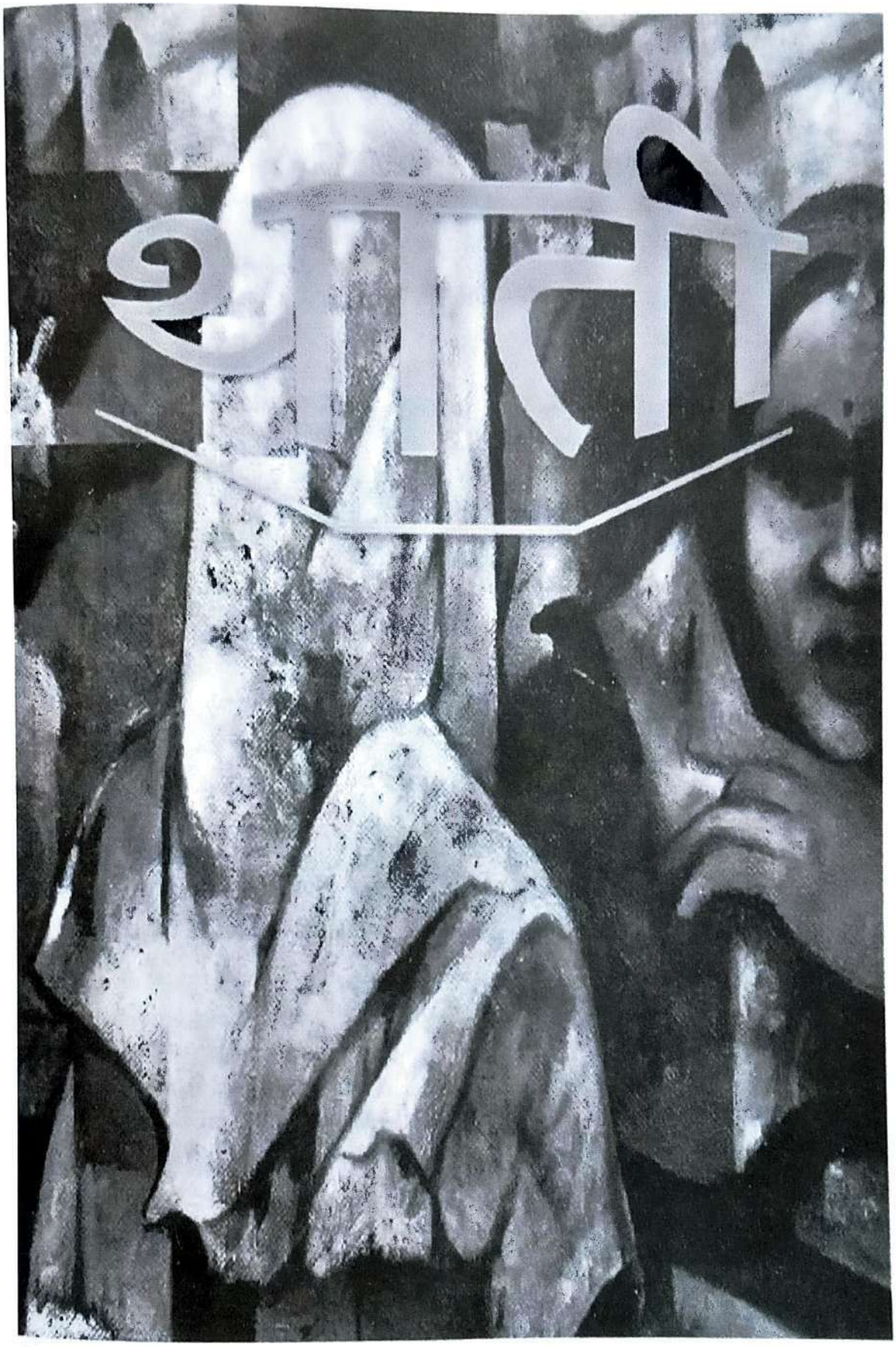
आदमी

मोहम्मद रफी

"लोक गीतों में क्रांन्ति के बोल"

डॉ. मन्नू यादव

सुप्रसिद्ध बिरहा कलाकार

महात्मा गाँधी जी कहा करते थे कि ग्राम गीतों में भारत की असली आत्मा निवास करती है। पं. रविशंकर, पं. ओंकार नाथ ठाकुर, पं. कुमार गन्धर्व का भी यही मानना था कि लोक संगीत ही शास्त्रीय संगीत की जननी है।

भारत गाँवों का देश कहा जाता है। यहाँ के निवासियों ने हूण, शक, कुषाण, मंगोल, मुगलों, तुर्की, अंग्रेजो के क्रुर थपेड़ों को सह कर जीवन यापन किये। जब जरूरत पड़ी तो इन सभी के खिलाफ क्रान्ति छेड़ने के लिए अपने लोक गीतों से ही प्रहार कर आवाम को संदेश दिये।

1857 की समग्र क्रान्ति के काल में उत्तर भारत की प्रतिनिधि लोक गायन शैलियों ने अपने-अपने आयामों से जन मानस में क्रान्ति का संचार करती रही। अंग्रेजों के पास जहाँ डाक तार विभाग था वही विखण्डित भारत में ये लोक कलाऐं ही संवहन की साधन हुआ करती थी। जिसमें बिरहा, कजरी, चैता, आल्हा, पूर्वी, छपरहिया, झूमर, लचारी, भगैत, बिहू, बाउल, पंडवानी, रसिया, रागिनी, लावनी, कालवेलिया, डमरू, मदारी, बहुरूपिया, जोगिया, विजयमल, लोरिकी, चन्दैनी, खड़ी बिरहा आदि प्रमुख रहे।

बिहार में वीर कुँअर सिंह के घोड़े की वीरता का बखान करता हुआ एक बिरहा का बोल–

वीर कुअर सिंह के नील का बछेड़वा
पीयेला कटोरवन दूध,
ऐदिया रइनिया जितइहै नील बछेड़वा
की सोनवा मढइवै चारो खूर,

यहाँ लोक गायक की भावना यह इंगित कर रही है कि लड़ाई बहुत लम्बी है, सवेरे-सवेरे जल्दी उठकर चलना है, घोड़े की सेवा हो रही है, और गायक यही उस घोड़े से कह रहा है कि इस बार समर को जिताओगे तो तुम्हारे चारो पैरो मे जो लोहे का नाल लगा है उसके स्थान पर सोने का नाल मढ़ा दूँगा।

पटना में पीर अली दिन में पुस्तक बेचते थे तथा रात्रि में क्रान्ति का एलान करते थे, पटना सीटी स्टेशन पर 5 जुलाई सन् 1857 को नील आफिसर के लिए जो आवाज था वह, हिन्दु और मुसलमान दोनों इस प्रकार बिरहा के लय में देते थे–

बगावत के बलपे हम बैरागी बन के,
कुशासन को तेरे कुचलते रहेंगे,
रूके गा न पग ये झूकेगा न झण्डा
हम क्रान्ति का सोला उगलते रहेंगे,
या अली कहता था हिन्दू भाई
बजरंगी कहता मुसलमान आई।
ये वतन है हमारा हमारा रहेगा,
इस वतन के लिए सर कफन बाँध करके,
चिताऐं सजा करके जलते रहेंगे।

अंग्रेजों की फूट डालो राज करो के नारे का जवाब हिन्दु-मुसलमान इस तरह देते थे, हिन्दू या अली कहता था और मुसलमान जय बजरंग बली कहता था। इस प्रकार क्रान्ति को एक दूसरे स्थान पर जाते और क्रान्ति की खबर एक दूसरे जिले से

जिले में फिर एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में खबर फैल जाती थी। वीर कुवर सिंह की वीरता का बखान करता हुआ चैता गीत–

हथवा में लेहले तलरिया हो रामा
चलतै बल करिया,
रात दिन समर में लोहा गहैतै जवनवा,
पापी अंगरेजवन के कइतै एलनवा,
विजय घोष करै रणधरिया हो रामा-
चलतै बल करिया हो रामा-
अपने हाथे काट दिहतै आपन वीर बहिया,
हँसत हँसत देश खातिर भरतैन अहिया।
रहिया मे हारे छलकरिया हो रामा,
चलतै बल करिया।

83 साल की उम्र में वीर कुँअर सिंह ने तलवार से जिस हाथ में अंग्रेजो की गोली लगी थी उसे हंसते हंसते काट कर गंगा में प्रवाहित कर दिये, घर पर तीन दिन तक विश्राम के दौरान, जहर बदन में फैल जाने के कारण उनका अन्तकाल हो गया।

1942 के अंग्रेजो भारत छोड़ो आन्दोलन में सहदेव खलिफा द्वारा गायी गयी कजरी, गीत जिसे बिरहा के लय मे। गाया गया था।

सत सम सत्य अहिंसा स्वतन्त्र हिन्दुस्तान से निकला
बापू के जुबान से निकला, भारत के मुस्कान से निकला ना
जाने माने कजरी के गायक बद्री सिंह मठना मीरजापुर
तेगा वही रहा केवल तेगे की धार बदल गयी
गोरो की सरकार बदल गयी, ना,
जागे भारत मा के वीर,
लोहा लिए सदा समसीर,
हारी गोरी पलटन, उसके गले की हार बदल गयी
गोरो की सरकार बदल गयी ना,

अंग्रेजो ने जब भारत को आजाद करने की घोषणा की उस समय बफ्फत अखाड़े में गायी जाने वाली कजरी गीत को अभी भी यदा कदा लोग गाते रहते हैं।

जव भारत का वैटवारा हो रहा था, एक तरफ कट्रपंथ एक तरफ उदार पंथ दोनों को एक दूसरे से बिछुड़ने की पीड़ा एक पूर्वी गीत में परम्परागत हस्तान्तरण से रामजीपुर निवासी स्व. रामराज यादव विरहा गायक अपने मंचों पर पूर्वी गाते थे-

भाई से लडवलस भाई, भाई भये मुदइया
नइपा कइसे चली, घाटे घाटे चलै तलवार
नइपा कइसे चली,
करिके बँटवारा चलि गइलै बेइमनवा,
भारि भूल भइल बटि गइलै मोर बतनवा।
सोना चानी हीरा मोती हर लेहलै मुदइया,
नइया कइसे चली,
बाँटी गइली धारा में पतवार नइया कइसे चली।

इस प्रकार लोक के मन में आने वाली हर्ष एव विषाद के तथ्य लोक गीतो में बरबस फूट पड़ते हैं। बँटवारे के समय इसी प्रकार का दर्द यह पूर्वी गीत वयाँ कर रही है।

मेरठ के गदर से लेकर दिल्ली के लाल किले के लाहौरी दरवाजे तक लोक गीतों में वीरता के भाव फूटा करते थे, बहादुर शाह जफर की वीरता को इंगित करती हुई एक छपरहिया गीत- (बिरहा के रूप में)

आखिर कबले रख्खल रही लोहे क गहनवा हो,
गहनवा हो, जागा जागा हमरे किसनवा हो, किसनवा हो,

इन दो पंक्तियों से ही किसानों में क्रान्ति के संचार का भाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। लोहे के गहने का मतलब, भाला, तेगा, तलवार से है यह किस काम के लिए रखा रहेगा, ऐ जवानों, किसानो अंग्रेजो पर टूट पड़ो। पटना गजेटियर से प्राप्त इस गीत का प्रदर्शन 11 मई 2007 को लाल किले के प्राचीर से मेरे दल ने 1857 की क्रान्ति के 150वें वर्षगाँठ पर मा. प्रधानमंत्री व महामहिम राष्ट्रपति के समक्ष पद्मश्री राजीव शेट्टी जी निर्देशन में किया था। सर अब्राहम गिर्यशन के भाषाई सर्वेक्षणों में तमाम ऐसे तथ्य हैं।

इसी प्रकार के तथ्य राव कृष्ण गोपाल के बारे में रागिनी गायन शैली में भी प्राप्त है। वकील

ब्रह्मपाल नागर देश भक्ति के प्रति समर्पित कौरवी गायन शैली की लोक गीत देखें-

भारत माँ की शान बढ़ा दी
राव किशन मेरा नाहर हो,
अंग्रेजो को खदेड़ मारो,
भारत से करो बाहर हो-

लखनऊ विश्वविद्यालय के प्रो. मोहनलाल गुप्ता जी के शोध प्रबन्ध में हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, दिल्ली के अंचल में गायी जाने वाली 'रागिनी' में राव तुलाराम सिंह के चचेरे भाई राव किशन गोपाल के बारे में कहा जाता है कि इन्होनें अंग्रेजी पुलिस अधिकारी रहते हुए 80 अंग्रेजो का सर कलम कर उग्र क्रान्ति को सम्पूर्ण क्रान्ति बनाने में बहुत बड़ी भूमिका का निर्वहन किया था, ये लोग गुड़गाव के राजा हुआ करते थे, राव तुलाराम जी रंगून में क्रान्तिकारियों की मदद करते करते वही पर दम तोड़ दिये, वहाँ अफगानिस्तान के बादशाह ने उनकी समाधि बनाकर श्रद्धाँजलि दी। मौखिक साक्ष्यो, तथा परंपरागत हस्तान्तरण से ऐसे तमाम अंशों के छोटे-छोटे बोल बरबस हिन्दी भाषी अंचलों में प्राप्त हो जाते हैं। जिनमें क्रान्ति के वीरों के बारे मे। लोक स्वर के बोल मिलते रहते हैं। उनका लेखन उस काल में नहीं हो पाया परन्तु एक ऐसा समाज आज भी हैं, जो गोचारण पशुपालन, कृषि जीवी संस्कृति के साथ इसे, मौखिक रूप से अपने पीढ़ीगत स्वतः हस्तान्तरण से बचाये हुए हैं। आज जरूरत है उसके प्रलेखीकरण एवं खोज की तथा हूबहूँ आने वाली भावी पीढ़ी को उसी मूल रूप में सौपने की ताकि परम्परा के साथ-साथ यहाँ की लोक संस्कृति के क्षरण को रोका जा सके।

(लेखक- भारत सरकार, संगीत नाटक अकादमी नई दिल्ली द्वारा राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित है।)

'नौटंकी : एक विवेचन'

नंदल हितैषी

कलाविद्, इलाहाबाद

नामकरणक

नौटंकी लोक नाट्य विद्या का लघु प्रचलित माध्यम रहा है, जिसमें न केवल कथा-कहानी, प्रेमालाप, कविताई और गायकी की, एक मजबूत परंपरा रही है।

लोक नाटकय की अन्य विद्याओं में *नकटा / नटकौरा / पंवारा* और *करिंगा* थे विद्याएं अब लगभग विलुप्त होने के कगार पर खड़ी हैं, और *नौटंकी* आज भी अपने उत्थान-पतन का नगाड़े पर मुनादी सी कर रही है। नौटंकी की एक ठकर पूरे उत्तर भारत में रही है। अपनी ऐतिहासिकता के ककेटे *कीर्तिन / भगत / रास / रारुक / स्वांग* और *स्वांग खोड़ा* के संस्था से होती हुई नौटंकी का स्वयप विकसित होता है।

कहते हैं उक्त संदभर्भ से हो कर यह लोक नाट्य मुल्तान के एक शारूल की 'नौटंकी' नामक शहजादी की प्रस्तुति या खेले ने नौटंकी का नामकरण किया।

नौटंकी नामकरण के पीछे भी विद्वानों के अलग-अलग मत हैं।

कुछ विचारक इसे 'नाटकी' का अपभ्रंश मानते हैं। कुछ की मान्यता है चूंकि इस प्रस्तुति में, साहित्य के नव रसों की उत्पत्ति होती है, इसलिए नौटंकी नामकरण हुआ।

कुछ लोगों का तई है कि 'यह लोक नाट्य खुले मंच पर खेत, खलिहान, बाग, मेले या बाजार-हाट की प्रस्तुति के चौधरी लोग बतौर टिकट नौ टके का चंदा उगाहने लगे थे, इसलिए इसका नाम नौटंकी पड़ा।

जब मैं कक्षा आठ का विद्यार्थी था अपने गांव पट्टी दलीपपुर-प्रतापगढ़ (उ. प्र.) लगभग चार दिन तक एक नौटंकी मंडली ने 'भक्त पूरन मल' / शीत, बर्कत' / 'भक्त प्रहलाद' और कोई एक प्रस्तुति जिसका नाम अब स्मरण में नहीं है। मैंने चिखुरी चाचा से पूछा था, 'इक खेल को नौटंकी क्यों कहता है'? चचा के अनुसार 'जिस खेल में नौ नगाड़ों पर एक साथ टंकार किया गया, वही खेला नौटंकी कहलाया।

कई वर्ष पहले नई कविता के पुरोधा डॉ. जगदीश गुप्त, वे उस समय 'हिंदुस्तानी एकेडमी' के अध्यक्ष भी थे, जब मैंने उनसे नौटंकी नामकरण पर चिखुरी चाचा की बात कही थी तब उन्होंने कहा था 'वाह! नन्दल! तुम भी कैसा-कैसा तर्क देते हो, भला एक आदमी नौ नगाड़ों पर एक साथ कैसे चोट कर सकता है?

मेरा उत्तर था, गुरू जी। जब एक जलतरंग कारक, बारह छोटी-बड़ी प्यालियों में आवश्यकतानुसार पानी भर कर, दो हुडिया के बजा सकता है तो क्या एक सिद्ध हस्त नगाड़िया नौ नगाड़ों की नहीं बजा सकता है'। हंसी में बात आई, गई हो गई। अगर नौटंकी से नगाड़ो को निकाल दिया जाए तो वह खेला था प्रस्तुति नौटंकी से नहीं ही कहलायेगी। नौटंकी में सर्वाधिक मुखरित होता है नगाड़े की

टनकार। कहू रुकत हैं प्रस्तुत के पूर्व, उद्घोषणा सा करता हुआ कोसों दूर-दराज के लोगों को प्रस्तुति स्थल तक बुलवाने का एक सादर, ध्वनियों के माध्यम से निमंत्रण।

पंजाब में नौटंकी संबंधी एक लोक कथा भी प्रचलित है–(नौटंकी नाम की कोई राजकुमारी थी, जो प्रति दिन फूलों से तोली जाती थी। फूल सिंह नामक एक युवक अपनी भावज से खाने में कोई स्वाद न होने की बात कहता है, बस... भाभी का तेवर सातवें आसमान पर। बोली देकर! हुक्म तो ऐसे चला रहे हो, मानो नौटंकी को हो ब्याह कर लाए हो। एक फूल सिंह निकल पड़ा नौटंकी को ब्याहने, बड़ी मशक्कत और खतरों का उठा कर कहें अपने उद्देश्य में सफल होता है।

'सखुन् कढ़े देवर कहौ
क्यों हुए बौरान
किस बिरते पर करी है
इतनी गुस्सा आन।
इतनी गुस्सा आन,
चलाते हुक्म यहां आये हो
ऐसे बोलो बोल आप
किस दिमाग में छाये हो?
लौंडी बांदी मोय जानी जो
इस कदर सतराये हो।
क्या मिजाज इतना
क्या ब्याह के नौटंकी लाये हो'?

(नौटंकी-शहजादो)

नौटंकी गीत नाट्य विद्या की अदाकारी है उ. प्र. के सहारनपुर/मुजफ्फर नगर/मेरठ/मथुरा/ हाथरस/एटा/कानपुर/लखनऊ/कन्नौज/आगरा आदि में इसकी पारंपरिकता का चलन एक लंबे अरसे तक रहा है।

सहारनपुर/मुजफ्फर नगर तथा मेरठ में इस विद्या को *स्कंग* नाम से/शाहजहांपुर के आस-पास *नकल* नाम से/हाथरस/इटावा तथा एटा परिक्षेत्रक, *संगीत* नाम से और कानपुर/लखनऊ/कन्नौज/मैनपुरी/आगरा तथा इलाहाबाद के क्षेत्रों में *नौटंकी* नाम से जाना जाता रहा है।

विदूषक की परंपरा

जैसे रंग-मंच की प्रस्तुतियों में 'सूत्रधार' की भूमिका अहम् होती है। वैसे ही नौटंकी में नट-नटों/रंगा-रंगी/ऐसे ही लोक नाट्य नौटंकी में 'जोकर' (कहीं-कहीं इसे 'पिस्सू' भी कहा गया है, की भूमिका अति महत्त्वपूर्ण है।

एक ओर जहां यह पात्र मूल कथा को विस्तारित करता है, वहीं अपने हरकतों और गायकी से मनोरंजन के साथ-साथ सामयिक व्यंग्य भी करता चलता है। दर्शकों को जैसे इस पात्र की प्रतीक्षा सी रहती है। जो मसखरी के साथ-साथ अभिनय, नृत्य और गायन में भी फिट बैठता है। हाजिर जवाबी-भी इसकी एक अलग विशेषता होती है।

उद्भव / विशेषताएं

मुझे लगता है ग्यारहवीं, बारहवीं काल में ही नौटंकी का जन्म काल माना जाना चाहिए। इसके जन्मदाताओं में *मल्ल / रावत / राजपूत* और रंगा जुलाहा थे, जो ढोलक पर अभिनय भी किया करते थे। तेरहवीं शताब्दी में अमीर खुसरो ने इस परंपरा को भाषाई स्तर पर बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया। लगभग अठारहवीं शदी तक नौटंकी का विस्तार पूरे उत्तर भारत में हो गया था, लोक नाट्य प्रस्तुतियों को एक मजबूत और लोकप्रिय विद्या के रूप में।

नौटंकी स्वांग परंपरा की एक शैली के रूप में विकसित हुई। स्वांग में संगीत, नृत्य, अभिनय गायन और वादन की परंपरा रही है।

- *नौटंकी* का वास्तविक नाम *संगीत* है।
- भाषा के स्तर पर एक साहसी विरासत है लोक नाट्य नौटंकी।
- सर्वहारा वर्ग का मनोरंजन है नौटंकी।
- नौटंकी देखने वाले और खेलने वाले सामान्य रूप से, किसान, मजूर, मिस्त्री और दलित वर्ग के होते आये हैं। देखा जा सकता है हाथरस के कवि और गायक उस्ताद ईदारमन, चिरंजी लाल, गणेशी लाल और गोविंद राम जाति और पेशे से रंगरेज थे।

- कानपुर के श्रीकृष्ण पहलवान पेशे से दर्जी थे।
- बनारस के नौटंकी कलाकार अधिकतर मुस्लिम थे।
- नौटंकी के प्रारंभिक महिला कलाकारों में बेड़िन, नटनी, सूप-चलन बनाने वाली, सिल-बट्टा कूटने वाली, नाच गाने से जुड़ी महिलाओं की एक परंपरा रही है।

नौटंकी के आधार

- रस के आधार पर—(वीर रस / शृंगार रस / शांत रस / भक्ति रस एवम् मिश्रित रस।
- कथा के आधार पर—(पौराणिक / ऐतिहासिक / सामाजिक एवम् विविध)
- उद्देश्य के आधार पर—(धर्म / अर्थ / काम/ मोक्ष)।

लोक नाट्यों की समृद्ध परंपरा

- उत्तर भारत (रामलीला / रासलीला)
- मध्य प्रदेश (माच)
- राजस्थान—(माच, 'ख्याल' के रूप ममें प्रचलित है)
- उत्तर-प्रदेश— (नौटंकी जिसे 'स्वांग', 'भगत' या कहीं-कहीं 'खेला' भी कहा जाता है।)
- ब्रज— (भगत)
- पूर्वी जिले—(विदेसिया)
- महाराष्ट्र—(तमाशा / ललित / गोंधल / गुरुपिया / दशवतार आदि नामों से भी जाना जाता है। 'तमाशा' प्राचीन लोक नाट्य है, तमाशा करने वाली मंडली 'फड़' कहलाती थी।
- दक्षिण भारत—('यसगान', तेलगू में इसे 'विथि' या 'विथि भागवतम' कहने की प्रथा रही है।)

ऐतिहासिकता

- हिंदी साहित्य के इतिहास में दो भाइयों का उल्लेख मिलता है, 'ललित किशोरी' और 'ललित माधुरी' जिनका वास्तविक नाम शाह कुंदन लाल और शाह फुंदनलाल था। दोनों नवाब वाजिद अन्नी शाह 'रहस लीला' के वस्त्राभूषण के अधिकारी थे। नवाब के कलकत्ता प्रवास के बाद दोनों भाई वृंदावन पहुंचे और जाहरमल की मंडली में शामिल हो गए।'

मध्योतरी कला संगम

अंक अप्रैल-जून/2011, पृ. 30-31

- कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के डॉ. कैथरीन ने अपने शोध में रेखांकित किया है कि 'खुशीराम' द्वारा लिखित *सांजीत रानी नौटंकी* का काशी से 1882 में प्रकाशन हुआ था, जिसकी प्रस्तुति सर्व प्रथम प्रयाग के लाला कल्याणचंद्र ने किया था।

(संदर्भ - वही)

- लोक कलकारों में जहां अपनी विभिन्न प्रस्तुतियों के द्वारा लोगों का भरपूर मनोरंजन किया वहीं इतिहास, अध्यात्म और सामाजिक सरोकारों को भी उजाकर किया। *देश की आजादी* को भी, लोक गीता और नौटंकियों के जरिये विगुल बजाया। इलाहाबाद घराने ने इस संदर्भ का विशेष रूप से प्रतिनिधित्व किया है। पं. मोतीलाल नेहरू, जवाहर लाल नेहरू, कमला जी और लाल बहादुर शास्त्री आदि इसके साक्षी रहे हैं।
- कानपुरी नौटंकी के संस्था का मुखिया पं. कृष्ण पहलवान ने इलाहाबाद के पं. रामराज त्रिपाठी के साथ स्वाधीनता संग्राम के हिस्सेदारी किया और अपनी सामाजिक और आवश्यक प्रस्तुतियों के माध्यम से 'जुल्मी'डायर' । 'खूने नाहक' / 'बलिया का इतिहास' और 'असहयोग चटनी' आदि को ऐतिहासिक संदर्भों में गिनाया जा सकता है।
- इलाहाबाद नौटंकी का अदाकार 'हबीबुन बाई' को पंडित नेहरू जी ने 'कोकिला बाई' का खिताब दिया था।
- लोक नाट्य नौटंकी के नाम पर विशेष रूप से उसके आधिकारिक इतिहास और विकास यात्रा पर पुस्तकों और ग्रंथों का लगभग अभाव है, चाहे श्रुति परंपरा इसके कारण में रही हो,

चाहे लेखकों या साहित्यकारों द्वारा उपरोक्त की भावना, चाहे मंडलियों के मुखिया का अभिसित होना, और चाहे दस्तावेजीकरण का अभाव। नौटंकी की केंद्रीयता पर रामनारायण अग्रवाल की एक पुस्तक *सांगीत* अवश्य प्राप्त होती है जिसमें हाथरस/मथुरा/अलीगढ़/आगरा/कानपुर/लखनऊ के घरानों पर छिटपुट विवरण मिलता है बस...।

मंगलाचरण

नौटंकी के प्रारंभ में मंगलाचरण की परंपरा का निर्वहम होना अति-आवश्यक होता है। ईश वंदना प्रस्तुतियों की सफलता के लिए एक निवेदन होता है। मंडली के लगभग सारे कलाकार मंच पर अर्द्ध चंद्राकारी खड़े हो कर प्रार्थना करते हैं।

एक लम्हे अरसे तक राधेश्याम रामायण की निम्न पंक्तियां अपने चलन में रही हैं–

'निर्बल के प्राण पुकार रहे / जगदीश हरे जगदीश हरे / स्वासों के स्वर इनकार रहे / जगदीश हरे, जगदीश हरे / आकाश हिमालय, सागर में / पृथ्वी पाताल, चराचर के / यह मधुर शब्द गुंजार रहे / जगदीश हरे, जगदीश हरे'।

इसके अतिरिक्त गणेश वंदना, देवी स्तुति, गांव ज्वार के कुल और ग्रामय देवी-देवताओं, डीह यानी अपनी क्षेत्रीयता की भी पूजा की जाती है। लेक गीतों की तर्ज़ पर भी मंगलाचरण की परंपरा रही है।

मंगलाचरण के रूप में तीर्थराज प्रयाग की भी परंपरा रही है विशेष रूप से इलाहाबादी मंडलियों में–

'सब तीरथों में बड़ा, प्रयाग राजस्थान
नर-नारी दरशन करें, गुनी लगायें ध्यान'

(दोहा छंद)

'गुनी लगाने हथान, मकर में मेला लगता भारी
पास उसी के पेड़, असयनट, किला मुगल करधारी।
दत्त-चित्त हनुमान पड़े, जो महावीर बलधारी
जिसके सुमिरन से हो मंगल भवन, अमंगल हारी'

(चौ बोला छंद)

'जहां हर धर्मी आये
यहीं से जगे-जगाये।
अदब का शहर हमारा
संस्कृति का बजे नगारा'

(दौड़-छंद)

नौटंकी की भाषा

साहित्यक भाषा से नौटंकी की भाषा बिल्कुल अलग होती है। किसी हद तक बाज़ारू भाषा कह सकते हैं इसे। उर्दू का एक मतलब बाजारूपन भी होता है। संस्कृत निष्ठ या पौराणिक भाषा का बनावटीपन नौटंकी की गायकी या संवादों में व्यथित होती है।

नौटंकी में सीधी बात को सहज ढंग से कहना होता है तभी उसका प्रभाव उत्पन्न सभी रस दर्शकों और श्रोताओं से अपना 'साधारणीकरण' स्थापित करता है। जहां संवाद भी पद्यात्मक होने की अनिवार्यता हो वहां भाषा, शिल्प और प्रवाह के बिना काम नहीं चल सकता है।

गायकी और छंद

सच तो यह है कि नौटंकियों में जहां एक ओर संवाद प्रभावी होता है वहीं दूसरी ओर उसकी गायकी, कहीं से उन्नीस नहीं होती है। 'गायकी' को नौटंकी का प्राण तत्त्व माना गया है।

सामान्य रूप से नौटंकियों में *दोहा / भजन / बहरे तबील / आल्हा* आदि छंदों का चलन रहा है। जानकारी के अभाव में सब गुड़ कोबर हो जाता है। उक्त सभी छंद 'ख्याल' युग की देन हैं। *लावनी दौड़* तथा लंगड़ी भावना आदि सभी उसी युग की देन हैं। आगे चल कर 'शायरी' भी जुड़ती हुई दिखती है। इसके अलिखित संगीत में कुछ अन्य छंदों का प्रयोग अपनी परंपरा में दिखता है यथा सोहनी / जोगिया / लावनी वशीकरण / लावनी *रंगमोहनी / खमसा* और *खेमटा* आदि हैं।

कुछ उदाहरण देखें –

'ना लड़का रहा और दरब भी गया
रहा खाली का खाली, गज़ब है गज़ब।

एक किला था ठहा आज वह भी ढहा
मेरी उड़ र्ग लाली, मज़ब है गज़ब'॥

(बहरे तबील)

चल दीजो सरकार संग ले लो बादशाह जादा,
काजी मुल्ला चलो, मौलवी, हो रहा बड़ा तगादा'।
शादी करके कह ली जो तुम, जो कुछ होय इरादा
जनवासे का मुझे नेक दो, नहिं फेर का वादा'॥

(चौबोला)

बहन सिफ्त इस गुंचे दहन की
करूं क्या ताकत जुबान में है।
वो आत्मा बांका निराला छैला,
न इसके हमसफर जहान में है॥

(शिकश्तह छंद/लावनी)

'दुनियावी दामें उल्फत में फंसना नहीं
धन पड़ा हो किसी का परसना नहीं।
खुदगर्ज़ के कभी पास वसना नहीं,
दुःख में रोना नहीं, सुख में हंसना नहीं॥

('खमसा' / उर्दू पिंगल छंद)

'बेशक देरी हो गई, याद गया मैं भूल,
जाता लाता हूं अभी, पूजन के हित फूल'।

(दोहा-छंद)

'बड़ी मुसीबत सहै विचारा
जरा नहीं मन में घबराया।
अपने हाथों काम करै सब,
मित्रों सुनना कान लगाय'।

(आल्हा छंद)

'सुनों जल्लाद तुम, भइया जान के गोय
अब मारो।
कहन कर देव मौली की शीश
घर से करौ न्यारो।
कजा अब आ गई मेरी
डाल फंद गले दीजै।
हुक्म हमराज से दीना
तरस मेरा नहीं कीजै'।

(रेखता, छंद)

कभी-कभी नौटंकियों में प्रश्नोत्तर शैली में भी गायकी की परंपरा रही है। अवधी क्षेत्र में इसे 'कठबैठी' भी कहा जाता है।

'कउने मास में गदहा रोवई?
कउने मास मा कुकुर सियार?
कउने मास मा रडुवा रोवई?
सुन-सुन बिधुवन के झनकार'

(प्रश्न)

चइत मास मा गदहा रोवई
कातिक मास मा कुकुर सियार।
सावन मास का रडुवा रोवइ,
सुन-सुन बिधुवन की झनकार'॥

(उत्तर)

बंद करो शोरोगुल को, लो मजा अब इस कहानी का
शेर की वीरता और बुझदिलों की खितमरानी का
ये रहता आगरे में शाहजहां की फौज का अफसर
साथ में थ भतीजा रामसिंह, चढ़ती जवानी का'।

(कौव्वाली छंद)

हाथरसी नौटंकी

- कहते हैं हाथरस में *स्वांग* का सूत्रपात 'सेढू बासम' के अखाड़े से 'बासदेव बासम' के प्रतिनिधित्व में प्रारंभ हुआ था।
- हाथरस शैली स्वांग के प्रसिद्ध गायकों में गिरिराज प्रसाद का नाम सुर्खियों में रहा है।
- हाथरसी परंपरा में गायन पर विशेष रूप से जोर दिया गया, जबकि कानपुरी नौटंकी में अभिनय की प्रधानता रही।
- हाथरस में संवाद भी पद्यात्मक होता था जैसे 'लीजिए सरकार ये आपका बरखुरदार बड़ा बदकार है / सरकसी से बाज नहीं आता है / बस मरने को तैयार है'।
- हाथरसी मंच भी सादगी पूर्ण होता था, बस दो-चार तखत बिछाया, दरी बिछाई और शुरू. .. वादका के लिए भी मंच के दायें या बायें स्थान होता था।
- हाथरसी में जो बोला या गायकी होती थी उसे *दुबोला* और *शिकस्ता* नाम से जाना जाता था,

इसी विद्याओं को 'कानपुरी' प्रस्तुतियों में *रागिनी* और *ख्याल* के नाम से जाना गया।

- हाथरसी गुरु-शिष्य परंपरा के प्रमुख थे *सहदेव जी*। जिन्हें 'सहदेव अखाड़े' के नाम से जाना गया। अन्य अखाड़ों में प्रमुख थे –
  - 'इन्दरमन का 'तुर्रा अखाड़ा'।
  - 'बासल का अखाड़ा'।
  - 'बटुकनाथ का अखाड़ा'।
  - 'नथाराम गौड़ का अखाड़ा'।
- हाथरसी शैली में कहीं-कहीं दुरूहता भी उभरती रही है। इस शैली में अलाप / तानें / मुकरियां' / खटके' और कभी-कभी सपाट तानों का भी चलन रहा है।
- हाथरस की प्रमुख नौटंकियों के *सत्य हरिकथन अमर सिंह राठोर / भक्त पूरन मल* एवम् 'लैला-मजनू' की मांग बहुत रही है।

हाथरसी स्वांग की विशेषताएं

– प्रेम कथाएं / लोक कथाएं / ईराक व अरब देशों की कथाएं / पौराणिक कथाएं / आतहा खंड की कथाएं / श्रृंगार और वीर रस की कथाएं।

– हिंदी-उर्दू, फारसी, अरबी तथा ब्रज की रास परंपरा के छंदों का भी चलनर रास है।

– हाथ्ज्ञरस की गायकी 'भगत' परंपरा का विकसित रूप है, जो पंजाब से होती हुई मथुरा एवं वृंदावन तक आती है।

– स्वांग आलेखों को विद्या के तौर पर सांगीत सबसे पहले हाथरस में ही कहा गया। बाद में कानपुरी नौटंकी ने भी अपने यहां इस प्रचलन को जारी रखा।

कानपुरी नौटंकी

- कानपुरी नौटंकी की सूत्रपात हाथरसी स्वांग के अगुवा नथाराम शर्मा की प्रस्तुति से माना जाता है।
- ऐसी मान्यता भी रही है कि कानपुरी नौटंकी की पहली ऐतिहासिक प्रस्तुति कानपुर के ही *ख्यालबाज* 'बंदी खलीफा' और 'मैकू उस्ताद' के द्वारा हुई।
- कानपुरी नौटंकी की प्रथम महिला कलाकारों में गुलाब बाई का नाम दर्ज़ है।
- नक्कारे की वास्तविक पहचान, कानपुरी नौटंकी से ही प्रारंभ्ज्ञ होती है।
- सन् 1800 में *तुर्रा ख्याल गायकी* का गढ़ रहा है कानपुर।
- सन् 1910 के आस-पास कानपुरी नौटंकी में राष्ट्रीय और सामाजिक चेतना का रूप उभरता है।
- कानपुरी नौटंकियों की एक खास विशेषता यह भी कही जाती है कि यहां संवाद भी गद्यात्यात्कता को जैसे पकड़ कर खड़ा हो गया था। एक उदाहरण (संदर्भ सुलताना डाकू)

  लाला जी–'मेरे पास दो रुपये मौजूद हैं'।

  सुलताना–'पास में छोड़, बता घर में क्या मरदूद है'?

  लाला जी–'घर में नहीं एक पाई है'।

  सुलताना–'तो तेरी शामत आई है'।
- कानपुरी नौटंकी की निम्न चार मंडलियां प्रमुख रही हैं–
  - नथाराम शर्मा की मंडली।
  - लालमन लंबरदार की मंडली।
  - पहलवान किशन लाल की मंडली।
  - तिरमोहन की मंडली।
- कानपुरी नौटंकी की गायकी 'रंग की गायकी होती थी, कारण था पारसी थियेटर का प्रभाव।
- कहा जा सकता हे कि कानपुर की नौटंकी गायकी जिसका उद्भव हाथरस की स्वांग परंपरा से हुआ है, उसको लगभग अस्सी वर्षों तक ब्रज के गायकों ने सहेजा, संभाला और एक परंपरा का स्वरूप दिया।
- कानपुरी नौटंकी में अभिनय की प्रधानता रही।
- त्रिमोहक जी के 'सांगीत पुकार उर्फ़ जहांगीरी न्याय' का एक ऐतिहासिक महत्त्व रहा है, जो कानपुरी नौटंकी के खाते में दर्ज़ है। इस नौटंकी में इतिहास और लोक संवेदना समानांतर चलते हैं। यह प्रस्तुति इतनी लोप्रिय रही कि

पारसी रंग-मंच ने उसी कथानक को आधार बना कर अपनी प्रस्तुतियां दीं। कुछ उन्हीं संदर्भों में सोहराब मोदी ने भी एक फिल्म बनाई थी।

नौटंकी का आगरा घराना

- भगत का विकसित स्वरूप 1827 के आस-पास माना जा सकता है। आगे चल कर 'भगत' के वास्तविक और गंभीर लोक कलाकारों ने पलायन का रास्ता स्वीकारा और तब इसी परिक्षेत्र में नामकरण होता है 'भड़वा भगत' का।

आगरा भगत (नौटंकी) के प्रमुख अखाड़े

- मोती कटरा का अखाड़ा (गुरू जौहरी लाल)
- ताजगंज का अखाड़ा (गुरू नंदराम लहरी)
- नाई मंडी का अखाड़ा (गुरू खैराती लाल)
- नूरी अखाड़ा (गुरू शेर सिंह)

- यहां गुरू-शिष्य परंपरा की प्रधानता रही है।
- 'उस्ताद' शब्द के बाद में 'गुरू' ने स्थानापन्न कर दिया।
- आगरा के प्रस्तुतियों की एक विशेषता यह रही, कि हर बार एक नई प्रस्तुति करनी पड़ती थी। परिस्थिति विशेष में अगर किसी प्रस्तुति का दुबारा प्रदर्शन होता था तो वह संख्या प्रस्तुति में शामिल नहीं की जाती थी।
- *भगत* ममें चौ बोला छंद की प्रधानता थी।
- आगरा की भगत गायकी स्वांग की प्राचीनतम विद्या 'स्वांग-सपेड़ा' के आगमन के बाद अपने अस्तित्व में आती है।

मथुरा की नौटंकी

- मथुरा, वृंदावन और हाथरस में 'भगत' अथवा स्वांग परंपरा को विकसित करने में *जाहरमल / जाधोराम / बासदेव जी कारुन / चिरंजी लाल* आदि पुरोधा रहे हैं।
- संगीत की जो परंपरा मथुरा वृंदावन में भक्ति प्रभाव से, 'भगत' कहलाई, उसे हाथरस में *स्वांग* और कानपुर में *नौटंकी* के नाम से जाना गया।
- कामवन के रास्ते मथुरा में जो *भगत* का प्रारंभ हुआ, उसका अगुवा देवी घाटिया महाब्राह्मन था। वृंदावन की पहली 'भगत' जाहरमल नामक व्यक्ति ने खेली थी, जो जाति का स्वर्णकार था।

नौटंकी की इलाहाबादी परंपरा

- नौटंकी के संदर्भ में इलाहाबाद (प्रयाग को नकारने का आशय होगा नौटंकी के विकसित स्वरूप के इतिहास को अनदेखी करना।

इलाहाबाद में आज भी इस विद्या के बराबर आलेख, कथानक और विभिन्न गायकियों के छंद रचे जा रहे हैं। बराबर उनकी प्रस्तुतियां भी हो रही हैं। आज के परिवेश में अगर बात करें तो प्रायोगिक नौटंकियों का चलन है, इलाहाबाद, जहां अपनी पारंपरिकता के साथ-साथ, मंचीय प्रस्तुति के करीब, बड़े सहज, स्वाभविक नये-नये प्रयोग किये गये हैं। थियेटर की मनोवृत्ति वाले, इस परिवेश के दर्शकों ने भी नये कथानक की नौटंकियां, कहानियों का नौटंकीकरण, दस्तावेजीकरण भी, इलाहाबादी नौटंकी की विशेषता कही जा सकती हैं।

- लखनऊ में जब ठाकुर प्रसाद की नौटंकी अपने शीर्ष पर थी, उसी अवधि में, इलाहाबाद में गंगापार (फाफामऊ) में एक दोहरे बदन लाला, गोल चेहरा और संवाद 'डेलिवरी' का एक अद्‌भुत व्यक्ति *रामराज त्रिपाठी* के उल्लेख के बिना इलाहाबाद का यह संदर्भ आधिकारिक नहीं ही होगा। इन पंक्तियों के लेखक ने *सुलताना डाकू* के, उनकी अदाकारी, गायकी और आवाज के जादू को, विद्यार्थी जीवन में ही महसूस किया है।
- इलाहाबाद की नौटंकी परंपरा पर भदोही के लोक पुरोआ राजकुमार श्रीवास्तव जी ने सहीमाने में, बहुत गंभीरता से काम किया है।

स्वर्ग रंग मंडल—इलाहाबाद ने अपनी सारी प्रस्तुतियों में जो आधुनिकता के सरोकार रेखांकित

किये हैं, वह दुर्लभ हैं। दस्तावेजीकरण का ऐतिहासिक दायित्व और उसका निर्वहन इसी संस्था को जाता है।

- आकाशवाणी इलाहाबाद की भूमिका भी इन सारे संदर्भों में उल्लेखनीय रही है।
- अगर हक इलाहाबाद के संदर्भ में गंगापार, यमुना पार, और द्वाबा परिक्षेत्र पर निगाह डालते हैं, तो फाफामऊ, नैनी, मुंडेरी, सुलेम, सरायं, नीकां, फूलपुर आदि में नौटंकी की परंपरा उन्नीसवीं सदी के पहले अपने अस्तित्व में, बहुत पुरजोरी के साथ दिखती है।
- 1905 के आस-पास, फाफामऊ में पंडित *रामराज त्रिपाठी*। 1911 के आस-पास *श्रीराम संगीत मंडली,* फूलपुर के *कल्लू रहमानी* की मंडली। इलाहाबाद के बीच चोक (शाहगंज) में *संगीत नौटंकी* स्थापित थी (1925) इसी अवधि में *नीवा* के *राम प्रसाद भइया* जी ने *प्रेम मंडल* की नौटंकी प्रस्तुतियों ने अपने समय को रेखांकित किया है।
- इलाहाबाद की प्रस्तुतियां अपने को व्यावसायिकता से कभी नहीं जोड़ सकी।
- *पंडित राम राज त्रिपाठी* बजाते खुद, लेखक के साथ-साथ, अभिनय और गायकी में भी, अपना एक अंदाज विशेष रखते थे। रूप सजजाकार के रूप में भी उनकी अपनी एक पहचान थी। उन्होंने *मां / दर्द / प्रताप का संताप / सुलताना डाकू* आदि *नौटंकियों* की रचना भी किया, और संबंधित कुसम किरदारी की भूमिका भी साकार किया।
- 1952 में पहली बार आकाशवाणी इलाहाबाद ने रामराज त्रिपाठी के मंडली कारों द्वारा 'सत्य हरिश्चंद्र' की प्रस्तुति किया। महाकवि 'निराला', महादेवी वर्मा और 'बच्चन' जी सरीखे साहित्यकारों ने गायकी की सराहना की थी। आकाशवाणी के संदर्भ में एक महत्त्वपूर्ण नाम 'विनोद रस्तोगी' का भी रहा है, उनके बाद 'विनोद रसतोगी संस्थान' इलाहाबाद की भी यात्रा सक्रिय है।
- यह भी उल्लेख करना ज़रूरी है, कि इलाहाबादी नौटंकी परंपरा और प्रायोगिक आधुनिक शिल्प *स्वर्ग रंग मंडल* के श्री अतुल यदुवंशी की भूमिका नौटंकी के सभी संदर्भों में परंपरा के साथ-साथ नई तकनीकियों की हिमायती रही है। नौटंकी 'बंटवारे की आग' की धमक और नगाड़े की टनटनाहट लाहौर तक पहुंचती है।

इलाहाबाद के ही लोक कलाकार और कवि श्री राम लोचन विश्वकर्मा 'सांवरिया' ने इलाहाबादी परंपरा में, अपने ही छंद से स्वीकारते हैं–

'नव पर नव स्वर जोड़ती, करती नव संवाद,
होत हाथरस, कानपुर, आई इलाहाबाद'।
(दोहा)

'आई इलाहाबाद, लाक मानस में रही समाई हुई लोकप्रिय, लोक विद्या को, जन-जन तक पहुंचाई लोक मंच से जुड़ी, नाम का नक्कारा बजवाई रास रचाई, स्वांग करी तो, नौटंकी कहलाई'॥
(चौ बोला)

- इलाहाबादी अखड़े या घराने को 'जैहिंद' अखाड़े के नाम से जाना जाता है। 'जै हिंद' नाम से ही राष्ट्रवादी स्वर उभरता है। संस्थापक थे लाला कल्याण चंद्र जी, जिन्हें 'स्वांग सम्राट' भी कहा जाता था। यानी कि 1882 से इलाहाबादी नौटंकी का मूल स्वर राष्ट्रवादी ही रहा है।

आधुनिकता के संदर्भ में...

आधुनिक नौटंकियों के लिए निम्न बातों पर ध्यान दे कर, उसकी लोकप्रियता और परंपरा को, एक दिशा निश्चाप ही दी जा सकती हैं –

- सार्थक प्रयोग किये जायें।
- नौटंकी की अवधि मात्र तीन घंटे तक ही निर्धारित हो सारी-सारी रात का अब कोई ओचित्य नहीं रहा।
- थियेटर की तरह पूर्वाभ्यास भी हो।
- कूल्हे मटकाने सरीखे नृत्य बिल्कुल भी नहीं हो।

- नृत्य की संख्या भी कम हो।
- अश्लीलता से परहेज किया जाये।
- दो अर्थी संवादों से निजात पाया जाये।
- इन लोक कलाकारों के लिए योजनायें बनें।
- प्रादेशिक और केंद्र सरकार गंभीरता से इन लोक कलाकारों पर ध्यान दें।
- चूंकि '*लोक*' पहले है, '*शास्त्र*' बाद के इसलिए दोनों कलाकारों के मानदेय में समानता हो।
- नौटंकी समितियों का भी अपना एक केंद्रीय मंच हो।
- दस्तावेजीकरण की गंभीरता के लागू किया जाए।
- परिधान की व्यावहारिकता पर भी सोचा जाये।
- 'रूप सज्जा' और 'मंचदीपन' में भी सुधार हो।
- गायकी की बारीकियों पर भी गंभीरता से काम हो।
- कोरस के महत्त्व को महज़ खानापूरी ही न समझा जाये।
- नौटंकियों को फिल्मीकरण से बचाया जाये।
- 'आरकेस्टा' की कमर की लचक को दूर से ही प्रणाम किया जाये।
- सूत्रधार या जोकर की भी सीमायें निर्धारित की जायें।
- प्रशिक्षण के महत्त्व को बहुत ही गंभीरता से लिया जाये।
- नौटंकी संबंधित साहित्य भी प्रकाशित किए जायें।
- विभिन्न वादकों का भी प्रशिक्षण हो।
- नौटंकियों पर कार्यशालाएं, सेमिनारों और विचार गोष्ठियों का भी आयोजन हो।
- नौटंकी को रोजगारपरक बनाने के संबंध में सरकारें सोचें।
- संगीत विद्यालयों या अन्य संस्थाओं में लोकवादों को भी कोर्स में शामिल किया जाये।
- मुंडन, छेदन पर नौटंकी से बाज आया जाये।
- नृत्य करने वालियों को भी प्रशिक्षित किया जाये। 'शुक्रिया अदा करती हूं और उसकी थिरकन को समाप्त किया जाये।

नौटंकी ह्रास के कारण

- कलाकारों को रोजगार जैसी सुविधा नहीं है।
- मीडिया के कारण उनके उत्साह में कमी।
- नई पीढ़ी ने एक-दो प्रस्तुतियों में हिस्सा क्या लिया, उन्हें बालीवुड ही नज़र आता है।
- प्रारंभ में आलेखों एवं गायकी के फारसी, उर्दू की प्रधानता रही, लेकिन आधुनिक संदर्भों के व्यावहारिक बोली भाषा का अभाव।
- नौटंकी को सामान्य लोग हेय दृष्टि से आज भी देखते हैं।
- वेश्या उन्मूलन के बाद, उनके सामने जगजीवन गायन की समस्या आई, तो कइयों ने नौटंकी में जाना उचित समझा जाहिर है, माहौल तो गड़बड़ होना ही था।
- नौटंकी का प्राण तत्त्व उसकी गायिकी है, जिसमें शिष्य बन कर सीखने, और लंबे अभ्यास की आवश्यकता होती है, नई पीढ़ी में जिसका अभाव है।
- मनोरंजन के लिए आज अन्य कई साधन, सहज ही उपलब्ध हैं।
- वास्तविक रूप से प्रशिक्षण केंद्रों का अभाव है। कुछ अनुदान जीवी संस्थान, या एन. जी. ओज. महज़ बोर्ड टांग कर अपनी उपलब्धियों को कागजों का ही पेटा भर रही हैं।
- रंगकर्मियों द्वारा भी इस विद्या की उपेक्षा की गई है।
- प्रयुक्त वाद्य यंत्रों के उस्तादों की भी कमी है। अपने हुनर को, अपने जीते जी किसी शिष्य आदि को सिखाना भी नहीं चाहते। उनका हुनर उन्हीं के साथ दफ़न हो जाता है।

अंत में अपने कवि मित्र 'सांवरिया' की निम्न पंक्तियों से इस नौटंकी प्रकरण को विराम देता हूं–

'एक निवेदन कर रहा। सुनें जरा श्रीमान!
मरती नौटंकी विद्या, इस पर दीजै ध्यान।
इस पर दीजै ध्यान। बचे कैसे नौटंकी?
मर्ज पुराना हो गया, काम करेगी क्या अब फंकी?'

संस्कार गीत

डॉ. देवदत्त शर्मा

कलाविद्, जयपुर

लोकगीत लोकमानस की सरलतम लयात्मक अभिव्यक्ति हैं। दूसरे शब्दों में लोक साहित्य का वह लयात्मक रूप जिसने वाणी द्वारा लोक जीवन को स्वतः स्फूर्त तीव्रतम भावनाओं, अनुभूतियों तथा संवेदनाओं को रसात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की है, जो लोक संस्कृति से ओतप्रोत है और जिसमें मूल रचनाकार की वैयक्तिकता के स्थान पर लोक की छाप लग गई है, लोकगीत कहलाने का अधिकारी है। वस्तुतः लोकगीतों में न केवल संपूर्ण समाज का हास-विलास एवं उल्लास-उच्छवास निहित रहता है अपितु इनके माध्यम से समाज के रिश्ते-नाते, रीति-रिवाज, सामाजिक परंपराओं, प्रेम-विरह तथा लोक जीवन एवं संस्कृति की अप्रतिम झांकी भी परिलक्षित होती है।

व्यक्ति चाहे किसी भी स्थिति में हो, वह कुछ-न-कुछ गुनगुनाता रहता है। अतः यदि हम लोकगीतों को प्रत्येक क्षण का भावभरा संगीतात्मक आलेखन कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। लोकगीत जीवन के साथ इतने घुले-मिले रहते हैं कि वे जीवन का एक अपरिहार्य सांस्कृतिक अंग बन गये हैं। यों तो विषयवस्तु के आधार पर लोकगीतों को कई श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है किंतु उनमें संस्कार गीत सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं। जन्म से लेकर मृत्युपर्यंत सभी संस्कारों का मानवीय जीवन में अत्यंत महत्त्व है। यहां इनहीं संस्कार गीतों की एक झलक प्रस्तुत है।

जब बच्चा गर्भ में होता है तो माता की दोहद इच्छा जाग्रत होती है। कभी उसकी इच्छा होती है कि वह खट्टी-मीठी वस्तु खाये तो कभी उसका मन तीखी-चरपरी वस्तु खाने का होता है। इसे ओजणा कहते हैं। इस अवसर पर गाये जाने वाले गीतों को ओजणा या होलर गीत भी कहते हैं। इन गीतों के माध्यम से गर्भवती स्त्री की उक्त इच्छा को अभिव्यक्ति मिलती है। पहलो मास जच्चा धण लै लाग्यौ/दूजो मास जच्चा धण ने लागो/घी अर खांड मन डोले/पिय रतनालो, भंवर रतनालो जामण लायदो। इसी तरह तीसरे और चौथे महीने में दूध-दही, पांचवें तथा छठे माह में सूखे मेवे और सातवें-आठवें मांस में लड्डू खाने की इच्छा को व्यक्त किया गया है।

बच्चा धीरे-धीरे गर्भ में बढ़ने लगता है। नौ मासपूर्ण होने पर प्रसववेदना शुरू होती है। स्त्री लज्जावश अपने पति से कुछ कह नहीं पाती और सांकेतिक भाषा में बाहर जाने को कहती है–

छोटी सी नार नारेली सो पेट,
वाली सैं पीड़ हला भोली जी राज
छन इक ढोला बागा मैं जाए,
बागा में गुडला टीलावां जी राज ...

इतने में बच्चे का इस संसार में प्रवेश हो जाता है। इस अवसर पर ईश्वर को तो याद किया ही जाता है, बच्चे को भी सद्मार्ग पर चलने की सलाह दी जाती है–

सुमर साहिब को नाम जण तोय जनम दियो
प्रभु मेरी बंदि छुटाये मैं तो तेरो भजन कर्यों
आयो छै मुठड़ी बांध भुजा ए पसार लई
सकड़ी सी घाटी मायं तू ही तू ही करे...

पुत्र जन्म पर घर भर में हंसी-खुशी और उल्लास का वातावरण छा जाता है। इस अवसर पर जामण, स्यावड़, छठी, पीलो तथा जच्चा आदि गीत गाये जाते हैं। पुत्र जन्म के बाद कुआं पूजन की रस्म पूरी की जाती है। इस अवसर पर जच्चा के सिर पर पानी का लोटा तथा हल्दी मंडित पोतड़ा रखा जाता है। पीला ओढ़कर जच्चा कुआं पूजने जाती है। तो पीला गाया जाता है–

दिल्ली शहर से सायबा पीलो मंगाद्यो जी
हाथ पच्चीसी गज बीसी
पीलो तो ओढ़ म्हारी जच्चा सरवर चाली जी..

बच्चा शैशवावस्था को पार कर युवा हो जाता है। विवाह योगय हो जाता है। वैवाहिक संस्कारों में सगाई पहला संस्कार है। इसे टीका भी कहते हैं। इस दिन वर पक्ष के घर गणमान्य व्यक्तियों की उपस्थिति में लड़के को पट्टे पर बैठा कर उसके तिलक किया जाता है और कन्यापक्ष की तरफ से वर की झोली में नारियल डाल दिया जाता है। इस अवसर पर एकत्रित महिलाओं का स्वर गूंज उठता है–

कैठ्या सै आयो छै नारेल,
कैठ्या सै आया जी म्हारा...

सगाई के बाद लगन आता है। लगन में विवाह की तिथि आदि की सूचना होती है। इसमें हलदातबान का विवरण भी होता है। यह पांच सात, नौ, ग्यारह आदि दिन का होता है। इस दिन लड़के को तेल चढ़ाया जाता है। उबटणा लगाया जाता है। औरतें उबटणा गाती हैं–

काय कटोरी में उबटणो,
काय कटोरी में तेल
रामजादो बैठ्यो उबटणे,
हरियालो बैठ्यो उबटणे
सोन कटोरी में उबटणो,
रूप कटोरी में तेल, रामजादो बैठयो
उबटणे... ।

बारात जाने से पूर्व मेल मंडप किया जाता है। सायंकाल स्त्रियां चाक पूजने कुम्हार के घर जाती हैं। इस अवसर पर बनड़ा गाया जाता है–

नारनौल की मेहंदी ल्याओ जी मेहंदी से म्हारा हाथ रचाओ जी

दिल्ली शहर की पातुर ल्याओ जी समधी री पोल नचाओ जी ...

चाक पूजने के बाद भातई भात लेकर आते हैं। भातई कुछ धनराशि थाली में डालते हैं, वर या कन्या के वस्त्र लाते हैं और बहिन को चूंदड़ी ओढ़ाते हैं। इस अवसर पर भाई-बहिन का मिलन भी देखने योग्य होता है। इन मर्मस्पर्शी क्षणों में भात लाने की प्रतीक्षा में बहिन के प्रतीक्षा क्षणों को व्यक्त करती पंक्तियां दृष्टव्य हैं–

ऊंचा तो घर की पोल माई जाया,
नीचा रै घर को बारणु
घमसाल ऊबी जोऊं बाट,
ओजूं ऐ ना आया मेरा भातई ...

इसके पश्चात वर बनवारे बैठ जाता है। इसमें सगे-संबंधियों द्वारा वर को अच्छा भोजन कराया जाता है। रात्रि को उसे चौराहे या परस पूजन के लिए ले जाया जाता है। औरतें गीत गाती हैं–

मैं तोय बूझूं मेरा सुगड़ बना तेरो बनवारो रे किन नै नौत्यो
भाई मेरो राजा भावज राणी हो, मेरो बनवारो उननै नौत्यो

वैवाहिक संस्कारों में यज्ञोपवीत संस्कार भी महत्त्वपूर्ण हैं। इस दिन वर को ब्रह्मचारी बना कर मूंज की जनेऊ धारण कराई जाती है। हवन होता है, वर को कान में गुरु मंत्र फूंका जाता है और इधर औरतें गा उठती हैं–

जनेऊ मूंज की बना थारो जोशी जी पहरावे बना...

जनेऊ के बाद दूल्हे को भातई द्वारा लाये गये वस्त्र पहनाये जाते हैं तथा सिर पर सेवरा बांधा जाता है। इस अवसर पर सेहरा (मोड़, सेवरा) गाया जाता है–एक छोटी सी मालण बाग लगायो, गुंथ लाई मालण सेवरो, बांधेगो बाबा जी रो लाडलो...

इसके पश्चात् घुड़चढ़ी या निकासी की रस्म पूरी की जाती है। एक सजी हुई घोड़ी पर दूल्हा बैठ जाता है और इसी घोड़ी पर विनायक के रूप में छोटा बच्चा (भाई, भतीजा) बैठ जाता है। पीछे-पीदे बहिन आरता की थाली लेकर और औरतें गीत गाती चलती हैं–

अनोखा लाड़ला हो राईवर,
मजलां मजलां चाल
धूप पड़े धरती तपै हो राईवर,
तपै लखीणी बरात...

निकासी के बाद बारात कन्या पक्ष के घर चली जाती है और पीछे से वर पक्ष के यहां रात्रि जागरण होता है जिसमें स्त्रियों स्वांग आदि निकाल कर भरपूर मनोरंजन करती हैं। इसे रतजगा, रतगा, खोड़िया तथा टूंटिया आदि नामों से जाना जाता है। इसमें रतजगा के गीत गाये जाते हैं। बारात जनवासे (बारात ठहरने का स्थान) पहुंचने पर 'गोरवा' लिया जाता है। इसके पश्चात् दूल्हा-दुल्हन फेरों (पाणिग्रहण संस्कार) पर बैठ जाते हैं। फेरों की रस्म पूरी होती है तथा औरतें गा उठती हैं–

पहलै फेरे दादा की पोतियां,
दूजै फेरे ताऊ की धीयड़ियां
तीजै फेरे जलहर की धीयड़ियां
चौथे फेरे बीरा री बाहणलियां
पांचवें फेरे मामा की भाणजियां
छठे फेरे फूफा की धीयड़ियां
सातवें फेरे हुई ये पराइयां...

फेरों के बाद कंवर कलेवा होता है। इसमें वर के साथ उसके मित्रादि कलेवा (नाश्ता) करने जाते हैं। इस अवसर पर सीठणे गाये जाते हैं। इसमें वर को खूब गालियां दी जाती हैं–

मांज्या धोया थाल परोस दिया भात जी
आओ आओ राजूजी बैठो म्हारे पास जी
बैठो म्हारे पास बताओ थारी जात जी
बाप म्हारे मालजादो माय छिंदाल जी...

ये सीठणे बढार के समय भी गाये जाते हैं। इसके बाद पहरावणी की रस्म होती है जिसमें वर पक्ष की ओर से कन्या के लिए वस्त्राभूषण रिये जाते हैं। इसी समय कन्या की गोद भराई की रस्म भी होती है तथा गीत गाये जात हैं। इसके उपरांत विदाई का हृदय विदारक क्षण आता है और गीत की इन पंक्तियों–कोयल बाई सिंध चाली... अथवा साथण चाल पड़ी मेरा डब-डब भर आया नैण-को गाते समय गाने वाली स्त्रियों के नेत्र तो अरुपूरित हो ही जाते हैं उपस्थित अन्य लोगों की आंखों में भी पानी भर आता है।

वधू, वर के घर पहुंचती है। उसकी अगवानी करती औरतें गाती हैं–गोर गड़ी ए गोर गड़ी, सासू छोटी बहू बड़ी...। इतने में घर द्वारा आ जाता है। वर की बहिन द्वार रोक कर खड़ी हो जाती है। इसे बार गुटाई कहते हैं। इसी दौरान बहिन वर-वधू को नापती भी है। गृह प्रवेश के दूसरे दिन सेढ़-मैया पूजा जाता है और उसके बाद हरे वृक्ष की टहनी से वर-वधू एक-दूसरे पर हलका प्रहार कर साटकी खेलते हैं। इस अवसर पर मुख्यतः देवी-देवताओं के गीत गाये जाते हैं। सेढ़ मैया पूजने के बाद वर-वधू को जुआ खिलाया जाता है, एक दूसरे की मुट्ठी खोलते हैं तथा कांकण डोरे खोलते हैं। इस अवसर पर भी गीत गाये जाते हैं।

इस प्रकार संस्कार गीतों के माध्यम से न केवल हमें समाज के रीति-रिवाजों का परिचय मिलता है अपितु लोक-संस्कृति की झलक भी परिलक्षित होती है।

भारतीय संगीत में लोक संगीत का आकर्षण

डॉ. प्रेमकिशोर मिश्र

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, वाद्य विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

लोक गीत सामान्य जन के स्वाभाविक मन चेतना के भावगत उद्गारों के लयबद्ध प्रकाश पुँज है इस पुँज में उसके परिवेश एवं दैनिक जीवन की वे बहुविध प्रक्रियाएँ एवं गतिविधियाँ वर्णित रहती है जो उसकी सभ्यता एवं संस्कृति की सहजता एवं स्वाभाविकता का बोध कराती है। अर्थात् लोकगीतों में लोकजीवन के दार्शनिक आध्यात्मिक एवं लोक व्यवहार सम्बन्धी विचार धराओं तथा व्यापारों की पर्याप्त झलक मिलती है। लोकगीतों की आत्मा लोक संगीत है।

महादेवी वर्मा जी के शब्दों में सुख-दुःख की भावनामयी अवस्था का विशेषकर गिने चुने शब्दों में स्वर साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही लोकगीत है।

लोकगीतों का लक्षण वैदिककालीन साहित्य में स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। वेदों के अन्तर्गत विभिन्न संस्कार और उत्सवों के अवसर पर गाथाओं के गाने का वर्णन मिलता है। ऋग्वेद में अनेक मंत्रों में गीत के रूप में शब्द का प्रयोग किया गया। गाने वालों के लिए गायक शब्द का प्रयोग किया गया। ऐतरेय ब्राह्मण में किसी राजा के सत्कर्मों की अभिव्यक्ति मंत्रों के रूप में न होकर लोकगीतों में होती थी। यह लोकगीत जनता के द्वारा दिये जाते थे और उन्हें गाथा के नाम से जाना जाता है। वाल्मीकि रामायण में राम जन्म के समय और श्रीमद्भागवत के स्कन्ध में श्रीकृष्ण जन्म के समय स्त्रियों के द्वारा एकत्र होकर लोकगीत गाने का वर्णन है।

लोकगीतों को महात्मा गाँधी ने हमारी प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति के सच्चे पहरेदार कहा था। इन गीतों में हमारे प्राचीन भारत का वैभव, स्मृति की माला में गूँथ-गूँथकर पिरोकर रखा हुआ है। धरती के अनजान भावुक हृदयों ने जो रेखाये अपने भोले मन से केवल मिट्टी में खींच दी थी।

लोक संगीत का उद्भव कब और कैसे हुआ इसकी प्राचीनता के सम्बन्ध में अनुमान लगाना कठिन है लोक संगीत का इतिहास उतना ही पुराना है जितना कि मानव सृष्टि का। प्रकृति ही लोक संगीत की जननी है। आज लोक संगीत का जो विकसित स्वरूप हमारे सामने है उसमें मानव की समस्त अनुभूतियों का संचय है। लोक संगीत का अपना कोई लिखित शास्त्र नहीं है। वास्तव में लोक रूचि ही लोक संगीत की जननी है। क्योंकि लोक रूचि व्यवहार तथा लोक अनुभव द्वारा ही इसका स्वरूप प्रकट होता है। लोक संगीत वह संगीत है जो मौखिक परम्परा में निहित रहता है। लोक संगीत ही वह प्राणतत्व है। जिसके आधार पर लोकगीत का प्रभाव दिखाई पड़ता है।

लोकसंगीत के दो पक्ष है-

(1) लोक गीतों की गायन पद्धति।

(2) लोक वाद्यों का सहकार

लोक संगीत का छन्द यद्यपि संक्षिप्त होता है। परन्तु भाव के अनुकूल होने से वह मन मस्तिष्क पर पूरा प्रभाव डालता है। भावों की समानता के कारण लोक संगीत कभी पुराना नहीं पड़ता है। वह सदाबहार है। भावपक्ष के कारण ही लोक संगीत अन्य सभी शैलियों में अग्रणी है। माँ की ममता दीन की करूणा, ईर्ष्या, राग-द्वेष, उल्लास, कामना, क्रोध, अहम्, मद, लोभ, मोह, निराशा अभी का दिग्दर्शन लोक संगीत में सहजता से होता है। अपने इस भाव पक्ष की प्रधानता के कारण लोक संगीत पूरे संसार में लोकप्रिय है।

लोक संगीत के स्वरूप में जो बदलाव दिखाई पड़ता है। वह कुछ हद तक वर्षों से चले आ रहे सामाजिक वातावरण में आए परिवर्तन का परिणाम है। सैकड़ों वर्षों पूर्व सामाजिक पर्वों व अनुष्ठानों में समस्त ग्राम या नगरवासी मिलकर भाग लेते थे उसमें उनकी सहभागिता होती थी। सामान्ती युग के प्रभाव से ऊँच-नीच का भाव इतना व्यापक हो गया कि तीज-त्यौहार भी क्षेत्रों व वर्गों में वट गये। नृत्य संगीत पर भी इस बदलाव का असर पड़ा फलस्वरूप धीरे-धीरे लोक रूप भी भिन्न-भिन्न प्रदेशों व जातियों में बट गये परिवर्तन प्रकृति का नियम है। फिर हमारे लोक संगीत की परम्परा को अपने मूर्त रूप में सहज कर जीवित रखने का प्रयास आवश्यक है।

सृष्टि की गति निरन्तर और अविछिन्न होते हुए भी काल की सीमाओं में बँधने वाले संगीत में उतार-चढ़ाव आ हो जाता है। फिर भी हमारी संस्कृति कभी हार नहीं मानती और फिर उठकर संगीत के चरम लक्ष्य नाद ब्रह्म की साधना में लीन होती है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. मित्तल, डॉ. अंजलि, भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति में संगीत, कनिष्क पब्लिशर्स, नयी दिल्ली संस्करण-2003
2. मिश्रा, डॉ. जया, वर्तमान सामाजिक परिवर्तन में संगीत की नई भूमिका, अनुभव पब्लिकेशन हाऊस, इलाहाबाद, संस्करण-2012
3. डॉ. ऋपितोष, भारतीय संगीत के विविध आयाम, अनुभव पब्लिकेशन हाऊस, इलाहाबाद
4. सचदेव, रेणु, धार्मिक परम्पराएं एवं हिन्दुस्तानी संगीत, अनुभव पब्लिकेशन हाऊस, इलाहाबाद

उत्तर प्रदेश की लुप्तप्राय लोक गायन शैली

पल्लवी मिश्रा

शोधार्थी, संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

उत्तर प्रदेश समूचे भारत का सबसे बड़ा प्रदेश है और गंगा-यमुना इसकी हृदयभूमि है। यहाँ पर भारत की सबसे ज्यादा जनसंख्या रहती है। यहाँ पर हिन्दू, मुस्लिम, सिख एवं इसाई हर धर्म की अपनी एक अलग संस्कृति एवं पहचान है। लोक संस्कृति की दृष्टि से उत्तर प्रदेश अत्यंत समृद्धशाली प्रदेश है, यहाँ की लोककलाएँ, यथा-लोकगीत, लोकनृत्य, लोकनाट्य, लोकचित्रकला अपनी पृथक विशिष्टता लिए हुए आज भी जीवन्त है।

समाज का प्रतिबिम्ब लोकसंगीत सामाजिक संबंधों का संगीतमय इतिहास है, लोक संगीत में सम्पूर्ण समाज के आदर्श, विचार, रीति-रिवाज, धर्म और मनोभावों को व्यक्त करने की क्षमता होती है। यह सरल, सर्वगम्य व सर्व-सुलभ होने के साथ ही संस्कति के विविध सौन्दर्य का सच्चा प्रतीक होता है। इसका कोई लिखित शास्त्र न होने पर भी इसकी कुछ परम्पराएँ हैं। इसमें शास्त्रीय बंधनन होने पर भी सौन्दर्य हेतु खटके, कण, मुर्की तानों आदि का प्रयोग किया जाता है।

लोकगीतों की भाषाः

अवधी, ब्रजभाषा, बुन्देलखण्डी तथा भोजपुरी का पूर्वी रूप उत्तर प्रदेश की एक विशिष्ट अन्दाज में बोली जाने वाली प्रिय भाषा है, जिनका अपना निजी साहित्य बहुत व्यापक है। अनेक मूर्धन्य कवियों, लेखकों एवं साधु-संतों ने अपनी लेखनी के लिए इन भाषाओं का सदुपयोग किया है। संत कबीरदास, सूरदास एवं गोस्वामी तुलसीदास से लेकर अनेक रचनाकारों पर अवधी और ब्रज भाषा का असीम प्रभाव रहा है।

लोकगीतों पर एक दृष्टि डालने से पता चलता है कि लगभग हर क्षेत्र के लोकगीतों के प्रकार एक जैसे हैं। केवल शब्दों में और धुनों में थोड़ा अन्तर पाया जाता है। ये क्षेत्रीय भाषाओं के वजह से होता है। उत्तर प्रदेश में प्रचलित लोकगीत इस प्रकार हैः-

1- संस्कार गीतः 1- सोहर, 2- खेलवाना, 3- अन्नप्राशन, 4- मुण्डन, 5- जनेऊ, 6- कर्णभेदन गीत, 7- विवाह, 8- गवना, 9- दादरिया, भजन तथा मृत्यु गीत, 10- गोदना गोदवाई गीत।

2- ऋतु गीतः यह छः प्रकार के होता है- 1- कजरी, 2- बारहमासा, 3- होली, 4- चहका, 5- चौताल, 6- चैती आदि।

3- धार्मिक गीतः 1- शीतला माता, 2- नाग पंचमी, 3- बहुरा, 4- गोधन, 5- पिड़िया 6- छठी माता, 7- नवदुर्गा, 8- गंगा गीत आदि।

4- जाति गीतः 1- अहीरो, 2- कहारो, 3- चमारो, 4- तेलियों, 5- गड़रियों, 6- धोबियों, 7- दुसाधों की गीत आदि।

5- क्रिया गीतः 1- जँतसार, 2- रोपनी, 3- सोहनी इत्यादि।

लुप्तप्राय लोक गायन शैली:

बिरहा:

बिरहा पूर्वी उत्तर प्रदेश का सर्वाधिक प्रचलित लोकगीत है। ग्रामीण क्षेत्रों में मनोरंजन का सबसे सस्ता और सरल साधन के रूप में बिरहा प्रचलित है। शहर में मिट्टी महुए का पत्ता, फल सब्जी आदि बेंचकर जब ग्रामीणजन वापस घर को लौटते हैं तो रास्ते की थकान मिटाने के लिए बिरहा गाते हैं, किन्तु आजकल बिरहा लोक गायन शैली विलुप्त हो रही है।

बारहमासा:

बारहमासा एक लोक गायन शैली है जो कुछ समय पहले बहुत प्रचलित थी किन्तु आजकल प्रचलन में कम है या यूँ कह सकते हैं कि विलुप्त हो रही है। बारहमासा में बारह महीनों का वर्णन मिलता है।

आल्हा:

इसे जाति गीत भी कह सकते हैं। आल्हा एक प्रकार की वीर गाथा है, जो कि आल्हा-ऊदल दो वीर थे उन्हीं के वीरता के ऊपर यह धुन बना है। इसे ढोलक के साथ बजा-बजाकर गाया जाता है। आल्हा गीत को तीन से चार लोग मिलकर गाते हैं। ये गीत शैली भी अब सुनने को कम मिलता है।

मेला गीत:

मेला गीत स्त्रियाँ मेला देखने जाते वक्त गाती थीं सभी लोग एक साथ मेला देखने जाते थे। उस समय मेला गीत एकता का पर्याय था किन्तु आज ये पूर्णतया विलुप्त माना जा रहा है।

धोबिअउवा गीत:

इसे जाति गीत भी कह सकते हैं। इस लोकगीत शैली में नृत्य भी होता है। पैर में घुंघरू बांधते हैं तथा गाने के साथ मृदंग वाद्य का प्रयोग होता था। ये गीत शैली भी विलुप्त हो रही है, बहुत से लोग इसका नाम तक नहीं जानते।

लवनी:

औरतें खेत में धान की रोपाई करते हुए गाती हैं। लवनी गीत क्षेत्रपाल (देवता) को खुश करने के लिए और खेत में अधिक उपज बढ़ाने के लिए गाया जाता था, किन्तु आजकल लवनी गीत भी सुनने को नही मिलता है।

अहिरउआ:

इसे जाति गीत भी कह सकते हैं। इस शैली में भी गाने के साथ-साथ नृत्य होता है। इसके साथ ढोलक, हारमोनियम तथा मंजीरा बजता है। यह एक लुप्तप्राय गायन शैली है।

सन्दर्भ:

1- कुमार, डॉ. अविनाश, लोकगीतों का सम्पादन एवं मूल्यांकन।

2- सिंह, संजय कुमार, भोजपुरी लोक संस्कृति एवं हिन्दुस्तानी संगीत।

3- राय, जय प्रकाश, भोजपुरी लोग साहित्य एवं मूल्यांकन।

लोकसंगीतः एक जीवन्तपरम्परा

गीता गुप्ता

शोधार्थी, संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

आदिकाल से ही मानव जीवन में संगीत का बड़ा महत्व रहा है। ब्रह्मानारद और सरस्वती से निकला यह सुर और लय मानव जीवन ही नहीं वरन् सृष्टि के समस्त जीवों में आत्मा की तरह विद्यमान है। कहा जाता है कि लोक संगीत एक जीवन्त परम्परा के रूप में वैदिक युग से एक लंबी यात्रा करते हुए आज तक एक शुद्ध पवित्र सरिता की भाँति बहती चली आ रही है। हर एक किलो मीटर पर प्रकृति की जलवायु परिवर्तित हो जाती है और इसी परिवर्तन पर आधारित मनुष्य का रहन-सहन, खान-पान, आचार-विचार और बोल-चाल तक बदल जाता है। यही बदलाव भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है और यह कला निरन्तर जीवित रहनेवाली एक कला है।

वेद, उपनिषद्, गीता, महाभारत एवं रामायण जैसे अति प्राचीन ग्रंथों में भी 'लोक' शब्द का बहुलता से प्रयोग मिलता है। संसार के सभी जगहों पर रहनेवाले मनुष्य अपनी-अपनी परम्परा का पालन करते हैं। सदियों पुराने रीति-रिवाजों, पारिवारिकपर्वो, एवं पारिवारिक बंधनों का पालन करते हुए सर्व शक्तिमा नई श्वर पर अटूट विश्वास रखते है। अतः लोक संगीत की परम्परा सृष्टि के समान अनादि और अनन्त है। लोक संगीत का रूप बहुत ही स्वाभाविक सीधा-सादा है। लोक संगीत के गीतजन साधारण के जीवन से संबंध रखते है।

लोक संगीत के अन्तर्गत लोकगीत, लोक नृत्य, लोक नाट्य सभी आ जाते है। भाषा के माध्यम से हम जिन भावों को नहीं व्यक्त कर सकते, उन्हें गीत-संगीत, स्वर-लहरियों के माध्यम से आसानी से व्यक्त किया जा सकता है। लोकगीतों की दुनिया सबसे निराली होती है। यह एक मौखिक परम्परा है इसे पढ़ने की अपेक्षा सुनने से ज्यादा सीखा जा सकता है। लोकगीतों में जहाँ एक ओर सामाजिक मर्यादा झलकती है, वहाँ दूसरी ओर गीतो के माध्यम से व्यक्तिगत अनुभव, उत्साह, प्रकृति के प्रतिगहन आकर्षण, प्रणयानुभूति की तीव्रता के साथ कल्पना की ऊँची उड़ान की विशेष अभिव्यक्ति होती है।

लोकसंगीत मानव-जीवन की अभिव्यक्ति है, मानव जीवन का दुःख-दर्द, हर्ष, विषाद, संघर्षमय जीवन इन भावों की अभिव्यक्ति इन लोकगीतों में सहज ही पा सकते है। लोकसंगीत सहज होने के कारण शीघ्रता से हर उम्र के इन्सान को आकर्षित करता है, उल्लास, हर्ष, खुशी आदि के समय चंचल प्रकृति के गीत गाये जाते है। शोक, करूणा, विरह, विषाद आदि में गम्भीर तथा कम लय में गीत गाए जाते है, गीतों के भाव तथा भाषा, परिस्थिति के अनुसार बदलती रहती है। लोकसंगीत के गीतों में समाज का बड़ा ही सुन्दर तथा सजीव चित्रण पाया जाता है, माता-पुत्री, पिता-पुत्र, भाई-बहन और पति-पत्नी के पारस्परिक प्रेम का जो दिव्य वर्णन इन गीतों में मिलता है वह कहीं और उपलब्ध नहीं होता।

जन्म से मृत्यु तक के गीत इतनी स्वच्छन्दतापूर्वक प्रकट होते है कि मनुष्य अपने समाज और अपनी

मिट्टी से अनायास ही जुड़ जाता है। संस्कार संबंधी गीतों में जन्म, विवाह तथा दाहसंस्कार गीतों का उल्लेख मिलता है क्योंकि वर्तमान समय चाहे हर्ष, उल्लास अथवा करूणा से भरे हुए हो, संगीत के बिना वे अपूर्ण होते है। संगीत का महत्व हमारे जीवन में तब और अधिक बढ़ जाता है, जब यह मनुष्य में नैतिकता, अनुशासन, प्रेम, दया, सौहार्द की भावना पैदा करता है।

प्लेटों के अनुसार, 'संगीत से व्यक्ति में धर्म की प्रवृत्ति आ जाती है, वह व्यक्ति कभी भी अन्याय नहीं कर सकता जो कि संगीत की मधुर स्वर लहरियों में बँधा होता है।

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद जी ने कहा है कि मुझे ऐसा लगता है कि विधाता ने हमलोगों में संगीत के संयोग का ऐसा विधान कर दिया है कि उसके बिना न तो हम जीवित रह सकते है और न ही कोई काम कर सके हैं। संगीत समीर के शीतल झोंके, हृदय की कलुषता, विकृतवासनाओं की संकीर्णता तथा तामसी एवं आसुरी भावनाओं का समूह उच्छेदनकर आत्मा को निश्चल और पवित्र वना देती है। समाजिक व धार्मिक त्यौहारों को ज्यादा सुखद तथा मंगलकारी वनाने का कार्य भी संगीत करता है। मानव जीवन का हर क्षण संगीतमय है। अतः लोकसंगीत का मुख्य लक्ष्य मानव जीवन को सुन्दर वनाना है।

अन्त में आज लोकसंगीत किसी परिसीमन के अधीन नहीं है। जनमानस के लहू में इस तरह रच बस गये कि विज्ञान ने लोकसंगीत के प्रचार-प्रसार में भरपूर सहयोग दिया है। परन्तु कभी-कभी पाश्चात्य संस्कृति भारतीय संस्कृति पर हावी प्रतीत होती है। यह हमारे लोकसंगीत का पतन है। आवश्यकता यह है कि इस लोकसंगीत का संरक्षण करने में सरकार, सांस्कृतिक मंत्रालय, लोकसंगीत के कलाकारो, व युवाओंको आगे बढ़कर सहयोग प्रदान करना चाहिए। जिससे हमारी आनेवाली पीढ़ियाँ इसका रसास्वादन कर सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. भारतीय संगीत की परम्परा वंशानुक्रम एवं वातावरण– डा. हरिकिशन गोस्वामी
2. भैरवी पत्रिका 2011 पृठ-131
3. भैरवी पत्रिका 2012 पृष्ठ-87
4. अभिनवमीमांसा पत्रिका पृष्ठ-53

''लोक संगीत''

श्वेता सत्यम

शोधार्थी, संगीत विभाग, ति. मा. भा. वि.

लोक गीत उसे कहते है, जिसे कोई भी व्यक्ति उन्मुक्त रूप से गुनगुना उठे, लोकगीत केवल ध्वनि और लय के अचले से बांधे हुए मस्ती भरे अन्दाज में उन्मुक्त भ्रमण कर रहा है। लोकगीत में स्वर की प्रधान्ता नहीं है, पर ताल और लय का प्रधान्य है। भारत के विभिन्न प्रान्तों के ग्रामीण अंचलों में फैला हुआ लोक-संगीत मानवीय उल्लास की चटक-चाँदनी है। लोकसंगीत आज भी सामूहिक रूप में अनपे-अपने चौपालों, में खेत खलियान और गलि-गलियारों में विद्यमान है, लोकगीत को देशी संगीत भी कहते है।

लोकगीत शास्त्रीय संगीत का बीज रूप है। किसी कला अथवा विद्या के शास्त्र का सृजन तभी संभव होता है, जब की वह अस्तित्व में आकर विकसित हो लोकसंगीत का अपना एक संस्कृति महत्व है। इस प्रकार के गीत केवल ग्राम गीत न होकर गाँव एवं शहरों में समादृत होने वाले परंपरागत गीत है जिसमें जन-जन के अन्तरस की भावनाओं की मधुर अभिव्यक्ति मिलती है। इन गीतों की जानकारी में सरल अनुभुति और भावों की गहराई तो है ही विभिन्न भूखंडो पर फैले हुए अपने धर्म, विश्वास और परंपरा पर आश्रित मानव मन के मानचित्र भी है। ये तीन शास्त्रीय राग-रागनियों तथा अन्य नियमों से मुक्त मूलतः भावना पर आधारित है। इनमें तालों का जटिल बंधन नहीं होता है।

लोकगीत देहाती दुनियाँ का दपर्ण है। किसी के लोक-साहित्य पर दृष्टिपात कर हम उसके समाज की स्थिति को जान सकते है। जैसे-उसकी प्रगति-अवगति। प्रारंभिक काल के लोकगीत उसके साहित्य का रूप रंग एवं स्वर-वितान दूसरा ही था। लोकगीत में उन दिनों, शब्दाडम्बर विभिन्न ताल और लय, अलंकार एवं भाषा का पुट नहीं था। एक बार लोकगीतो पर विचार करते हुए महात्मा गाँधी ने कहा था–

''लोक-गीतो में धरती गाती है, पहाड़ गाते है, नदिया गाती है, फसले गाती है, उत्सव और मेले, ऋतुएँ और परम्पराएँ गाती है''।

वस्तुतः लोकगीत हृदय का उद्‌गार है। प्रस्तर युग में मानव गुफाओं में रहता था पत्थर की सुरंगों एवं गुफाओं में जन-समाज को सभ्यता पनपने लगी। बृद्धि के विकास के साथ ही नव-भावों और मानव जीवन के नव-संस्कारों का विकास होने लगा। जन-समाज के विकृत स्वर, उसका आदि संगीत भावनाओं का स्पर्श पाकर कन्दराओं को गुंजित करने लगा, जब आदि मानव अपनी किसी उत्सव को मनाते तो वे स्वरों का टेढ़ा-मेढ़ा आलाप लेक जश्न मनाते धिरे-धिरे उनकी बुद्धि विकसित हुई और वे अच्छा गाने लगे।

लोकगीत मनुष्य को अधिक आकर्षित करता है अलग-अलग अवसरों के अलग-अलग गीत अपनी सरल स्वरावली और सरल शब्दावली के कारण लोगों की आत्मा से जुड़ जाते हैं। जन्म से लेकर मृत्यु तक के गीत के साथ-साथ पर्व, त्योहार, विशेष ऋतुओं के गीत इतनी स्वच्छेतापूर्वक गाते है कि मनुष्य अपने

समाज और अपनी मिट्टी से अनायास ही जुड़ जाते है।

जीवन के विभिन्न संस्कारों के आधार पर मिथिला में जन्म से लेकर मृत्यु तक के गीत। जिसमें 16 संस्कार है। जिनमें जन्म, मुन्डण, जेनऊ, विवाह, मृत्यु ये पाँच ही मुख्य है।

(1) जन्म-पुत्र जन्म के शुभ अवसर पर गाये जाने वाले गीतों को हिन्दी क्षेत्र में सोहर की संज्ञा दी गई है।

(2) मुन्डण- हिन्दु समाज में 16 संस्कारों में मुन्डण संस्कार भी एक है इसे संस्कृत में चूड़ाकरण-संस्कार कहते है। इस संस्कार में बच्चे के सिर के बाल प्रथम बार छीले जाते है। इसके पहले बहुत माता पिता बालक के बालों में कंघी तक नहीं लगाले जिससे उसके बाल में जटाएँ भी पड़ जाती है ये कोई नया संस्कार नहीं है। महाकवि कालिदास ने रधुवंश में मुंडन संस्कार का उल्लेख किया है। गोस्वामी तुलसीदास ने महर्षि वशिष्ठ के द्वारा राम के चूड़ाकर्म का वर्णन रामचरितमानस में किया है। ये जन्म के पहले तीसरे, पाँचवें सातवें - विषम वर्ष में यह संस्कार सम्पन्न किया जाता है।

(3) उपनयन (जेनऊ) संस्कार-: अंग क्षेत्र में यज्ञोपवीत संस्कार में. ाास्त्रीय विधि को बहुत महत्व दिया जाता है। मनु ने लिखा है कि मनुष्य जन्म से शुद्र उत्पन्न होता है, परन्तु संस्कारों को करने के उपरान्त ही वह द्विज कहलाता है। यज्ञोपवीत का अपभ्रंश रूप ''जनेऊ'' है। इसे ही उपनयन भी कहते है।

कहा जाता है -

''उपनीयते गुरूसमीपं प्राप्येत अनेनेति उपनयनम्''

प्राचीन काल में संस्कार के वाद बालक को गुरू के पास आश्रम में पढ़ने के लिए भेज दिया जाता था। इस लिए इस संस्कार को उपनयन कहा जाता था। जनेऊ को बहुत पवित्र माना जाता है, लोगों का विश्वास है कि उसमें विष्णु जी का वास होता है। इसी से शौच जाते समय दाहिने कान में जनेऊ लपेटने की प्रथा है।

(4) विवाह :- जीवन के 16 संस्कारों में जन्म संस्कार के बाद विवाह-संस्कार सबसे प्रधान और महत्वपूर्ण संस्कार है। विवाह संस्कार अन्य संस्कारों की तरह सरल संस्कार नहीं है। इसमें बहुत सारी जटिलताएँ रहती है। कन्या और वर दोनों के घर में कुछ अनुष्ठान समान होते हैं। दोनों ही पक्षो के गीत अधिकतर समान होते हे। कुछ ही गीतों एवं अनुष्ठानों में अन्तर पाया जाता है- जैसे- बारात की अगवानी एवं स्वागत के गीत, समधी मिलन के गीत, विवाह गीत, कन्यादान, विदाई आदि के गीत।

(i) बारात :- बारात विदाई के लिए धुमधान से तैयारी होती है। जिसमें बारात विदाई के पूर्व घर-भराई की रस्म सम्पन्न की जाती है। जिसमें इस तरह का गाना गाया जाता है-

स्वागत में गाली सुनाओं -2

(ii) विवाह गीत :- विवाह होते समय महिलाएँ एक जूट होकर विभिन्न विध व्यवहार का गाना गाती है। जैसे अठमंगल कूटना- इसमें सात पुरुष के साथ मिल कर बर धान कूटते है-

कुम्हार—सीता के सकल देखी झखत जनक बेटी, अब सीता के व्याह

(iii) लावा छिटाई :- सिन्दूरदान से पहले लावा छिटाई की रस्म होती है जिसमें लड़की का भाई सूप में लावा रखकर बहन के हाथ में देते चलता है। लड़का पिछे से लड़की को पकड़े रहता है यानी दोनों इस विद्य को पूरा करता है, और अग्णी के चारों ओर सात चक्कर (परिक्रमा) लगाते है। इस समय का गीत काफि करूण होता है।

''लली- रे लली अव सीता वेदी घुमन को चली''

(iv) सिन्दूर दान :- विवाह संस्कार का यह सबसे महत्वपूर्ण अनुष्ठान है। लौकिक विधि में इसको बहुत महत्व दिया जाता है। सिन्दूर दान के वाद कन्या पराई हो जाती है। सिन्दूरदान का दृश्य जितना करूणिक होता है, उतना ही उससे सम्वद्ध गीत भी है।

''सिन्दुर धिरे से डालीये, सुन्दर वर हो,
सिन्दुर चोरी न कजिए, सुन्दर वर हो।''

(v) कन्यादान - विवाह संस्कार में कन्यादान का दृष्य बड़ा ही करूणिक होता है। कन्या का पिता या बड़े भाई करते है। पिता कन्या का हाथ अपने हाथ में लेकर मन्त्रोच्चारण के साथ वर के हाथ में दे देता है। इस विधि को पंडित मंत्रोच्चारण के साथ सम्पन्न कराते है।

कन्यादान का समय बड़ा मर्मस्पर्शी होता है। इस अवसर पर गाये जाने वाले गीत हृदय को छूलेते है-

''सातम वरश पिया मण्डव पर बेसली,
पिया भेली व्यास जोग भेली।''

(vi) कोहबर - इन सारी विधियों के पश्चात् वर और कन्या दोनों को कोहवर में लाया जाता है। कोहवर के द्वार पर कहीं-कहीं सवासिने खड़ी रहती है, कही कन्या का भाई खड़ा होकर वर को कोहवर में जाने से रोकता है। इस विधि को द्वार छेकाई कहा जाता है।

''कंचन कनिया राम रतनिया
हीरा मोती लागल केवार हे
नव, वर व कनिया।।''

(vii) बेटी विदाई - कन्या के घर में गाये जाने वाले गीतों में विदाई के गीत सर्वाधिक मार्मिक एवं करूण है। इन गीतो में आस-पड़ोस की महिलाएँ करूण रस से भऐ इस गीत को जब गाती है तो सभी लोग रोने लगते है।

''बबा के अँगना में अले कहोतिया
अलिया अलपावरे''

(5) मृत्यु संस्कार - भारतीय धर्मशास्त्रकारों ने सोलह संस्कारों का विधान बतलाया है। मृत्यु मानव-जीवन का अंतिम संस्कार है। यह संस्कार संसार की सभी सभ्य-असभ्य जातियों में किसी न किसी रूप में आवश्य किया जाता है। मनुष्य शरीर से संबंधित यही अंतिम संस्कार है।

जो व्यक्ति वृद्ध होकर अपने बेटों, पोतों के सामने स्वभाविक मृत्यु पाता है, उसकी अर्थी को, सजाया जाता है। इसमें निगुण गीत गाये जाते है। क्योंकि वृद्ध की मृत्यु का संबंध शोक से न होकर प्रसन्नता से होता है।

निगुण - ''अरे आत्माएँ तुझे किसका डर हैं।

गगन में तू उड़ जा वहाँ तेरा घर है।।''

(2) ऋतुगीत - विभिन्न ऋतुओं में भिन्न भिन्न सैलीयों में जो गीत गाये जाते है। और शैली के अनुरूप इसमें जो भाव परिवर्तन होता है उसे ऋतुगीत कहते है। उदाहरण- वसंत में होली चैतमास में चैतावर वर्षा ऋतु में कजरी एवं बारहमासा गाया जाता हैं।

(i) होली - उल्लास एवं रंगों का त्योहार जो फागुन शुक्ल पक्ष पूर्णिमा में मनाया जाता है। इसमें पुरूष वर्ग एक जुट होकर होली के गीत गाते है जिसमें राधा और कृष्ण का वर्णन मिलता है। होली के गीत -

(ii) मस्त महीना फागुन ऐले
रंग वसंती कल्हैया खेले होली।

(iii)फागुन में राम खेले होली फागुन में,
किनकर हाथ कनक पिचकारी,
किनकर हाथ, अबीर झोली, फागुन में,,,

(iv) चैत - ऋतु प्रधान गीतों की श्रृंखला में चैत मास में गाये जाने वाले ऐसे गीत जिसमें चैत का वर्णन हो उसे चैता कहते हैं।

(i) अमुवा मंजरी गेले, कोयली कुहकी गेले,
डाली-डाली फरले, टिकुलीया, हो रामा चैत शुभ दिन मा हो रामा

(iii) वर्षा ऋतु - वर्षा ऋतु में कजरी गाया जाता है। लोकगीतों में कजरी का विशेष स्थान है सावनों में धिरने वाली बादलों की कालिमा का वर्णन करने के कारण ही इन गीतो को कजरी की संज्ञा दी गई है। यह श्रावण और भादू भक्ष के शुक्ल पक्ष की तृतीया को मनाया जाता है इसी दिन तीज गाया

जाता है - कजरी ही तीज है। कजरी का दुसरा नाम हिन्दोला गीत भी कहते है। कजरी गीत को झूला पर झूल कर गाने की प्रथा है।

(i) सावन में घिर आई कारी वदरिया,
माई वन, बोलन लागे मोर

(ii) झूला लगे कदम के डरिया
भौजी चलेहू झूलेना
पिया बसे परदेशवा
ननदी झुला भावे न।।

(iv) बारहमासा - ऐसी गीत जिसमें बारहों महीना का वर्णन हो तथा वर्ष के बारह ऋतुओं के आधार पर निर्मित साथ ही उन ऋतुओं की विशेषता एवं समाज में तथा जन मानस पर पड़ने वाले प्रभाव सुखद या दुःखद इन सभी आधार पर अन्तर मन में उठने वाले छन्दों को कविता के रूप में ाब्द एवं स्वरों के आधार पर अभिव्यक्त करने को वारहमासा गीत कहते हैं

(i) प्रथम मास असाढ़ है सखी, जलधार है,
उमड़ी-धुमरी मेघा बरसन लागे,
भिज गेले लम्बी केस है।।

(ii) जेठ हैं सखी, हेठ वर्षा, चारो दिश
बिजली छटक है बिजली घे छटके
हो रामा, हृदय कलप, थड़-थड़ करे शरीर है॥

लोक-संगीत का हमारे जीवन में काफि महत्व हैं। क्योंकि इसे कोई भी, कभी भी, कहीं भी गा सकता है। जैसे - जब किसान खेत में रोपनी करता है। जब वह फसल काटता है। इस तरह लोक-संगीत का हमारे जीवन में काफि महत्व हैं।

हरिहरन

सा
मा
यि
की

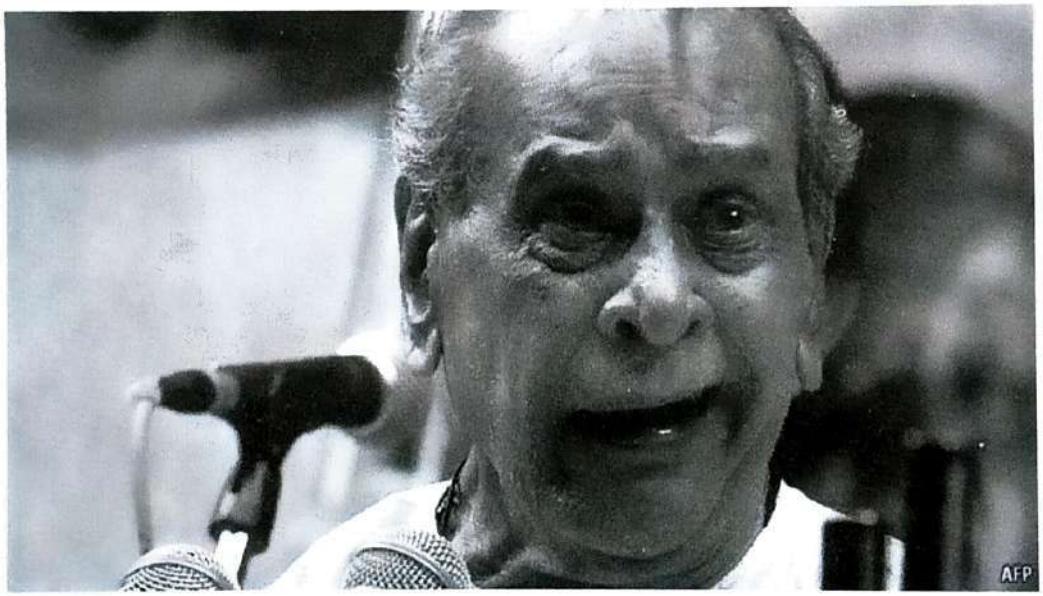

भीमसेन जोशी

Technological Aids in Teaching Performing Arts

Dr. K. Sashikumar

H.O.D. Dept. of Vocal Music, Banaras Hindu university, Varanasi

In the Modern age technology plays an important role for teaching work and research work. The usage of audio and visual aids coupled with good public speaking skills, work hand-in-hand to create effective presentation. Whereas one teachers speaking style and stage presentation are personal talent that can also refine with much practice and experience. For effective presentation one should not be detailed in his discussion whereas more emphasis must be given to audio and visual aids to a successful presentation either in class or general.

Media and Technology have played a vital role in preserving classical music and dance in India. From radio to Modern digital technology & internet facility has come to the modern class room instantly for the audio visual class room work in most of the institutions. This has helped tremendously to reach music from person to person, from country to country. Present time children or the students are so advanced in any subject they can instantly refer or hear or see any kind of documentation, information of a subject through his aneroid telephone. So technology has contributed considerably for preserving and spreading music taste amongst the public.

After the invention of Radio, it helped the public to listen and learn music through radio broadcasting, radio was so cheap that it was affordable to all with a meager income, village or city every one enjoyed the music with the help of radio and thus it increased the interest of the people. Lot of archive recording are available now for classroom playing . AIR has given tremendous treasure of Indian classical music for the modern generation for research and class work.

By the invention of gramophone and records such as 78 Rpm, L p and E p records the music lovers got a chance to listen to their favorite musicians, young generation got the opportunity to listen the great maestros , even though the recording was of poor quality while comparing to modern digital recording . Now the new generation is preparing to digitalize the old recording to preserve and protect the old style and tradition.

The recording technology was first started with two track analog system and simultaneously it went up to sixteen track etc., which was done with the help of the

mixer. The spool tape was then succeeded by the ADAT machine with 8 track facility having digital quality which can easily sink with another machine of the same kind, thus by increasing the channels with the help of different machines. And with the advancing of the technology new machines were introduced with faster and clearer mode to increase and develop the knowledge of the listeners.

The television has contributed a lot in the field of live performance by eminent artist which is recorded by many people through VCR, VCPR . Which was later on digitalized and utilized in a proper way for class room teaching work and also through group programme for teachers for mass class room work. This facility is very much used in BHU .

Some of the most technological aids used in India and abroad are Video compact disc , digital video disc, mini digital video disc etc., So many musicians and teachers are using these equipments for better quality of recording and also play back . The HD(high definition) technology has and also full HD facility has tremendous advantages for audio and video clarity. After the invention of computer and software the whole technology has changed and entirely dependent on computerized recording technology which has software with built in mixer facility, effects processor , graphic equalizer , midi and sampler. There are so many simpler software for home version in I phone , android phone, I pad, tab, laptop etc., through this a teacher can record so many information and also collect so many videos and audios for class room teaching with the help of LCD monitors . Through this version a teacher can collect so many materials and the teacher can explain well in classrooms such as vocal teacher can explain well about different Gharanas, Instrumentalist also can explain different way of playing techniques of Sitar, Flute , Violin etc., whereas a dance teacher can explain well about the various styles of Nritya ,Nritha, and Abhinaya. If a student is unknown about any subject he can refer through internet and collect all information and discuss with the teachers. For example if a teacher is explaining about different version of dances he can show photographs , videos even the notes preparation can be shown through LCD projector .

Apart from class work the technology has a power of saving paper for the studies all the students can collect the data of class work in a CD or in a pen drive. Nowadays most of the academic staff colleges are providing only CD's most of the people are using soft copies instead of hard copies especially the younger generation prefer only soft copies , even the thesis works are sent to the examiners through soft copies were one can save so many paper ,thus bringing in green revolution. For class room teaching work , we are also blessed with numerous varieties of electronic music instruments like electronic tampura , electronic tabla , electronic sruti box, lehera machine etc., In making electronic tampura the pioneer company was Radel electronic Bangalore. Now they have developed different varieties of tampura models like sarang concerto which looks like a real tampura.

Sarang micro III , sarang melody, Sarang maestro, Sarang magic, sarang deluxe. The sruti box models of radel are Druva Cd , excel –III , Dhruva Cd deluxe, Dhruva automatic. For tabla players sunanda mala lehara with 200 pre set tunes in twenty talas. Two programmable tunes are available with this model . Tala mala digi-60's is a digital table machine with 60 tekas sampled realistic stereo sounds. The radel company has recently celebrated its silver jubilee. In this function they have released new models of tampura named Sarang Miraj 4/5/6 stringed realistic digital tampura. On the year 2002 they also introduced the digital veena, which is called as sunadavinodini electronic veena. Now a days micro size Tampura is available viz. Shruti mohini which is manufactured from Hyderabad. Now we have so many other similar companies like Riyaz, Surmaster etc., all these were able to do the invention of the digital sampler machine through which all the real tones of the instrument can be sampled.

Sruthi or Tampura sur is ready available in the website where one can download play in a phone in any pitch. Through e journals and E library one can collect materials through this for class work. The brilliant sruthi in apple store(i-pro) is an excellent tampura which is free for I phone holders others can down load with little money , which is a brilliant version for performance use, also can play through speakers.

References:

1. "Description Key for Educational Media". The Described and Captioned Media Program. November 4, 2008. Retrieved September 7, 2009.
2. "Networks Set to Launch Video Descriptions". *TVNewsCheck.com*. Retrieved June 20, 2012.
3. "Audio described DVD Database". Australia: Media Access. Retrieved 10 December 2012.
4. "BBC i Player audio description is now available". *BBC Internet Blog*. BBC. August 27, 2009. Retrieved September 7, 2009.

भारतीय कला में आधुनिकता का स्वरूप

मनीषा सक्सेना

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, नारी ज्ञानस्थली, गोण्डा

1. कला में आधुनिकता का होना एक शैली नहीं उसकी प्रवृत्ति है जो कि प्रत्येक कला में प्रत्यक्ष रूप से होती है आधुनिक युग में इसका स्वरूप बदल गया हैं किसी भी कलाकृति के सृजन में तीन तथ्य मुख्य रूप से उपस्थित रहते हैं तथा संपूर्ण रचना को सुनिश्चित करते हैं जिसमें प्रथम कल्पना द्वितीय भावों की अभिव्यक्ति एवं अंतिम तकनीक का प्रयोग है।

2. वास्तव में देखा जाये तो भाव अथवा संवेदना ही किसी भी कला का अधार होते हैं उसके वाद अभिव्यक्ति भावों को प्रदर्शित करने का माध्यम है और इस प्रस्तुति की तकनीक के द्वारा साकार रूप प्रदान किया जाता है। जैसे जैसे युग में परिवर्तन आता जाता हैं तकनीक के माध्यम उनकी खोजें व क्षेत्र में विकास हेाता जाता है और हम आश्वस्त होते जाते हैं कि कला में की जाने वाली समस्त खोजें तकनीक के क्षेत्र में आती हैं व उनमें प्रयुक्त विभिन्न शैलियां व सिद्धांत मूलतः तकनीक है। ये तकनीक विचारधारा से प्रभावित होती है और जब हमें नयी विचार धारा से परिचय होता है तो ये आधुनिक लगती है।

3. नयी विचारधारा नयी तकनीक से जुड़ने के पश्चात व्यक्ति अनुकूल बनने हेतु सारी दुनिया से संवाद करता है व विज्ञान एवं संचार के विभिन्न साधनों का उपयोग करता है इन सारी बातों के वाद जव वो जीविका के साथ अभिव्यक्ति जुटता है तो उसके प्रदर्शन में अपना व्यक्तित्व कृतित्व व व्यवहार में काल की झलक दिखलाई पड़ती है।

कला एक सृजनात्मक अभिव्यक्ति है एवं कलाकार अनेक प्रकार से अपने हृदय के भावों को व्यक्त कर कलात्मक अभिव्यंजन करता है। यह सत्य है कि आधुनिकता का अर्थ वर्तमान से आंका जाता है परन्तु ऐसा नहीं कि वर्तमान में घटित होने वाला प्रत्येक कार्य आधुनिक है क्योंकि आज भी ऐसी अनेक जातियां व स्थान है जाँ वे परम्परागत चीजों की वर्तमान युग में कर रहा है। अतः उनमे विचार व कार्य परम्परागत ही है आधुनिक नहीं आधुनिकता की दूसरी शर्त है कि कला वे विचार रचनात्मक तो हों परन्तु जिस व्यक्ति अथवा समाज में परम्पवरागत या रूढ़िवादी ढंग से कार्य तथा कला को किया जाये वो आधुनिक नहीं है भले ही वर्तमान में जो घटित हो रहा है। अपितु जो व्यक्ति इन परम्पराओं से अलग एक नयी खोज सोच समझ व अनुभूमि के आधार पर परिवर्तन है। कोई मूर्खता पूर्व विचार अथवा क्रियात्मक के द्वारा परम्परा की सीमा को लांघ जाये तो उसे सनकी या पागल ही कहा जायेगा क्योंकि उसमें विचार समाज का सकारात्मक रूप नहीं दे पा रहे हैं और उसे उससे कोई महत्व की प्राप्त नहीं सकता। मौलिकता विचारों का वह पक्ष है जो उसें समाज के हितकारी है यही औलिकता की पहचान और इसी लिये मौलिक आधुनिकता के लिये एक शर्त है।

समय के बदलते हुये आयामों प्रत्येक क्षेत्र में व्यवसाय परम बुद्धि का प्रयोग होने लगा है यहां तक कि कला में बनी आधुनिकता के नाम पर उसका दोहन हो रहा है। इन समीक्षा समालोचनाओं से कुल अन्तर पड़ेगा क्योंकि प्रत्येक मन में आज इन कार्य प्रवृत्तियों को संचालित करने वाली इस वैज्ञानिक और उपभोक्ता युग की मनोवृत्तियां हावी है।

आधुनिकता को लाने तथा अध्ययन सामग्री जुटने हेतु कला में कितना व्यस्त कितना व्यक्ति पूरक हो जायेगा इसका अनुमान लगाया जा सकता है परिवर्तन के दौर में कला भी अब बंधने तथा परम्पराओं को दोहराने वाली नहीं रही वह भी वगीकृत हो चुकी है प्रत्येक व्यक्ति की असली सोंच व सुविधा है जिसमें रहते वह कला को रंग व अनुभूति प्रदान करता है। इसके साथ ही वह अपने आप को भी प्रदर्शित करता है।

यदि हम भारतीयता की स्वीकार करें तो भारतीय जीवन मूल्यों की आधार भूत मान्यवाओं की ओर जाता है। यदि भारतीय तथा विदेशी मूल्यों तथा चिन्तनों का आंकलन करें तो रचनात्मक प्रकृति की भौतिक की अपेक्षा अत्यधिक रूप से बेहतर समझा जा सकता है। इसी अर्थ की खोज से कला का विकास आधुनिकता के साथ-साथ संभव है। आप आधुनिकता प्रत्येक क्षेत्र में दिखाई पड़ती है। यंत्र, तकनीकी ज्ञान संचार, वैज्ञानिक प्रगति इत्यादि। परन्तु यदि हम कला की आधुनिकता की बात करें तो कला का सम्बन्ध भौतिकता से न होगा आत्मा से है जो वस्तु विशेष नहीं है और नही वस्तु की तरह उसकी व्याख्या की जा सकती है। कला आत्मा व कल्पना की रचनात्मक इकाई है जिसमें साहित्य व सौन्दर्य दोनो का मिश्रण मिलता है। आज कला में यह बदलाव औद्योगीकरण और विज्ञान की वजह से आया है। हम जिसे ?कला की आधुनिकता कहते हैं उसका अर्थ नयी पुरानी जानकारियों को उनकी उपयोगिता व मात्रकला की दृष्टि को उपयोग में लाना है और यह भी ध्यान में रखना है कि वर्तमान केन्द्र में रहते हुये अतीत व भविष्य को संतुलित करें ताकि परम्पराओं की आधुनिक दृष्टि से संरचना हो सके।

सर. जे. स्वामी नाथन का कथन है कि कलाकार को इसीलिये अपनी सहज मनोवृत्ति और ऐतिहासिक धरोहर दोनों से जूझना है। यह जब होगा तभी स्वतं सुखाय में किया गया कार्य रस व आन्नद की वर्षा तथा समाज परक व समहित का कारण बनेगा तथा नयी रचना कार्यक होगी।

परन्तु चूँकि इन स्थितियों के साथ किसी भी कलाकार की रचना में वहीं प्रतिविम्बित होगा जो उसमें मानव पटल पर होगा आधे बुरे मापदंड तो परम्परा से आते हैं और विभिनन परिस्थितियों में कला के मनोभाव भी अवचेतना रूप में उपस्थित रहकर उभय जाते है अतः अपने संस्कार व वातावरणीय प्रभाव से हम उसमें आधुनिकता के साथ व्यक्त कर सकते हैं।

आज हम सभी का कला के प्रति सहज तथा निरन्तर प्रयास रहना चतिर्थ कि परम्पराओं का आधुनिकता से समायोजन कर कला को उन्नत बनाया जाये ताकि भारतीय संस्कृति का पुनर्गठन होता रहे। नयी धाराओं ने कला की सृजनात्मक दृष्टिकोण भी दिया है अनेक ग्रपु ने मिलकर कला का नये ढंग से प्रस्तृति करण किया है और नया रूप भी प्रस्तुत किया है जिसमें आधुनिकता व पुरातन कला के दर्शन होते है यह एक सकारात्मक कार्य है इन सभी कलायें । प्रयास इसी दिशा में होते रहना चाहिये।

कला का रूप अविरल है उसमें निरन्तर ही नये दृष्टिकोण नयी विचार धारायें प्रगति शीलता तथा परिवर्तन होता रहा है और होता रहेगा ध्यान देने योग्य यह है ?कि भौतिकता में मौलिकता का अर्थ हमेशा व्यवस्थित रहे ताकि कला में आधुनिकता को सही दिशा मिलती रहे एवं वाद संवाद की स्थिति बनी रहे।

संगीत विविधता से परिपूर्ण कला

1. भारत विविधताओं से परिपूर्ण एक कला प्रधान देश है जिसमें ललित कलाओं का प्रदर्शन देखने को

मिलता है ललित कलाओं में अनेक कला का मिश्रण है जिसमें संगीत, की सर्वश्रेष्ठ कला कहा गया है, भारत के कण-कण में संगीत विशेष रूप से विद्यमान रहता है वो शान्त्रीय संगीत हो या लोक संगीत प्रत्येक क्षेत्र की परम्परा की समेटे हुये वो भारत देश की कला को दर्शाता है।

कला मानव संवदेनाओं की अभिव्यक्ति का उपकृष्ट माध्यम है। कला का प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में समाज में जीवन में, राष्ट्र जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। कला ईश्वर की की उपासना राष्ट्र की सेवा का सशक्त माध्यम है। कला व्यक्ति को सुस्कृति एवं परिष्कृत करता है। कला ही एकाग्रता, सहजता व सरलता का जीवंत स्रोत है।

कला के रूप अनेक है, माध्यम अनेक, हैं परन्तु उनकी आत्मा एक है, लक्ष्य भी एक है साधनता का एकाग्रता का हमारे संस्कार ही ही कलाओं के बीच तत्व है और भारतीयस कलायें संस्कृति की सुन्दरतम एवं सर्व प्रभावी है। देखा जाये तो कला संस्कृति का मूल तत्व है कलाओं में संस्कारों का निर्माण तथा उससे परम्परा का निर्माण होता है जो कि वंशानुगत क्रम में समाज का पल्लवित करती रहती है। प्रत्येक कला का हृदय तथा मन की शांति को बनाये रखने में महत्वपूर्ण स्थान रहता है परन्तु संगीत एक ऐसी विशिष्ट कला है जो कि समान्त ललित कलाओं में सर्वश्रेष्ठ है ?कारण कि इसके प्रयोग के लिये माध्यम की आवश्यकताओं नहीं पड़ती यह हृदय से उत्पन्न होकर आनन्द प्रवाह करती है ?व शांति प्रदान करती है। इसमें सुन्दरता के साथ साधना व मनोरंजन का समावेश रहता है क्यों कि इस कला का संबंध संवेदनाओं से है अतः इसका मूल उद्देश्य मन को आंनदित करना तथा मानसिक शांति देना है।

हम प्रयोगात्मक तौर पर भी इसकी पुष्टि कर चुके हैं कि विभिन्न किया कलापों के ,द्वारा संगीत की स्तर लहरीका प्रभाव देखा जा सकता है।

दैनिक दिनचर्या में जब दिन का प्रारम्भ प्रातः काल से होता है और एक कला में यदि राग व स्वर का गायन किया जाये तो वित्त की शांति की प्राप्ति होती है लोक संगीत के माध्यम से भी भजन कीर्तन आदि न र नारी मिलकर करते हैं तो वातावरण में संचार ही दुष्ता है इतना ही नहीं मात्र श्रवण करने से भी मन के तार झंकृत हो जाते है। आज के भौतिक वादी जीवन यदि कठिन परिश्रम के बाद किसी भी मन पसन्द व संगीत की मधुर वादी की सुना जाये तो पूरे दिन का तनाव व कठर दूर हो आनन्द की प्राप्ति होती है। ?तथा संगीत के श्रवण से पूरे दिन ताजगी, स्फूर्ति और नवचेतना का अनुभव करते हैं। इसीलिये स्वयं नाराण ने भी नारद जी से संगीत की महिमा को प्रशंस में कहा है।

'नाहं वसानि वैकुण्ठे योयिनां हृदये नाच
मद् भक्ताः यत्र गर्यान्त तत्र तिष्णमि नारद

खोजो व मात्र. इतना ही नहीं हम किसान के आधुनिक खोजों के द्वारा आज इस बात की पुष्टि कर चुके हैं कि संगीत के द्वारा रक्त संचरण, हृदय रोग निदृ रोग व अनेक मानसिक रोगों का निदान किया जा सकता है। बाल्यकाल सो लेकर वृद्धावस्था हम अनेक प्रकार का संगीत बच्चा घर व बाहर से सुनता तथा सीखता है व इच्छानुसार उसको ग्रहण करता है। हमारी कलायें भारत की नवजीवन प्रदान करती है दोनों की इस भूमि पर संगीत का अपकर्ष हो मानव का प्रमुख व्यर्थ होना चाहिये क्यों कि उसमें माध्यम से विश्व को नई दिशायें मिलेंगी। संगीत कला सभी प्रकार के सांस्कृतिक प्रदूषणों की प्रबल विरोध करती है तथा भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता को किरण स्तर पर सुनिषचित करना चाहती है।

आज इसके स्तर को घटाया जा रहा है मात्र कुछ व्यवसायिक लाभ के कारण भारतीय जीवन के मूल्यों, नैतिकाताओं परम्पराओं मान्यताओं तथा संस्कारों की नष्ट किया जा रहा है जो कि सही दिशा नहीं है, उचित नही है। जो कि सही दिशा नहीं है, उचित नहीं है। संगीत कला के माध्यम से साम्प्रदायिकता एकता; का संचार, होता है। गीता व

रामायण के श्लोक तथा चंद, प्रार्थना जन समूह हृदय में शांति का संचार करती है।

चिकित्सा विज्ञान में भी यह साफ हो गया है संगीत की मधुर ध्वनि स्वास्थ्य की रक्षक, रोग निवारण और आयुवधिक होती है ध्वनि विशेषज्ञों का भी ऐसा कहना है कि डिस्को या पॉप संगीत को सुनने से श्रवण शक्ति का हृाय होता है और उसके मन एंव मस्तिरण में दुर्बलता आती है।

उच्च श्रेणी का संगीत सम्पूर्ण शरीर को झंकृत कर देता है स्फूर्ति प्रदान करता ळै अनेक प्रकार से औषधि का काम भी करता है यही नहीं पशु पक्षी आदि, भी संगीत की ध्वनि से मंत्र मुग्ध हो जाते हैं। दैनिक जीवन में भी संगीत मनुष्य को आनन्द प्रान करता है जैसे छोटे- अवसरों पर घर में जाना वजुओं से पानी भरते समय आदि।

संगीत ईश्वरीय प्रतत एक गुण है जिसमें से हम अपने जीवन में आन्नद ला सकते है रोगों से व तनाव से अपने को दूर रख कर स्वस्थ एवं आदर्श जीवन यापन कर सकते हैं। यही नही संगीत से परम्परा का विकास होता है जिससे परिवार व समाज को बल मिलता है। ईश्वर की प्रार्थना प्राप्ति का ये सर्वश्रेष्ठ उपाय है अतः ?यदि हम दैनिक दिनचर्या में काम करते समय संगीत की सुनें तो निश्चित रूप में हमारा हृदय मन मस्तिष्क कभी थकान का अनुभव नही करेगा।

आधुनिक युग में शास्त्रीय संगीत की लोकप्रियता

नन्दकिशोर झा

शोधार्थी, महाराजा मानसिंह तोमर वि. वि., ग्वालियर

शास्त्रीय संगीत गंगा की भाँति नाद ब्रह्म के अनिर्वचनीय आनन्द की उन्मुक्त कल्याणी चिरन्तन धारा है, जो समाज को युगों से रसाप्लावित करती रही है। इस धारा को कोई भी अपने पात्र की क्षमता के अनुसार संजो सकता है, आनन्द प्राप्त कर सकता है। समर्पण भाव एवं साधना ही पात्र के आकार-प्रकार का आधार है। एक वाक्य में कहा जा सकता है, संगीत एक विशाल सरिता अवश्य है, परन्तु यदि इसका फैलाव बढ़ा, तो गहराई अनिर्वायतः छँटेगी और यदि गराई बढ़ती है तो फैले जल को अपने प्रबन्धों के बीच सिमटना ही होगा, यही है शास्त्रीय संगीत की लोकप्रियता का मर्म।

प्राचीनकाल में ही अभिजात्य वर्ग तथा विद्वानों द्वारा संस्कृत तथा अन्य वर्गो द्वारा प्राकृत बोली जाती थी। हम हर राह चलते साधारण व्यक्ति से कैसे आशा कर सकते हैं कि वह वाल्मीकि, कालिदास, भास अथवा अन्य कृतियों का सहज रसास्वादन कर ले। इसी प्रकार साहित्यकारों, रचनाकारों से अपेक्षा करना कि वह ऐसा लिखें कि हर व्यक्ति बिना प्रयास समझ लें, आनन्द लें सकें - न केवल अन्यायपूर्ण बल्कि अव्यावहारिक भी होगा। स्तरीय कला, साहित्य को समझने के लिए उसके मूलभूत सिद्धान्तों, शास्त्रीय नियमों व्यावहारिक बारीकियों, सौन्दर्य का अंतरंग ज्ञान आवश्यक है। जिन्हें भाषा विशेष का ज्ञान नहीं है, उनके लिए जर्मन, फ्रेंच अथवा रूसी या अन्य किसी भी अजनबी भाषा की श्रेष्ठतम काव्य रचना का पाठ शोर से अधिक और क्या होगा? इस स्थिति में दोष किसका है? रचनाकारों का, अथवा उस भाषा विशेष से अनभिज्ञ श्रोताओं का, जो न केवल काव्य के रस, अलंकार, छन्द, काव्य सौन्दर्य, बल्कि भाषा से ही अपरिचित है।

लोकप्रियता के संदर्भ में शास्त्रीय संगीत पर गलेबाजी, भावशून्यता, नीरस, अशुद्ध तानबाजी, संगत के नाम पर दंगल, द्वन्द्व युद्ध जैसे आरोप लगाए जाते हैं। ऐसे आरोप अंशतः सही हो सकते हैं, परन्तु सामान्य रूप में ऐसा नहीं है। इसके अनेक कारण थे, मध्ययुगीन राजदरबार परम्परा में रहने वाले संगीतज्ञों का व्यवसायी दृष्टिकोण, दरबार में अपना ऊँचा स्थान बरकरार रखने के लिये एक दूसरे को नीचा दिखलाने, अपने को सबसे ऊँचा सिद्ध करने, लय, गति अथवा अन्य किसी भी चामत्कारिक प्रभाव से आश्रयदाता को आश्चर्यचकित, प्रभावित करने अथवा फिर संरक्षक का रूख और रूचि देखकर, भले ही वह संगीत-विरोधी अव्यवहारिक अश्लील ही क्यों नहो, प्रदर्शन से प्रसन्न करने की ललक जैसे अनेक कारण थे। हिन्दी साहित्य में रीतिकाल में भी यही हुआ। चमत्कार, अलंकारों की प्रधानता हुई, भाव उपेक्षित हो गया, परन्तु अब ऐसा नहीं है। वर्तमान श्रोता कहीं अधिक सजग और संवेदनशील, व्यापक दृष्टिवाले, समालोचक हैं। कलाकार भी कला को भाव सरसता प्रधान बनाने के लिये प्रयत्नशील है।

शास्त्रीय संगीत के श्रेष्ठ कलाकारों की, जिन्होंने लाकेप्रियता की कीर्त्तिमान स्थापित कियें, अपनी

समृद्ध परम्परा है। इनमें अब्दुल क़रीम खाँ, बड़े गुलाम अली खाँ, अमीर खां, बुन्दू खाँ, इनायत खाँ, विलायत खाँ, बिस्मिल्ला खां, भीमसेन जोशी, सलामत अली -नज़ाकत अली, पण्डित जसराज जैसे अनेक नाम लिये जा सकते हैं। आजकल मात्र किसी घराने अथवा परम्परागत रूप में अपने पिता आदि की अर्जित ख्याति मात्र से संगीतज्ञ स्थापित अथवा लोकप्रिय नहीं हो सकता। वर्त्तमान श्रोता इस सम्बन्ध में कहीं अधिक वस्तुनिष्ठ और पूर्वग्रहमुक्त हैं। संगीतज्ञों की सीमित संख्या के आधार पर लोकप्रियता के सामने प्रश्न चिन्ह लगाया जाता है। यह आरोप भी असंतुलित है। किसी भी कला या साहित्य के शिखर पर थोड़े ही लोग पहुँच पाते हैं। गत पचास वर्षो से भी अधिक निरन्तर प्रचार और गाँव-गाँव घर-घर लोकप्रियता के बावजूद फ़िल्म गायकों की संख्या भी तो सीमित हैं। कुन्दन लाल सहगल , सी. एच. आत्मा, शमशाद बेगम, गीता दत्त, मुहम्मद रफ़ी, मुकेश, महेन्द्र कपूर, मन्ना डे, लता मंगेश्कर, आशा भोंसले, सुमन कल्याणपुर, सुलक्षणा पंडित, अनुराधा पौडवाल, वाणी जयराम जैसे कुछ नाम लिये जा सकते हैं।

अन्य समस्त कलाओं की तुलना में संगीत की अन्य शैलियों की अपेक्षा अमूर्त, सूक्ष्मतम होने के कारण शास्त्रीय संगीत को श्रेष्ठ माना गया है। मूर्तिकार, चित्रकार जिस अभिव्यक्ति को सजीव प्रतीत होने वाली प्रतिमा अथवा जीवन्त रंग-बिरंगे चित्रों से प्रस्तुत करता है, संगीतज्ञ उसे शब्दों-स्वरों से अभिव्यक्त करता है। अभिव्यक्ति का रूप जितना अधिक मूर्त और ठोस होता है, उसके श्रोताओं, दर्शकों की संख्या उतनी अधिक होती है। सम्भवतः इसी कारण विशुद्ध ध्वनि (स्वर) प्रधान शास्त्रीय संगीत की तुलना में शब्द-प्रधान भाव संगीत, ठुमरी, भजन, गज़ल आदि अधिक लोकप्रिय हैं। इनकी तुलना में दर्शक मूर्त-प्रधान होने के कारण नृत्य अधिक पसंद करते हैं, इसी प्रकार फ़िल्मी संगीत शब्द-भाव प्रधान दृश्य विशेष से सम्बंधित (एसोसियेशन ऑफ आइडियाज़) होने के कारण श्रोताओं को अधिक प्रभावित करता है। फ़िल्म को देखने के पश्चात् उसके गीत सुनने से श्रोता के सामने गीत से सम्बंधित दृश्य विशेष उभरकर साकार हो उठता है, जिसके साथ गीत और श्रोता का पूर्ण तादात्म्य स्थापित हो जाता है। गीत से सम्बधित फ़िल्म देखकर और बिना देखे गीत सुननेवाले श्रोताओं की संवेदनशीलता, प्रभाव में बड़ा अन्तर मूर्तता के प्रभाव का सबसे बड़ा प्रमाण है। सूक्ष्मता के कारण शास्त्रीय संगीत सुननेवालों की संख्या भले अन्य शैलियों के श्रोताओं जैसी न हो परन्तु अमूर्तता और सूक्ष्मता के कारण ललित कलाओं में शास्त्रीय संगीत को सर्वोत्तम स्थान दिया गया है।

शास्त्रीय संगीत तथा अन्य कलाओं में वही अन्तर है जो निर्गुण और सगुण ब्रह्म में है। शास्त्रीय संगीत मूर्तता, साहित्य से परे है, विमुख नहीं। साक्ष्य में भाव, रस, अलंकार, छन्द, अभिधा, लक्षणा, व्यंजना की भाँति संगीत का अपना सौन्दर्य है। स्वरों से आरोह-अवरोह, स्वर सन्निवेश, चलन, ढंग, गमक, कम्पन, आलोड़न से संगीत आंगिक चेष्टा, शाब्दिक भाव को अभिव्यक्त करता है। काकुभेद से उन्हीं शब्दों/वाक्य को अलग अर्थसूचक रूप में मात्र शब्दों के उच्चारण में उतार-चढ़ाव के माध्यम से सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया जाता है। ''पिया नाहीं आए'' व्यंजना की टीस की कल्पनाशील कलाकार बिना पुनरावृत्ति किये अनेक रूपों में प्रभाव ढंग से व्यक्त करता है, यही उसकी श्रेष्ठता है। विद्वान लोग जानते हैं, भीमपलासी, बागेश्री, आसावरी, जौनपुरी, मालकंस, अड़ाना, धानी, तोड़ी, दरबारी सभी में कोमल गान्धार का प्रयोग होता है। प्रत्येक राग में गान्धार का विशेष ढंग से प्रयोग/चलन राग को अलग-अलग स्वरूप और पहचान देता है। यही है शास्त्रीय संगीत की विशेषता। शास्त्रीय संगीत की इन विशेषताओं, बारीकियों तथा सौन्दर्यबोध के साथ पारखी के लिये गहराई तक डूब कर कला का आनन्द लेने के लिये भी पर्याप्त संगीत-ज्ञान, समझ, साधना, अनुशासन, धैर्य आवश्यक है। ऐसे प्रबुद्ध पारखीजनों और कलाकारों के बीच निरन्तर द्विपक्षीय संवाद से कलाकार की श्रेष्ठतम अभिव्यक्ति का

आनन्द मिलता है। इस दृष्टि से शास्त्रीय संगीत की लोकप्रियता सदैव सीमित रहेगी। व्यापक प्रचार के लिये लोकसंगीत है।

यह विडम्बना है कि राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात अपना देश, अपनी कला-संस्कृत पर गर्व करने की अपेक्षा सांस्कृतिक दासता में स्वेच्छया दिनोंदिन जकड़ता जा रहा है। इस प्रवृत्ति के कारण संगीतज्ञों का एक वर्ग अपनी कला-श्रेष्ठता, साधना की अपेक्षा येनकेन प्रकारेण विदेशी दौरा करके वहां के तमगों, प्रेस समीक्षा कटिंग्स अथवा अतिरंजित वर्णन से व्यापार की विज्ञान-शैली का आकर्षक फोल्डरों के माध्यम से भरपूर उपयोग करके भारत के श्रोताओं को चकाचौंध करने, लोकप्रियता हासिल करने और इस तरक़ीब से रातोंरात अपनी फ़ीस कई गुना बढ़वाने में लगा है। ऐसे शॉर्टकर्ट से त्वरित लाभ भी हो रहा है। परन्तु इससे सही अर्थो में, और स्थायी लोकप्रियता नहीं प्राप्त हो सकती है। इसी प्रकार कलाकारों के लिये सस्ती लोकप्रियता के चक्कर में न पड़कर अपने स्तर, स्वाभिमान को वनाये रखना है। स्व. पं. वी.जी. जोग, उस्ताद विलायत खाँ, उस्ताद विस्मिल्लाह खाँ आदि जैसे कलाकारों ने श्रोताओं के फ़िल्मी गीत अथवा धुन जैसे अनुरोध को विनम्रतापूर्वक अस्वीकार करके अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया है। मात्र लोकप्रियता के लिये शास्त्रीय संगीत के सरलीकरण का कोई प्रश्न ही नहीं है। ध्रुवपद से खयाल, खयाल से ठुमरी जैसी प्रक्रिया सहज रूप में अपने आप चलती रहती है।

हर समस्या का राजनीतिक पद्धति से निदान ढूंढने की प्रवृत्ति के कारण दीनइलाही धर्म की तर्ज पर कर्नाटक एवं हिन्दुस्तान संगीत पद्धतियों को मिलाकर नयी पद्धति चलाने का सुझाव दिया गया है, जिससे शास्त्रीय संगीत अधिक लोकप्रिय हो। ऐसे सुझाव कला के लिये नितान्त अनुपयुक्त और अव्यावहारिक हैं। दोनों पद्धतियाँ गुलदस्ते के रंग-बिरंगे फूलों जैसी हैं, जिनके पुष्पों की विविधता, सुगंधि ही उनका सौन्दर्य हैं। समय की गति और दृष्टिकोण के कारण तालवाद्य कचहरी, दोनों पद्धतियों में राग-रागनियों को परस्पर अपनाये जाने और लोकप्रिय होने की प्रक्रिया सहज रूप में चल रही है। जो आधुनिक युग में शास्त्रीय संगीत की लोकप्रियता के कारण ही संभव हुआ है।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. परांजपे शरद चन्द्र श्रीधर भारतीय संगीत का इतिहास।
2. शर्मा डॉ. हरद्वारीलाल, कला में संगीत, साहित्य एवं उदात्त के तत्व।
3. लेख- परांजपे श्री शरद चन्द्र श्रीधर, 'संगीत निबंध संग्रह'।
4. चौबे सुशील कुमार - हमारा आधुनिक संगीत।

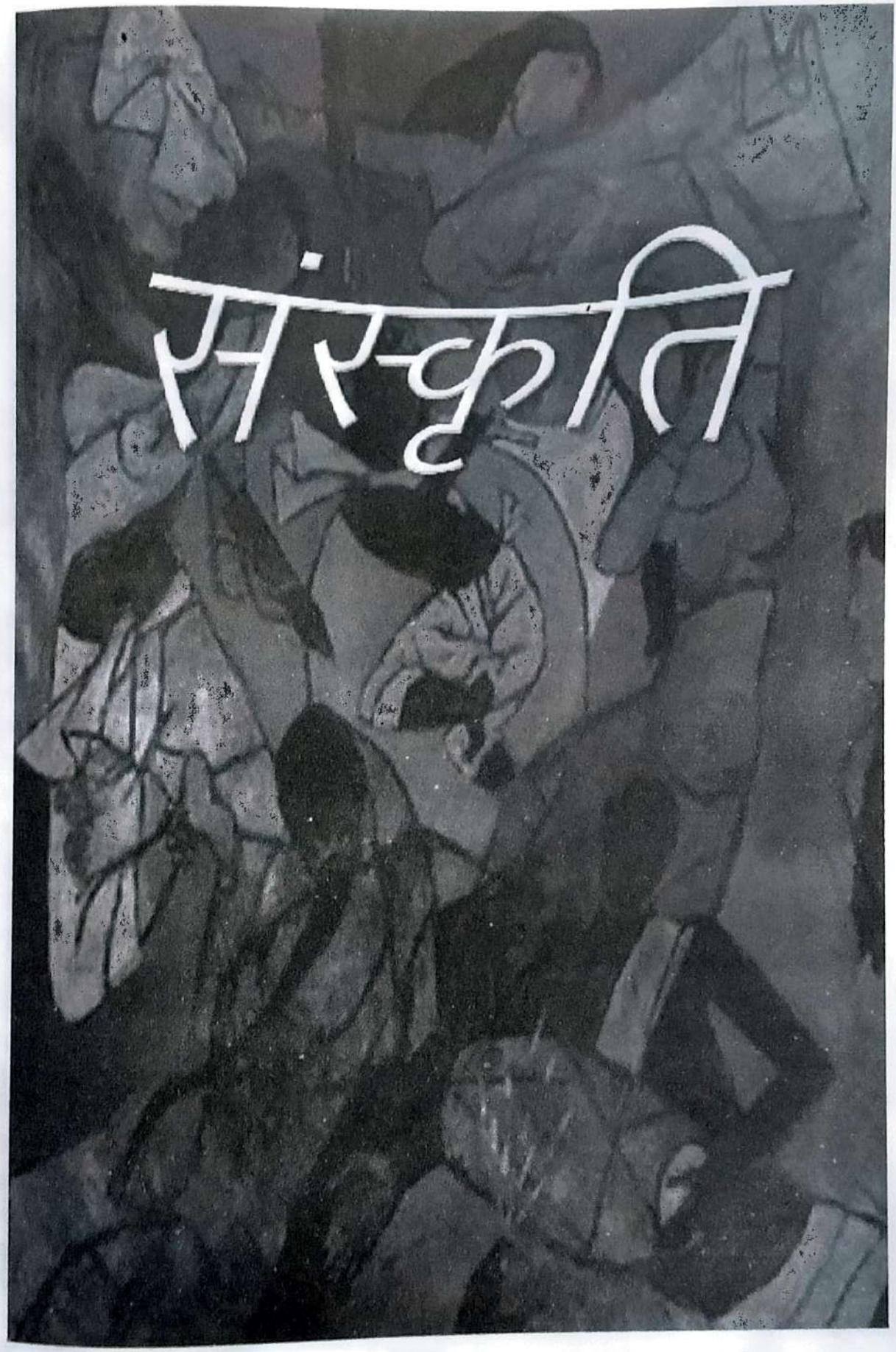
संस्कृति

किशोर कुमार

''बौद्ध कालीन संगीत साहित्य के सिद्धान्त''

डा. रुक्मिणी मेहरोत्रा

एसोसिएट प्रोफेसर, संगीत वादन, राजर्षि टण्डन महिला महाविद्यालय, इलाहाबाद

भारत की सांस्कृतिक गतिविधियों के अध्ययन के लिये बौद्ध साहित्य का परिशीलन अत्यन्त आवश्यक है। बौद्ध काल में संगीत के वैदिक तथा लौकिक दोनों पक्षों का प्रचलन था। सामवेद की शिक्षा वैदिक अध्ययन के अन्तर्गत मानी जाती थी तथा गान्धर्व का अन्तर्भाव शिल्प में किया जाता था। सम्पन्न परिवार की बालक बालिकाओं की संगीत शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता था। कला मर्मज्ञता सुसंस्कृत व्यक्ति का आवश्यक गुण मानी जाती थी। कला के कारण गणिकाओं को समादर की दृष्टि से देखा जाता था। कला का व्यवसाय करने वाले विप्र वर्ग को हीन दृष्टि से देखते थे। बौद्धों को संगीत वही सही लगता था जो आध्यात्मिकता में एकाग्रलीन कर सके। देवदासियों की नियुक्ति, मात्रा संगीताराधना हेतु की जाती थी तथा इसकी आवश्यकताओं पर पर्याप्त ध्यान दिया जाता था। संगीत कला को पूर्णतया राज्याश्रय प्राप्त था।

उच्च वर्ग में सांगीतिक शिक्षा का अधिक प्रचलन था। बुद्ध के जन्म के मांगलिक अवसर पर पाँच सौ वाद्यों का वृंदवादन हुआ था। गौतम बुद्ध स्वयं संगीत तथा नाट्यकला के जानकार थे। माता कला निपुण थीं। अनेक उत्सवों का आयोजन होता था और गीत वाद्य तथा नृत्य की त्रिवेणी प्रवाहित हो उठती थी। चीनी यात्री फाहियान ने ऐसे ही अनेक मगध में होने वाले उत्सवों का वर्णन अपने यात्रा-विवरण में दिया है। ये उत्सव 'समज्जा' या 'समाज' कहे जाते थे। आख्यानों का गान भी ऐसे ही अवसरों पर किया जाता था। चतुर्विध वाद्यों का प्रचुर उल्लेख प्राप्त होता है। वीणा उस समय का प्रिय वाद्य रहा है। इसी वाद्य ने महात्मा बुद्ध को भी प्रभावित किया था। वीणाओं की प्रतियोगितायें इसी काल में आयोजित की जाती थीं। अवनद्ध वाद्यों में मृदंग, भेरी, प्रणव, दुन्दुभि का उल्लेख मिलता है। सुषिर वाद्यों में शंख, तूर्य, कुराल, श्रंग आदि का उल्लेख है।[1]

भगवान बुद्ध संगीत को सांसारिक न मानकर उसे कल्याणकारी और मानव की भलाई का साधन मानते थे। संगीत का आधार ही गौतम बुद्ध के उत्कृष्ट आदर्शों पर रखा गया। मानव कल्याण, संसार में दया, देवताओं और मनुष्य की भलाई, जनकल्याण हित हेतु गौतम बुद्ध ने प्रचार शुरू किया। अनेक बौद्ध भिक्षुओं को इस कार्य के लिये भेजा संगीत को विलासिता से दूर कर नैतिकता से पूर्ण माना। उनके अनुसार संगीत मात्र मनोरंजन का साधन नहीं है अपितु मनुष्य को आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर करता है। परिणामस्वरूप क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ। श्रंगारिक गीतों के स्थान पर अध्यात्म की ओर अग्रसर करने वाले गीतों की रचनायें होने लगी। संगीत को ईश्वर सदृश पवित्र माना गया अर्थात् आध्यात्मिक संगीत की नींव रखी गयी। गौतम बुद्ध के आदर्श-सम्मान में अनेक सुन्दर गीतों की रचना हुई।

बौद्ध युग में संगीत-साहित्य का बहुत विकास हुआ। संगीत पर अनेक सुन्दर ग्रन्थ लिखे गये।

वैदिक एवं लौकिक दोनों पक्षों का प्रचलन इस युग में रहा। संगीत कला का विकास इस युग में भावनात्मक और कलात्मक दोनों ही दृष्टियों से हुआ। तत्कालीन 'लंकावतार सूत्र' में वर्णित है कि भगवान बुद्ध के दर्शन होने पर रावण ने अपने स्कन्ध से लटकती हुई वीणा पर सप्त स्वरों के साथ गाथा-गान आरम्भ किया।[2]

इसी बुद्ध काल में वैशाली में (बिहार राज्य के अन्तर्गत) आम्रपाली को 'वैशाली की नगर वधु या राजनर्तकी' के नाम से जाना जाता था। संगीत के एक उत्सव में आम्रपाली ने अपनी प्रतिभा का ऐसा अनोखा प्रदर्शन किया कि सारा वृज्जिसंघ मुग्ध हो उठा और सभी ने उसे नगरवधू बनाए जाने की मांग की। उस काल में यह परम्परा विद्यमान थी। अतः भूतपूर्व नगर-वधू 'पुष्पगंधा' ने आम्रपाली का अभिषेक किया। उसने आम्रपाली को राजनीति, राजसी रहन-सहन, नृत्य, गायन एवं वादन की विधिवत् शिक्षा दी। आम्रपाली ने अभ्यास एवं कठिन परिश्रम से इन कलाओं में अपूर्व दक्षता प्राप्त कर ली। वह भरत-नाट्यम्, लोक गीतों एवं लोक नृत्यों तथा वीणा वादन में विशेष निपुण थी।

आम्रपाली के प्रत्येक वर्ग के लोग निःसंकोच जाते थे यहाँ तक कि स्वयं भगवान बुद्ध ने भी उसके निमंत्रण को स्वीकार कर आम्रपाली के यहाँ भोजन किया था। आम्रपाली ने अपनी संगीत-कला द्वारा, बौद्ध धर्म को चीन, जापान और तिब्बत आदि अन्य देशों में पहुँचाने में भी सहयोग दिया।

यह युग प्रकाशपूर्ण संगीत का था। यह युग संगीत के महान आदर्शों का था। ज्ञान के उपदेश के साथ-साथ संगीत-कला का परिष्कार हुआ। इसी काल में थेरी गाथा की रचना हुई जो कि बौद्ध भिक्षुणियों के भाव-प्रवण गीतों का संग्रह है। इस काल के संगीत की विशेषता रही कि मानव-कल्याण के हित अनेक हित अनेक गीतों का सृजन हुआ, जिसका श्रेय मुख्यतः भगवान बुद्ध को जाता है। इस प्रकार बौद्धकाल में भगवान बुद्ध के समस्त सिद्धान्तों को गीतों की लड़ियों में पिरो दिया गया। गाँव-गाँव, नगर-नगर जाकर सुन्दर ढंग से गायन करके सुप्त जनता को जागरण का पथ दिखलाया गया। तिब्बत, चीन तथा हिन्देशिया जैसे बौद्धानुयायी प्रदेशों में आज भी संगीताराधना की प्राचीन परम्परा अक्षुण्ण है।[3]

सन्दर्भ :

1. भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण - स्वतन्त्र शर्मा, पृ0 सं0 40-41
2. हिन्दुस्तानी संगीत शास्त्र - भगवत शरण शर्मा, पृ0 सं0 108-109
3. भारतीय संगीत का इतिहास - श्री शरतचन्द्र परांजपे, पृ0 सं0 80-81

भारतीय किसानों की समस्यायें और उपाय

रज्जन द्विवेदी

शोधार्थी, महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट

हमारा देश एवं राज्य कृषि प्रधान है। हमारे देश एवं राज्य की अर्थव्यवस्था कृषि पर आधारित है। कृषकों की विभिन्न समस्याओं को हल किये जाने हेतु हमारे देश व प्रदेश में विभिन्न योजनाओं की जमीनी स्तर पर क्या सफलतापूर्वक संचालन हो रहा है? विभिन्न विषयों जिनका सीधा संबंध कृषकों से है, में कृषकों का हित क्या सर्वोपरि है? क्या हमारे कृषक को साधन संपन्न बनाये जाने हेतु यथा संभव प्रयास वास्तविक रूप से हो रहे हैं? अर्थव्यवस्था की विभिन्न समस्याओं में उन समस्याओं पर कृषकों के हित में व्यापक दृष्टिकोण अपनाया गया है, क्या सीधा संबंध कृषकों के जीवन यापन, रहन-सहन आदि से है? ये सभी प्रश्न आज भी हमारे सामने प्रश्नों के रूप में खड़े हैं और यदि कृषकों की वर्तमान स्थिति पर गंभीरता से विचार किया जाये तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि हमारे अर्थव्यवस्था में सुधार हो रहा है परंतु कृषक उसी स्थिति में है जिसमें वह वर्षों पूर्व या संभवतः उसकी स्थिति और भी खराब हुई है। यह एक चिंतन का विषय है। यह प्रकरण किसानों द्वारा आत्महत्या करने संबंधी समाचार पत्रों में छपे विभिन्न समाचार पत्रों, व शोध छात्र द्वारा अपने शोधकार्य के विषय से लिया गया है। इस शोध पत्र में उन समस्याओं के बारे में चर्चा की जाएगी जो एक दो किसानों से न होकर संपूर्ण कृषि से है ही साथ ही साथ सभी समस्याओं की जननी भी है। समस्यायें अधिक हैं इन समस्याओं पर शासन व प्रशासन स्तर पर विस्तृत विमर्श की आवश्यकता है। ये सभी समस्यायें ऐसी हैं जिनका एक दो लिखे गये पृष्ठों के आधार पर समाधार नहीं निकाला जा सकता है। कई समस्याओं पर तो विशेषज्ञों का मत भी लिया जाना आवश्यक है। यदि शासन व प्रशासन गंभीर प्रयास करते तो समस्याओं को कम और फिर समाप्त किया जा सकता है। अतः इस प्रपत्र में दी गई अनुसंशायें एक प्रयास है।

वैकल्पिक तंत्र : भूमि नीलामी

घटक और घोष (2011) के अनुसार नीलामी आधारित मूल्य निर्धारित तंत्र 2013 के भूमि अधिग्रहण कानून द्वारा निर्धारित और कठोर प्रणाली से ज्यादा बेहतर काम करता। यहां हम विचार का सार पेश करेंगे किसी भी परियोजना के लिए जमीन अधिग्रहण की दिशा में पहले कदम के रूप में सरकार को परियोजना स्थल से आकार के बराबर जमीन नीलामी के माध्यम से पड़ोस में खरीदनी चाहिए। अगला परियोजना स्थल के भीतर आने वाले बिना बिके भूखंडों के मालिकों को उनके स्थान के बाहर बराबर क्षेत्र की कृषि योग्य भूमि देकर, भूमि के लिए भूमि का मुआवजा दिया जा सकता है। यह अधिग्रहीत भूमि से संलग्न भूमि को परियोजना स्थल पर जोड़कर अधिग्रहीत भूमि को मजबूत करेगा।

इस तंत्र के दो फायदे हैं। पहला यह भ्रष्ट अधिकारियों के हाथों से लेकर स्वयं मूल्य निर्धारित करता है जो एक पारदर्शी तरीका है। यह किसानों की ओर से खुद प्रतिस्पर्धी बोली के माध्यम से तय

किया गया मूल्य होता है। यह विकास के विरुद्ध राजनीतिक प्रतिशोध के आक्रामक तत्त्व कम कर उसे शांत करेगा। साथ ही मौजूदा से पूर्व बाजार के मालिकों की भूमि का असली मुआवजा तय करेगा न कि कृत्रिम मानकों के आधार पर। दूसरा यह उन किसानों की भूमि की शेष भूमि का पुर्ननिर्धारण करेगा जिनके पास उच्च कीमत की भूमि है। उम्मीद की जा सकती हे कि इन किसानों से उच्चतम कीमत पूछकर बोली लगाने के लिए और भूमि के बदले नगद में मुआवजां दिया जाना खतम हो जायेगा। निश्चित रूप से नीलामी खाये हुए भूमि बाजार को नई गति देगा। द हिंदू के एक लेख में केंद्रीय ग्रामीण विकास मंत्री जयराम रमेश और उनके सहयोगी मोहम्मद खान ने इस संबंध में लिखा–''भारत में भूमि बाजार अपरिपाव है इसलिए यहां राजयों को अधिग्रहण में एक भूमिका रखनी चाहिए क्योंकि यहां जमीन के खरीददारों और विक्रेताओं के बीच शक्ति और जानकारी संबंधी विशाल विषमताएं हैं। यदि बाजार का अभाव है तो तंत्र के लिए जरूरी हो जाता है कि (क) कीमत की खोज की जाये परियोजना तथा उसके आर्थिक प्रभाव सभी को उपलब्ध हो और इस बारे में यह सूचना तब प्रभावी होगी जब बाजार सुचारू रूप से प्रबल होगा (ख) भौतिक व्यापार वाले किसानों को अधिग्रहण के बाद के बाजार में अपनी भूमिका निशा पाते हमारा प्रस्तावित नया कानून, ठीक यही करता हे ''नन सिक्विटर'' (यह पालन नहीं करता है) से प्रभावित है। यह बाजार के किसी भी दोष को स्थान नहीं देता है। यह पूर्ण अटकलबाजी के आधार पर मामले को सुधारने की कोशिश करता है।

प्रचार-प्रसार

सामान्यतः यह देखा गया है कि कृषकों के हित में कृषि संबंधी जानकारी के पर्याप्त प्रचार-प्रसार की कमी है। जिसका प्रचार-प्रसार वास्तविक रूप में होना चाहिए था वह अभी भी नहीं हो पा रहा है। उदाहरण के लिए कृषकों को टी.वी. के माध्यम से प्रसारित किसी भी कार्यक्रम में ऐसी सामान्य जानकारी खेती के संबंध में दी जाती है जो भौगोलिक एवं अन्य दृष्टि से किसी क्षेत्र के लिए लाभप्रद हो सकती है परंतु वह जानकारी किसी अन्य क्षेत्र के लिए व्यर्थ है विभिन्न फसल चाहे वह अनाज हो, सब्जी हो, फल हो अथवा अन्य कोई पैदावार हो, अलग-अलग क्षेत्रों में अलग कारणों से सफल व असफल होती है। यह आवश्यक नहीं कि सभी कारण सभी दर्शकों के लिए ठीक व सही हों। इस कारण इसका विशेष लाभ कृषकों को नहीं होता है। यही स्थिति समाचार पत्रों के माध्यम से दी जाने वाली जानकारी के संबंध में भी है। प्रचार-प्रसार के लिए प्रदेश में जो कृषि विश्वविद्यालयों की जो भूमिका है। उसे बढ़ाते हुए उनके माध्यम से इस प्रकार से प्रचार-प्रसार हो, ताकि उन्हें उपलब्ध जानकारी का लाभ जमीनी स्तर पर कृषक जगत प्राप्त कर सके। राज्य के जन संपर्क विभाग पर दायत्वि डाला जाये कि जब भी कृषकों द्वारा आत्महत्या जैसे संवेदनशीलता समाचार आते हैं तो उसके संबंध में कृषकों को समझाइये देने के लिए समाचार पत्रों में साहित्य का प्रकाशन करे ताकि कृषक को वास्तविक स्थिति की जानकारी हो और वे आत्महत्या जैसे संवेदनशील कृत्य की ओर अग्रसर न हो। राज्य का जन संपर्क विभाग, मीडिया आदि से चर्चा कर निश्चित करने का प्रयास करे ताकि सनसनीखेज एवं विवादास्पद समाचार जनता के सामने व आये एवं वास्तविकता ही उनके द्वारा बताई जाये। सनसनी खेज या विवादासाद तथ्यों की जानकारी दिये जाने पर अन्य अनेक कृषक भी ऐसा करने के लिए प्रेरित होते हैं जो किसी भी स्थिति में उचित नहीं है।

भूमि अधिग्रहण विधेयक

भारत में अब तक मुख्यतः 1989 के ही भूमि अधिग्रहण के ढांचे को स्वीकार किया गया है। यह कानून सर्कल दरों औरहाल के दर्ज बिक्री के दरों के दस्तावेजों के आधार पर भूमि के लिए स्थाई बाजार मूल्य के बराबर आवश्यक मुआवजा देने की बात करता है।

इस कानून का मूल्यांकन करने के लिए पहले यह समझना जरूरी है कि इस कानून में क्या कमी है। सीधे शब्दों में कहें तो बाजार भाव पर मुआवजा एक गहरा त्रुटिपूर्ण सिद्धांत है। भूमि के बाजार भाव और स्वामी को भूमि से मिल रहे मूल्य के बीच में भ्रमित नहीं होना चाहिए। दूसरा मूल्य फसल उत्पादन, परिवार श्रम, खाद्य सुरक्षा, गौण स्तर पर प्रयोग, मुद्रास्फीति और सामाजिक स्थिति के खिलाफ संरक्षण सहित कई कारणों से निकला है। भूमि का मूल्य (स्वयं मालिक जिस कीमत पर देना चाहता है) विशिष्ट है जो मालिक के अनुसार स्वयं काफी भिन्न होता है।

मुआवजे के लिए एक प्रतीक के रूप में पिछले लेन-देन की कीमतों पर आधारित बाजार मूल्य के निर्धारण के दो अतिरिकत कारण हैं। बड़ी मात्रा में खेत का अधिग्रहण स्थानीय कृषि अर्थव्यवस्था के लिए एक आपूर्ति झटका है जो मांग और आपूर्ति के सामान्य नियमों द्वारा जमीन कीमतें ओर किराये बढ़ा देगा। यदि जमीन की कीमतें काफी तेजी से बढ़ रही हैं तो पुरानी कीमतें पर्याप्त नहीं हैं क्योंकि विस्थापित मालिक कृषि भूमि के शेष राशि के बराबर कृषि क्षेत्र वापिस खरीदने में सक्षम नही होंगे। परियोजना स्वयं अपनी आर्थिक गिरावट के माध्यम से भूमि मूल्य वृद्धि पैदा कर देती है और क्षेत्र में खासकर सहायक उद्योगों को आकर्षित करती है। हाल में लेन-देन में दर्ज की गयी कीमतों पर भरोसा नहीं करने का एक अतिरिक्त कारण यह है कि भारत में अवसर वास्तविक लेन-देन की कीमतों पर स्टांप शुल्क से बचने के लिए उन्हें दर्ज नहीं कराया जाता।

इस प्रकार स्पष्ट है कि मुआवजा हमेशा बाजार मूल्य के तहत है इसमें कितना वृद्धि की जानी चाहिए यह मामले के आधार पर और स्थानीय स्तर पर भिन्नताओं पर निर्भर होना चाहिए। भूमि बाजार की स्थिति का दोष, भूमि का लिया जा रहा अंश, इस परियोजना की प्रकृति अधिग्रहीत भूमि पर आ जायेगी, जमीन खोने वाले किसानों की विशेषताएं निर्धारित करेगी कि क्या इजाफा स्वीकार है। (घटक ईटी ए एल 2012) मालिकों की ओर से बताया गया कि पश्चिम बंगाल सरकार द्वारा दी गयी मुआवजे की पेशकश बाजार मूल्यों के औसत के बराबर भी। इन मालिकों के एक तिहाई लोग मुआवजा से इंकार कर भूमि अधिग्रहण का विरोध करते थे।

ग्रामीण भूमि बाजारों का पुनर्जीवन

ग्रामीण भूमि बाजारों को बेकार बनाने में कई कारण जिम्मेदार हैं—भूमि का खराब लेखा-जोखा जो अधिकारिक तौर पर स्वामित्व हस्तांतरण करने में परेशानी पैदा करते हैं किरायेदारी और भूमि हशबंदी कानूनों की उपस्थिति स्वामित्व की गुप्तता को बढ़ावा देते हैं तथा बिक्री के रास्ते में बाधाएं, संभावित खरीद खरीददारों की सीमित गतिशीलता दलाली सेवाओं और अवसरों को खरीदने और बेचने के बारे में जानकारी के सीमित प्रवाह की कमी भी उल्लेखनीय है। औपचारिक बैकिंग क्षेत्र की सीमित पहुंच को देखते हुए इसका एक और पहलू भूमि खरीद के वित्त-पोषण की कठिनाई है।

दूसरा पहलू एक ऐसी दुनिया में है जहां बीमा, षाख और बच के अवसरों के औपचारिक सूत्रों का बहुत कम उपयोग होता है, भूमि केवल आय भुनाने की परिसंपत्ति ही नहीं बल्कि एक बीमा पॉलिसी व जमानत व पेंशन योजना के रूप में है। इसलिए भूमि बाजारी का संचालन ठीक से हो तो भी गरीब किसान को कृषि से प्राप्त अपेक्षाकृत कुछ सरल लाभ को भूमि बेचने पर निश्चित रूप से वरीयता देंगे। भूमि आसान व्यापार के योग्य परिसंपत्ति नहीं है, मालिक अक्सर ऋण प्राप्त करने के लिए जमानत के रूप में इसका प्रयोग करने में असमर्थ होते हैं और ऋण बाजार की खामियों को बढ़ावा देते हैं। दूसरी ओर वित्त-पोषण की कठिनाई, भूमि बाजार में ज्यादा समस्याएं पैदा करता है और किसानों को कम उत्पादन से अधिक उत्पादक करने से रोकता है इसके अलावा, ऋण बाजार में स्वामियों के कारण किसानों द्वारा भूमि में अपर्याप्त निवेश करने को बढ़ावा, नयी तकनीकों को अपनाने, खाद एवं पानी में बाधा पैदा होती है।

यह सब न केवल सामाजिक न्याय और समानता की दृष्टि से। बल्कि पैदावार बढ़ाने और विनिर्माण और सेवाओं में संसाधनों की पारी को सक्षम बनाने के प्रयोजन के लिए भूमि सुधार के महत्त्व को रेखांकित करता है। भूमि पर बेहतर परिभाषित संपदा अधिकार संपत्ति तक पहुंचने के लिए न केवल रास्ता देते हैं बल्कि ऋण बाजार को मजबूत बनाने और गुणक प्रभाव के लिए सही मुआवजा प्राप्त करने के लिए भी महत्त्वपूर्ण है।

भूमि सुधार और भूमि अधिग्रहण की प्रक्रिया के बीच जहां पूर्व में सुधार की सुविधा होगी वैसे ही भूमि अधिग्रहण की संभावना भूमि हदबंदी के कार्यान्वयन को आसान करेगा। अन्य प्रतिफलों पर भी विचार किया जा सकता है जैसे विभिन्न सरकारी सेवाओं और लाभ, सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों से ऋण के रूप में, इस तरह की अन्य सेवायें जेसे नरेगा या सार्वजनिक वितरण प्रणाली, सब्सिडी आदानों, भोजन के अधिकारों आदि के माध्यम से हकों को बढ़ाया जा सकता है।

कृषि औद्योगिक नीति

हमारे देश में अभी भी स्वतंत्रता के बाद भी कृषि को उद्योग का दर्जा नहीं दिया गया हे जबकि कृषि का भारतीय अर्थव्यवस्था में अत्यंत महत्त्व है। जब तक कृषि को उद्योग का दर्जा नहीं दिया जायेगा तब तक कृषकों की उन्नति संभव नहीं है। सामान्य रूप से जब कोई उद्योग प्रगति करता है तो संबंधित प्रगति उद्योगपति की होती है इसका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष लाभ कुछ प्रतिशत तक देश को प्राप्त होता है हालांकि यह अवश्य कहा जाता है कि उद्योगों की प्रगति देश की प्रगति है परंतु इसमें उद्योगपतियों की प्रगति अधिक होता है। किसानों के मामले में ऐसा नहीं है। कृषक भी देश की प्रगति के लिए मेहनत करता है परंतु उसका वास्तविक लाभ उसे न मिलकर व्यवसायियों, उद्योग पतियों आदि को मिलता है। कृषक एक महत्त्वपूर्ण इकाई है परंतु नीति के अभाव के कारण उसे वह महत्त्व प्राप्त नहीं हो रहा है जिसका वह हकदार है, इसके पीछे कारण यह है कि खेत में फसल तो कृषक पैदा करता है परंतु लाभ समाज के अन्य वर्ग एवं व्यवसायी आदि उठाते हैं। और इस लाभ का कोई भी प्रतिशत किसान को प्राप्त नहीं होता है। यहां तक कि पूरे वर्ष मेहनत करने के बाद भी अनेक कृषकों को लागत भी नहीं मिल पाती है। तब वो विभिन्न माध्यमों से ऋण लेने के लिए आगे आते हैं। यदि वास्तव में कृषकों के हितों पर विचार किया जाये तो औद्योगिक नीति अत्यंत आवश्यक है जिसके क्रियान्वयन द्वारा किसानों को इतना लाभ अवश्य मिल सके कि वे विभिन्न साधनों के माध्यम से आधुनिक खेती अपनाने के लिए प्रेरित हो सके साथ-ही-साथ उनके रहन-सहन व जीवन स्तर ऊंचा हो सके। इसके द्वारा किसान को स्वालंबी बनाया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ-सूची–

1. समाज शास्त्र, (साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा) एम. एल. गुप्ता, डी. डी. शर्मा प्र. सं. 901।
2. समाज शास्त्र दिग्दर्शन (राजेंद्र पब्लिकेशन गोरखपुर) के राजेंद्र, के.के. मिश्र. आर.के. मुखर्जी।
3. विकास का समाज शास्त्र (विवेक प्रकाशन दिल्ली, 2001), जी. आर. मदान।
4. ग्रामीण समाज शास्त्र (संजीव प्रकाशन मेरठ) आ.के. रस्तोगी प्र. सं. 126, 154, 2999।
5. भारतीय अर्थव्यवस्था (एस. चंद्र एंड क. लि. नई दिल्ली-110055) गौरव दत्त, अश्वनी महाजन।
6. सामाजिक शोध व सांख्यिकी (विवेक प्रकाशन, दिल्ली 2009) आर. एन. मुखर्जी।

पत्रिकाएं–

1. नीति मार्ग भोपाल 15 अक्टूबर 2012।
2. योजना (योजना भवन-दिल्ली) नवंबर 2013।
3. योजना (योजना भवन-दिल्ली) जून 2013 प्र.स. 13।
4. कुरुक्षेत्र नवंबर 2013।

टोंक की संगीत परम्परा

मधु बजाज

शोधार्थी, वनस्थली विद्यापीठ, जयपुर

17वीं व 18वीं सदी में जयपुर, जोधपुर, अलवर, बीकानेर, उदयपुर आदि कई राज्यों के गुणीजनखानों में गंधर्वशाला, रंगशाला, नृत्यागार तालीमखाना, संगीत प्रकाश नामक संस्थाओं की स्थापनाएँ हुई जहाँ अनेक प्रसिद्ध गायक, वादक नर्तक नियुक्त रहे इन कलाकारों ने अपनी साधना से अपनी वंश परम्परा गायन, वादन व नृत्य शैली को अक्षुण्ण ही नहीं रखा यद्यपि अनेक कई मूर्धन्य कलाकारों को भी तैयार किया जिन्होंने अनेक घरानों को समृद्ध एवं स्थापित किया। ये गुणीजनखाने जब देश की स्वतंत्रता स्थापित हुई तब ये रियासतें भी समाप्त हो गई और इनके साथ-साथ इन रियासतों में स्थित गुणीजनखाने भी समाप्त हो गये। टोंक जयपुर, बीकानेर, झालावाड़ आदि इन स्थानों पर नाटकों के मंच होते थे। जिसके लिये विशाल नाटक घरों का निर्माण कराया गया। इन नाटक घरों में इन कलाकारों के समूह नियुक्त होते थे। विभिन्न रियासतों में अपनी-अपनी श्रेष्ठता व गुणों के द्वारा इन कलाकारों के विभिन्न वर्ग होते थे।

जिनमें गायक, पंडित, कलावंत, गंधर्व, कीर्तनकार, संगीतकार, सरोद वादक, सितार वादक, जलतरंग हालूका वादक, पखावज? बीनकार, कत्थक रासधारी खरताली, हारमोनियम, कव्वाल, गणिकायें, नर्तकियाँ तबला वादक, शहनाई वादक, ढोलकियाँ, नक्कारची आदि थे। कला का सबसे समृद्ध गढ़ जयपुर शहर था। 18वीं शताब्दी में जयपुर में विभिन्न श्रेणी व वर्गों के सैंकड़ों कलाकार यहाँ मौजूद थे, क्योंकि यहाँ गुणीजनखाने में स्थित बहियों (बहिखातों) से मालूम होता है। उदाहरणतः महाराजा रामसिंह के दौर में 155 कलाकार और महाराजा माधोसिंह द्वितीय के समय 125 कलाकारों के नाम सूचियों में अंकित मिले हैं। सन् 1925 ई. में इसी गुणीजन खाने में 150 कलाकारों के नाम मिले हैं और इन कलाकारों का वार्षिक बजट डेढ़ लाख रुपया सालाना था। सन् 1803 ई. में जोधपुर के महाराजा मानसिंह के समय में पुस्तक प्रकाश के बंध संख्या 9 में 12 कलावंत, 38 गायक व 11 कव्वालों के नाम अंकित है और सन् 1869 ई. में राज्य के अभिलेख अनुसार 40 कलाकारों के नाम जिनका वेतन आदि का उल्लेख उदयपुर की 'संगीत प्रकाश' में स्थित है।

सन् 1928 ई. में 20 उच्च कोटि के कलाकार अलवर के गुणीजनखाने में नियुक्त थे। इसी प्रकार टोंक उणियारा धौलपुर एवं झालावाड़ आदि इन छोटी- छोटी रियासतों के कलाकारों में विभिन्न कालों में नियुक्तियाँ व इन्हें दिया जाने वाला वेतन आदि प्राचीन बहियों (बहिखातों) में इनका उल्लेख किया गया है।

इन रियासतों के गुणीजनखानों में उच्च कोटि व प्रसिद्ध विशेषज्ञ कलाकारों में ध्रुपद, धमार, ख्याल, गायक, सारंगी व पखावज, सितार, वीणा वादक, तबला वादक एवं कत्थक नृत्यकारों में नृत्यकियाँ, गणिकायें गायिकायें आदि नियुक्त थे। जिनमें विशेष ख्याति प्राप्त विद्वान कलाकार थे और इन कलाकारों से दरबार हमेशा सुशोभित रहते थे।

राजस्थान की विभिन्न रियासतों में नियुक्त कलाकारों की संख्या देखी जाये तो उस समय सैंकड़ों में मिलती है। तथा दरबारों के अतिरिक्त धार्मिक स्थानों मन्दिरों में भी समर्पित कलाकारों की संख्या रही थी। यद्यपि प्रमाणित रूप के तौर पर 300-400 वर्ष पूर्व के बहिखातों व हस्तलिखित ग्रन्थों का अध्ययन किया जाये तो उस समय इन सभी कलाकारों की संख्या हजारों में दिखाई पड़ती है। जिनमें अपनी-अपनी कला व विद्या के धनी ये ख्याति प्राप्त कलाकार श्रेष्ठ रत्न माने जाते थे।[1]

17वीं शताब्दी में टोंक के प्रथम नवाब अमीर खान बहादुर और महाराजा होल्कर दोनों के बीच बहुत मधुर सम्बन्ध थे और इतिहासकार मुंशी बसावन लाल सक्सेना ने 'अमीर नामा' की किताब में लिखा है कि 'मसीहर की विजय के बाद टोंक की बनास नदी के किनारे संगीत और नृत्य की महफ़िल का बहुत बड़ा आयोजन किया गया था और इस संगीत समारोह में प्रसिद्ध संगीतकारों एवं नृत्य करने वाले कलाकारों ने भाग लिया और इस विशाल संगीत समारोह का आयोजन किया तथा बनास नदी के दोनों किनारों पर उसे रंग-बिरंगी रोशनी से सजाया गया था।[8]

नवाब अमीर खान और महाराजा होल्कर के सैनिक भी वहाँ मौजूद थे तथा चिरागों की धीमी रोशनी बनास नदी पर फैल रही थी और फिर संगीत व नृत्य की ऐसी महफ़िल हुई की सुबह हो गई और संगीत समारोह का यह आयोजन रात भर चलता रहा। कहने का तात्पर्य यह है कि यह घटना टोंक रियासत में संगीत के इतिहास को प्रारम्भ करती है। सन् 1867 ई. में नवाब मोहम्मद अली खान को देश से निकालने के पश्चात् उनके बड़े पुत्र हाफ़िज़ मोहम्मद इब्राहिम अली खान केवल 11 वर्ष की आयु में टोंक रियासत की गद्दी पर नियुक्त हुए। प्रारम्भ में उनकी आयु कम होने के कारण रियासत का काम करने के लिए एक समिति बनाई गई थी। जब नवाब इब्राहिम अली खान वयस्क हुए तथा उनको शासन के अधिकार मिले तब रियासत टोंक में उर्दू शेरो शायरी की तरक्की ही नहीं हुई अपितु गीत और संगीत को भी प्रोत्साहन मिलने लगा। उसका मुख्य कारण यह था कि स्वयं नवाब साहब को शायरी के अतिरिक्त बचपन से ही गीत सुनने का भी बहुत शौक था। इसके अतिरिक्त उस दौर में कई देशी रियासतों में भी संगीत और नाटक का बड़ा प्रचलन हो चुका था। विशेष रूप से रियासत जयपुर में तो गुनीजन खाने के नाम से संगीत का एक विभाग स्थापित था। इसी प्रकार जयपुर के अतिरिक्त जोधपुर, धौलपुर, भरतपुर, और झालावाड़ आदि रियासतों में नाटक मण्डलियाँ स्थापित हुई। राजाओं, महाराजाओं की और से नाटकों को प्रोत्साहित किया जाने लगा था। इसी प्रकार विशेष अवसरों पर विशेष जन्म तथा शादी-विवाह और त्यौहारों के अवसरों पर गाने बजाने के समारोह आयोजित होते थे। उन समारोह में राजपूताने के रजवाड़ों के रईसों को भी आमंत्रित किया जाता था। इसका असर भी टोंक रियासत के युवा शासक नवाब इब्राहिम अली खान साहब पर पड़ा और उनके शासन काल में टोंक में संगीत और गाने आदि का प्रचलन ही प्रारम्भ नहीं हुआ अपितु नवाब इब्राहिम अली खान साहब की रुचि के कारण उसको बड़ा प्रोत्साहन भी मिला।

नवाब इब्राहिम अली के समय में सांगीतिक परिवेश

सन् 1867 ई. में नवाब इब्राहिम अली खान रियासत टोंक के शासक नियुक्त हुये। आपके समय से ही टोंक में संगीत कला को प्रोत्साहित किया गया था। नवाब इब्राहिम अली खान साहब का शासन काल लगभग 63 साल तक रहा था। अन्य नवाबों की अपेक्षा आपका शासनकाल बहुत लम्बे समय तक रहा।

नवाब इब्राहिम अली खान साहब ने सबसे पहले रियासत टोंक के दरबार में पटियाला घराने के कालू जी जिनके बेटे अली बख्श, नबी बख्श और फतेह अली खान थे इनको बुलवा कर अपने दरबार

में रखा और उनकी संगीत कला से इतने प्रभावित हुए कि उनको 'तान कप्तान' के खिताब से भी नवाज़ा। नवाब इब्राहिम अली खान साहब उनसे कभी-कभी गाना भी सुना करते थे। इस तरह गाने का नवाब साहब को इतना शौक बढ़ा कि वो उर्दू शायरी के अतिरिक्त हिन्दी में भी गीत लिखने लगे।

जिनकी लिपि उर्दू होती थी। उनके गीतों का एक संग्रह ए.पी.आर.आई. टोंक में उपलब्ध है। जिनका वर्णन आगे किया गया है उनके गीतों में वे बंदिशें 'इब्राहिम पिया' के नाम से रचने लगे थे। जैसे उदाहरणार्थ दो बंदिशें इस प्रकार प्रस्तुत है -

राग गौड़ मल्हार

स्थायी - आरे बदरवा जल बरसा रे
तृष्णा को लगी अब आसा रे
अन्तरा - इब्राहिम कृपा रब की सू
जल थल भर गये बमनिया सारे

राग शुद्ध सारंग

स्थायी -सुन्दर कंचन बरन भई
चन्द्रमुखी मृग लोचन राधे तेरे
अन्तरा - बीन बजावत अमृत जैसे
इब्राहिम आज सिंहासन राजे

उसी जमाने में टोंक में गोक़ी बाई नाम की एक प्रसिद्ध गायिका थी जो संगीत के क्षेत्र में पूरे हिन्दुस्तान में प्रसिद्ध गायिका थी। जो शादी-ब्याह के अवसरों पर विशेष रुप से गीत गाती थी। उसे शास्त्रीय संगीत पर बड़ा अधिकार प्राप्त था। नवाब इब्राहिम अली खान साहब को उसका गाना बहुत पसन्द आया था। कभी-कभी नवाब साहब गोक़ी बाई को अपने महल में बुलवा कर गाना सुनते थे।

इस प्रकार टोंक में पटियाला घराने की गायन परम्परा शुरू हुई और उस दौर में पटियाला घराने के अनेक गायक कलाकार टोंक में आकर रहे। इनके अतिरिक्त आगरा और जयपुर घराने के गायकों और वादकों को भी नवाब इब्राहिम अली खान ने टोंक में बुलाया और यहाँ टोंक में संगीत का बहुत प्रचार-प्रसार हुआ। टोंक रियासत में रियासत के चौथे शासक नवाब इब्राहिम अली खान के शासनकाल से भारतीय संगीत की परम्परा स्थापित हुई और नवाब साहब के लगभग 63 साल के शासनकाल में भारतीय संगीत की परम्परा को इतना प्रोत्साहन मिला कि नवाब खानदान के कुछ लोगों ने गायकी में दक्षता प्राप्त की। ऐसे लोगों में स्वर्गीय दाता मियाँ, स्वर्गीय माज़िद अली खाँ उर्फ मन्जू मियाँ, स्वर्गीय मम्मू मियाँ, स्वर्गीय भूरा मियाँ, प्रमुख थे। इन लोगों की उस समय में संगीत में बहुत रुचि थी।

स्वर्गीय प्रोफेसर बी.आर. देवधर ने अपने लेख 'उस्ताद अमीर खाँ' में लिखा है कि नवाब इब्राहिम अली खान बहुत अच्छे कवि थे। उनके द्वारा बनाई गई कविताओं को राग से संबंधित उनको तान-आलाप से सजाने का काम अली बख्श किया करते थे। नवाब इब्राहिम अली खां साहब की ऐसी बहुत सी रचनायें हैं जो वर्तमान में भी उन्हें विभिन्न घरानों में गाई जाती है। महाराष्ट्र में प्रसिद्ध राग मालकौंस में 'सा सुन्दर बन' इसके अन्तरे के अन्त में 'इब्राहिम माने चन्द्र' ये शब्द आते है। जो नवाब इब्राहिम अली खान साहब की बनाई हुई बंदिश है। इसी तरह राग शुद्ध सारंग की रचना 'सुन्दर कंचन का ख्याल' भी नवाब इब्राहिम अली खान साहब द्वारा ही बनाया हुआ है।

नवाब इब्राहिम अली खान साहब का संगीत से अत्यधिक प्रेम के कारण ही टोंक में देश के प्रसिद्ध गायक कलाकारों को यहाँ आमंत्रित किया गया था। नवाब साहब की संगीत कला के प्रति बढ़ती हुई रुचि के कारण यहाँ के लोगों के जीवन पर भी बहुत प्रभाव पड़ा और नवाब इब्राहिम अली खान के समय में रियासत टोंक में संगीत का शौक आम होता गया यहाँ संगीत समारोह के आयोजन किये जाते थे।

टोंक के प्रारम्भिक दौर में संगीत की महफ़िलें महलों व दरबारों तक ही सीमित थी और इसके पश्चात् साहबज़ादों की हवेलियों तक पहुँच गया। नवाब इब्राहिम अली खान के दौर में बहुत बड़े-बड़े संगीत समारोह हुआ करते थे और इन समारोह में

भाग लेने के लिये प्रसिद्ध कलाकारों को आमंत्रित किया जाता था। यही नहीं नवाब साहब के सगे संबंधी (साहबज़ादों) में संगीत कला की इतनी लोकप्रियता बढ़ी कई लोगों ने पूर्ण रुप से संगीत की शिक्षा भी प्राप्त की। नवाब इब्राहिम अली खान साहब पर सांस्कृतिक लोकप्रियता का इतना प्रभाव उत्प्रेरित हुआ कि आपने एक गुणीजन खाना स्थापित किया।

नवाब साहब के शासनकाल में संगीत कला की ही प्रगति नहीं हुई वरन् कई प्रसिद्ध कत्थक-नतृकों का भी यहाँ आगमन हुआ और संगीत के साथ-साथ नृत्य की महफिलें भी महलों में खास लोगों के लिये होती थी। परन्तु इन आगन्तुक कलाकारों के नाम प्राप्त नहीं किये जा सके।

नवाब इब्राहिम अली खान साहब होली और बरसात के समय में रंगीन वस्त्रों में हाथी पर बैठकर टोंक के पूरे बाजारों में आपकी सवारी निकलती थी। इन सवारियों में नवाब साहब के दोनों तरफ चार-चार हाथी होते थे तथा इन हाथियों पर संगीतकार व नृतकियाँ नाचते और गाते हुये चलते थे।

इस प्रकार नवाब साहब को संगीत का बहुत अच्छा ज्ञान प्राप्त था और विशेष संगीत समारोह में आप हारमोनियम तथा सारंगी भी बजाया करते थे।[2] नवाब इब्राहिम अली खान के शासनकाल में संगीत कला के प्रमुख कलाकारों में उस्ताद अली बख्श आप इतना अच्छा ख्याल व थाट लय में गाने के प्रसिद्ध उस्ताद थे आपके जैसा दूसरा कोई आपकी तुलना में नहीं था। हाँ यद्यपि आपकी तुलना में गायकी में कोई था तो वो सिर्फ फतेह अली खान साहब थे ये भी सिर्फ तानों की लयकारी में थे जो तानों को बहुत अच्छे तरीके से प्रदर्शित करते थे। उस्ताद अली बख्श खाँ का गायन नवाब इब्राहिम अली खान साहब को बहुत प्रसन्नचित्त कर देता था। क्योंकि अली बख्श व फतेह अली खाँ का नाम संगीत गायन में पूरे हिन्दुस्तान में प्रसिद्ध था। आपने हिन्दुस्तान की प्रसिद्ध गायिका गोक़ी बाई से संगीत की शिक्षा प्राप्त की और आप तानरस खान के भी शिष्य रह चुके थे।

नवाब इब्राहिम अली खाँ के शासन में ख़िताब की अन्तः कथा

नवाब इब्राहिम अली खान आपके गाने से बहुत प्रभावित हुये और आपको 'जनरल गायकाने वक्त' का खिताब देना चाहते थे। नवाब साहब ने अपने दरबार में यह ऐलान कराया कि किसी को कोई ऐतराज नहीं हो तो अली बख्श से मुकाबले के लिये आये अली बख्श से कोई मुकाबला करने नहीं पहुँचा और खिताब देने की तारीख निश्चित हुई और जिस दिन खिताब दिये जाने लगा ठीक उसी समय एक शहर से सारंगी वादक उस्ताद मिर्च खान टोंक आये और नवाब इब्राहिम अली खान साहब से मिले और कहा कि महाराज आपको पूरा अधिकार है आप जिसे चाहें उसे यह खिताब दें सकते हैं परन्तु मेरी एक छोटी सी ख्वाहिश है कि यह खिताब अली बख्श को तब दिया जाये जब अली बख्श मेरे साथ गायें और मैं सारंगी बजाऊ।

यद्यपि मैं इनकी संगत करने में असफल रहूं तो यह खिताब ही नहीं बल्कि एक-एक सैर के मेरे हाथों में पहने ये लौहे के कड़े जिसे कोई गायक आज तक मुझसे नहीं उतरवा सका। यदि अली बख्श के संगीत ने मुझे शिकस्त दी और उसने मेरे ये कड़े उतरवा दिये तो मैं इन्हें खिताब का सही हकदार समझूंगा और नवाब इब्राहिम अली खान साहब ने इस संगीत समारोह का आयोजन कराया जिसमें कई प्रसिद्ध कलाकारों को इस समारोह में आमंत्रित किया गया था। उस्ताद अली बख्श साहब ने नवाब सहाब से कहा कि महाराज आप इनके हाथ के कड़े उतरवा दीजिये परन्तु मिर्च खाँ ने कड़े उतारने से मना कर दिया और नवाब साहब ने मेहमान कलाकार मिर्च खाँ की बात मानी और नज़र बाग में चबूतरे वाली कोठी टोंक में यह संगीत समारोह का आयोजन किया गया था।

संगीत समारोह की शुरुआत में उस्ताद अली बख्श ने सर्वप्रथम यमन, शुद्ध कल्याण एवं भीम पलासी आदि रागों को प्रस्तुत किया। रात्रि 10 बजे से इस संगीत समारोह का आयोजन हुआ और इसमें

सभी दरबारी लोग नवाब साहब के संबंधी आदि सभी मौजूद थे। अली बख्श जो तान या मुरकी जिस जगह से लेना शुरु करते तो मिर्च खाँ पहले से ही वही तान सारंगी में बजाना शुरु कर देते थे।

उस्ताद मिर्च खान ने ऐसी कोई सी तान नहीं छोड़ी जिसे वह अली बख्श के गाने से पहले ही उसे बजा देते थे। रात्रि 2 बजे नवाब इब्राहिम अली खान ने कहा कि 'आलिया कोई राग विभास भी तो होती है' और अली बख्श ने हाँ कहा और मारवा थाट से विभास राग को शुरु किया। अली बख्श के साथ तबला वादक करम बख्श थे। इसी प्रकार इन दोनों संगीतज्ञ कलाकारों का निर्णायक जयपुर के सितारवादक उस्ताद अब्दुल हफिज़ खाँ को बनाया गया था।

उस्ताद अली बख्श ने राग विभास प्रस्तुत किये आधा घण्टा ही हुआ कि अब्दुल हफीज़ खाँ जयपुरी जो जज बने थे। हाथ बांधे खड़े हो गये और कहा कि अली बख्श जैसे गवैये व तानों की सुन्दर प्रस्तुति वहीं उस्ताद मिर्च खाँ ने धैवत को सारंगी पर साफ तौर पर बताया। ये दोनों कलाकार अपनी-अपनी जगह महारथी हैं। उस्ताद मिर्च खाँ नवाब साहब के कुछ कहने से पहले ही बोल उठे कि महाराज 'मैं अपने दोनों हाथों के कडे उतार रहा हूँ।[6]

सीधे हाथ का कड़ा अली बख्श को और दूसरे हाथ का कड़ा सितारवादक अब्दुल हफीज़ खाँ को जो जज है उनको भेंट करना चाहूंगा क्यों कि ऐसी सच्ची संगीत की संगत को सुनना भी किसी ऐसे वैसे के बस की बात नहीं है और महाराज आप अपने दरबारी गवैये अली बख्श को यह खिताब प्रदान करें इसके असली हकदार उस्ताद अली बख्श ही हैं।

'उस्ताद मिर्च खान अपने कड़े उतारकर बैठ गए तभी अली बख्श ने नवाब साहब से कहा महाराज मैं जवान हूँ और उस्ताद मिर्च खान वृद्ध हो चुके हैं यद्यपि देखा जाये तो मिर्च खान ही जीते हुये हैं। परन्तु इतनी सी बात पर अपनी हार मानना इनका बड़प्पन है। क्योंकि जो तान या जो मुरकी मैं लेना चाहता उस्ताद मिर्च खान पहले से ही उसे बजा देते थे। परन्तु नवाब साहब के जजों ने अली बख्श को जीता हुआ बताया और फिर नवाब साहब ने अली बख्श को 'जनरल गायकाने वक्त' का खिताब प्रदान किया।[7]

नवाब इब्राहिम अली खाँ को संगीत से ही नहीं बल्कि शायरी से भी बहुत लगाव था। आपका उपनाम 'खलील' था।

आपके शासन काल में बहुत प्रसिद्ध शायर हुआ करते थे जो उर्दू में शायरी किया करते थे। यही नहीं नवाब साहब स्वयं भी उर्दू में शेरो-शायरी लिखा करते थे। आपके शासनकाल में स्वर्गीय बिस्मिल खैराबादी, स्वर्गीय उस्ताद ज़हीर देहलवी, स्वर्गीय मुश्तर खैराबादी, स्वर्गीय नवाब सुलेमान खाँ आप लखनऊ के मुख्य शायर थे। इनके अतिरिक्त स्वर्गीय साहबज़ादा अहमद अली खाँ रोनक, स्वर्गीय नवाब मौलवी सिद्धीक हसन साहब और स्वर्गीय देहलवी आदि प्रमुख कलाकार थे। नवाब साहब के भाईयों में स्वर्गीय साहबज़ादा मोहम्मद इस्हाक खाँ, स्वर्गीय साहबज़ादा अब्दुल बहाव खान तथा स्वर्गीय अब्दुल रहिम खान भी विद्वान थे।

अन्त में उस दौर के सबसे प्रसिद्ध व्यक्ति स्वर्गीय मेहमूद शिरानी साहब जो उर्दू, फ़ारसी व अरबी के प्रसिद्ध विद्वान थे आपका नाम पूरे हिन्दुस्तान में प्रसिद्ध था। इनके अतिरिक्त आप अंग्रेजी भाषा के भी पूर्ण रुप से विद्वान थे। आपको कई विषयों का ज्ञान प्राप्त था। आप लाहौर से रिटायर के बाद टोंक आये और यहीं आपका देहान्त हुआ। आपके पुत्र स्वर्गीय अख्तर शिरानी साहब जिनका शायरी में पूरे हिन्दुस्तान में आपका नाम प्रसिद्ध था।

इनके अतिरिक्त नवाब इब्राहिम अली खान के शासनकाल में उर्दू शायरी के स्वर्गीय उस्ताद आबरु ज़ाम साहब स्वर्गीय उस्ताद सौलत साहब, स्वर्गीय असद लखनवी, स्वर्गीय उस्ताद शफीक अहमद, स्वर्गीय रज़ा साहब, स्वर्गीय बज़्मी साहब आदि कलाकार थे उस दौर में मुस्लिम लोग ही नहीं वरन् हिन्दु समाज के लोगों में भी उर्दू शायरी के विद्वान शायर होते थे जिनमें स्वर्गीय डॉ. मनसुख दास जी, स्वर्गीय गिरधरदास जी बोहरा, स्वर्गीय डॉ. श्याम

लाल जी, स्वर्गीय डॉ. रामनिवास जी जो एक लेखक भी थे, और स्वर्गीय जगदीश बोहरा आदि कलाकार नवाब साहब के समय में प्रसिद्ध उर्दू के शायर थे और उर्दू में शायरी किया करते थे।

नवाब इब्राहिम अली के समय में स्वर्गीय उस्ताद असग़र अली साहब जिन्होंने 'हदीक़ऐ-राजस्थान' के नाम से 'तारीख़े टोंक' यह पुस्तक लिखी जो सन् 1901 ई. में प्रकाशित हुई।

इस पुस्तक में 'बज्में खलील' के नाम पर एक परिशिष्ठ अंकित है जिसमें एक मुशायरे का वर्णन किया गया है। जिसमें टोंक के 85 शायरों ने एक साथ शेरो-शायरी का कार्यक्रम प्रस्तुत किया। इसमें स्वर्गीय पंडित रामकरण जोशी भी थे जो उर्दू और फ़ारसी के शेर कहते थे। और आपकी पुस्तक 'तारीख परगनात टोंक' आपने ही लिखी थी।[4]

श्री चोबे ने अपनी पुस्तक राजस्थान संगीतकार में आलिया फत्तु का समय 1800 ई. के लगभग बताया है तथा आलिया फत्तु का समय निश्चित ही 25-30 वर्ष के बाद का होना चाहिये तथा इन दोनों का जन्म सन् 1850 ई. ही लिखा है। ये दोनों आलिया फत्तु एवं फतेह अली बहुत समय तक टोंक दरबार में नियुक्त रहे। अतः पंजाब घराने के कुछ गायक कलाकारों का परिचय दिया गया है कि ये कलाकार आलिया फत्तु के पंजाब जाने से पूर्व की पंजाब-परम्परा के प्रतिनिधि हैं। जिनमें पंजाब के स्वर्गीय रसूल बैग तथा इनके पुत्र स्वर्गीय गुलाब रसूल महाराजा मानसिंह के समय सन् 1803 से 1834 ई. तक नियुक्त थे। इसका तात्पर्य यह है कि यहाँ अली बख्श व फतेह अली खान का समय काल बताया गया है।[5]

'नवाब इब्राहिम अली खान के शासनकाल में उस्ताद अली बख्श के साथ तबला वादक उस्ताद करम बख्श थे। आप तबले पर 'गुटर गूँ गुटर गूँ' की ऐसी आवाज़ निकालते थे कि पास बैठे कबूतर भी नीचे आ जाते थे।[6] आपका संगीत सुनने साहबज़ादा दाता मियाँ की हवेली टोंक में संगीत के कलाकारों की दिन-रात भीड़ लगी रहती थी। यहाँ संगीतज्ञों का आयोजन होता रहता था।

प्रसिद्ध शायर उस्ताद स्वर्गीय भाईजान 'आशिक', साहबज़ादा स्वर्गीय अशरफ़ खान, साहबज़ादा स्वर्गीय शरीफ़ खान आदि अच्छे कलाकार थे। इसी प्रकार साहबज़ादा स्वर्गीय अब्दुल साहब, दादरा, ठुमरी ओर ख्याल आदि लिखते थे और स्वर्गीय अब्दुल वाहिद खाँ साहब हिन्दी राग-रागनियों में बहुत सुन्दर ठुमरियाँ बनाते थे। आप नृत्य कला और ठुमरी की बंदिशों में बहुत अच्छा प्रदर्शन भी किया करते थे।

अब्दुल वाहिद खाँ नवाब इब्राहिम अली खान के पुत्र थे और सन् 1952 ई. में आपका देहान्त हो गया था।

इसी प्रकार ज़ाम साहब भी गायन व वादन के उच्च कोटि के कलाकार थे और प्रसिद्ध शायर भी थे। आपका उपनाम 'ज़ाम' साहब था। आप दादरा ठुमरी के साथ-साथ नाटक आदि भी लिखते थे और उन्हें स्टेज पर प्रस्तुत किया करते थे। ज़ाम साहब नाटक कम्पनी के निर्देशक व इन्चार्ज भी थे। आप नवाब इब्राहिम अली खान साहब के समय में ही मौजूद थे। नाटकों की प्रस्तुति का आयोजन नवाब इब्राहिम अली के दौर से ही स्थापित हो चुका था। नवाब साहब के शासनकाल में शास्त्रीय संगीत की ही नहीं यद्यपि नाट्यकला को भी बहुत प्रोत्साहन मिला नवाब साहब हिन्दी में राग-रागनियाँ व ठुमरियाँ आदि लिखा करते थे। और साहबज़ादों में साहबज़ादा स्वर्गीय इमदाद अली खान 'नजर' भी गज़ल, ठुमरी, स्थायी व सेहरे, गीत व नाटक आदि लिखने में निपुण थे।

टोंक में स्थित एक मकान हुआ करता था जिसे 'नोशे मियाँ का पुल' के नाम से जानते हैं। यहाँ एक 'खजुर वाली हवेली' स्थित थी जिसमें नाटकों के रिहर्सल होते थे और नवाब साहब एवं उनके परिवार के लोग नाटक देखने जाया करते थे और नाटक के लिये विशेष कलाकारों को जयपुर और अन्य बड़े व दूसरे शहरों से नाटक कम्पनियाँ आमंत्रित की जाती थी। इसके बाद राज थियेटर में नाटकों का मंचन हुआ करता था। वर्तमान में वह आज राज सिनेमा के नाम से टोंक में स्थित है।[7]

नवाब इब्राहिम अली खाँ के दौर में परम्परागत अनुसार चार दरबार हुआ करते थे। एक तो इदुलजुहा (ईद), इदुलफितर (ईद), तीसरा स्टेट कायम होने पर और चौथ नवाब साहब की सालगिरह (जन्मदिन) पर ये चारों दरबार हुआ करते थे। इसमें नवाब साहब को 'नज़रे पेश' की जाती थी। एक-एक व्यक्ति खड़े होकर नवाब साहब को बड़ी इज्ज़त से सलाम करते थे और इन दरबारों में संगीत व नृत्य का आयोजन किया जाता था। तथा हर दरबार पर बैण्ड बाजा मौजूद रहता था और समय-समय पर बजता रहता था। नवाब साहब की सालगिरह पर प्रसिद्ध गायक, वादक कलाकारों को आमंत्रित किया जाता था और यही नहीं वरन् नृत्यकार भी इस समय अपना नाच-गाना प्रस्तुत करते थे। इन अवसरों पर अच्छे व गुणी लोगों को ईनाम एवं उपाधियाँ भी दी जाती थी और कई प्रकार की प्रतियोगिताएं भी हुआ करती थी।[8]

नवाब इब्राहिम अली खान के शासनकाल में टोंक के गुणीजन खाना जिसमें संगीत समारोह हुआ करते थे और यहाँ प्रसिद्ध गायक एवं वादक कलाकारों का आगमन हुआ। टोंक में पटियाला घराने के गायक ही नहीं यद्यपि आगरा और जयपुर घराने के गायकों को भी नवाब इब्राहिम अली खान ने टोंक में आमंत्रित किया और टोंक में गायकी का रिवाज़ इतना बढ़ा कि यहाँ के कलाकारों ने राजस्थान बनने के पश्चात दूरदर्शन और आकाशवाणी के केन्द्रों में अपनी कला प्रदर्शित करने लगे। इन्होंने गायकी के साथ-साथ तबला वादन एवं सारंगी वादन में भी अपना-अपना स्थान बनाया। मोहम्मद अमीर खान साहब जैसे कलाकार का टोंक में जन्म हुआ।

उस्ताद अमीर खान साहब की कला पर राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर में पारुल बोहरा ने अपना शोध ग्रन्थ प्रस्तुत कर सन् 2008 में पीएच.डी. की डिग्री प्राप्त की। उनके ग्रन्थ का विषय है 'मोहम्मद अमीर खान साहब की भारतीय संगीत को देन'।

उस्ताद अमीर मोहम्मद खां साहब के दादा के दादा का नाम बाजे खां था। आपका जन्म मेवात में हुआ था। ओर फिर आप बाद में टोंक आ गए थे। स्वर्गीय बाजे खां साहब बहुत अच्छे गायक ही नहीं बल्कि एक उच्च कोटि के सारंगी वादक भी थे। आप नवाब इब्राहिम अली खां साहब के दरबार में कर्मचारी थे। आप नवाब साहब की सालगिरह आदि के सुअवसर पर खूब गाते-बजाते थे और खुशियाँ मनाते थे और नवाब साहब भी आपके संगीत से बहुत प्रभावित होते थे। उस्ताद अमीर खाँ साहब के परदादा जिनका नाम स्वर्गीय शेहज़ाद खाँ था आप एक उच्च कोटि के तबला वादक व गायक थे और नवाब इब्राहिम अली खाँ साहब के समय में टोंक गुणीजन खाने में तबला बजाया करते थे।

इसी तरह स्वर्गीय दौलत खाँ साहब भी उच्च कोटि के तबला वादक थे। आप शेहज़ाद खां के ज्येष्ठ पुत्र व अमीर खां साहब के दादा के बड़े भाई थे। आप भी टोंक गुणीजन खाने में तबले की संगति किया करते थे। इसी प्रकार स्वर्गीय मोलाबख्श खान आप उस्ताद अमीर खान साहब के दादाजी थे ओर नवाब साहब के समय में उच्च कोटि के सारंगी वादक थे। इनके अतिरिक्त स्वर्गीय उस्ताद गुलाम मोहम्मद खान जो कि उस्ताद अमीर खां के पिता थे ओर आप भी एक उच्च कोटि के तबला वादक थे।[9] उस्ताद अमीर खां साहब के परदादा स्वर्गीय बाजे खां नानाजी स्वर्गीय हुरमत खान व दादाजी स्वर्गीय मोलाबख्श खां आप सभी बहुत अच्छे सारंगी वादक थे और आपके पिता उस्ताद गुलाम मोहम्मद खां रियासत टोंक के दरबार में तबला वादक के पद पर नियुक्त थे। जबकि इन संगीत कलाकारों की उस समय आमदनी बहुत कम हुआ करती थी परन्तु उस समय के लोग नवाबो व राजा-महाराजाओं के दरबार में नौकरी करना बहुत बड़ी बात समझते थे।

इनके अतिरिक्त नवाब इब्राहिम अली खान के दरबार में पटियाला घराने के उस्ताद स्वर्गीय बाकर अली खान साहब भी एक प्रसिद्ध गायक कलाकार थे ओर आप नवाब साहब के दरबार में संगीत सुनाया करते थे आप पटियाला घराने के उत्तराधिकारी व स्वर्गीय अहमद जान खां के बेटे थे। आप काफी समय तक टोंक दरबार में नियुक्त थे परन्तु नवाब साहब के देहान्त के पश्चात टोंक का गुनीजन खाना

बिखर गया ओर संगीत के आयोजन भी कम होते गये। इसी कारण बाकर अली खान भी टोंक छोड़कर मिलेर कोटला पंजाब चले गये। इसी प्रकार स्वर्गीय अब्दुल कादर खां आप भी एक प्रसिद्ध गायक कलाकार थे और नवाब साहब के दरबार में संगीतज्ञ के पद पर आसीन थे। उस्ताद अब्दुल कादर खान साहब की शादी उस समय टोंक में ही होने के कारण ये यहीं स्थित हो गये। उस्ताद अब्दुल कादर खान आगरा घराने के व स्वर्गीय फैयाज़ खान साहब के शिष्य थे।[10]

नवाब सआदत अली के समय में सांगीतिक परिवेश

राजस्थान के नाटक कर्मियों को हमें विस्तार रुप से समझने के लिये पहले हम इनका संक्षिप्त रुप वर्णित कर रहे हैं। प्रथम भाग में सबसे पहले स्वर्गीय लक्षमणदास जी डांगी थे, जिसमें स्वर्गीय मास्टर तुलसी दास जी, स्वर्गीय मास्टर रुपा जी, स्वर्गीय मास्टर राणीदान जी, स्वर्गीय मास्टर चतुर्भुज आदि इन कलाकारों की अहम भूमिकाएं थी। द्वितीय भाग में नाटकों के कलाकारों के क्रम में स्वर्गीय प्रेमसुख जी व्यास थे। तश्तीय भाग में स्वर्गीय माणिकलाल जी डांगी का दौर था। तथा इनके नाटकों में स्वर्गीय मास्टर निसार साहब के अतिरिक्त नाटक से जुड़े सैंकड़ों प्रसिद्ध कलाकार थे। चौथे भाग में स्वर्गीय गणपतलाल जी डांगी का दौर था। आप प्रतिभा सम्पन्न बहुमुखी व प्रसिद्ध कलाकार थे और पाँचवे भाग में स्वर्गीय कन्हैयालाल जी पंवार का दौर था।

जिसमें बहुत सी अभिनेत्रियाँ भी थी जिनमें स्वर्गीय रानी उर्वशी, स्वर्गीय सुशीला, स्वर्गीय मीरा, स्वर्गीय शील एवं स्वर्गीय रामदुलारी आदि उस समय की प्रसिद्ध अभिनेत्रियाँ थी। जिन्होंने नाटकों में अपनी भूमिका निभाई। स्वर्गीय कन्हैयालाल जी पंवार राजस्थानी पारसी व हिन्दी नाटकों के एक सफल निर्देशक थे और स्वर्गीय शुभकरण जालान इनकी नाटक कम्पनी के मालिक थे। इन्होंने पंवार, नरसी और मिनर्वा नाटक कम्पनियों के अतिरिक्त छोटी-बड़ी सभी प्रकार की नाटक कम्पनियाँ स्थापित की। आपने ही राजस्थानी नाटक को सर्वप्रथम मंच पर प्रस्तुत किया और आपकी नाटक कम्पनी का 'अप्सरा' नामक नाटक प्रकाशित हुआ। राजस्थान के पारसी-हिन्दी नाटकों के कलाकारों के योगदान से पूर्व कुछ तथ्यों को उजागर किया गया है कि पश्चिमी तकनीक के द्वारा खेले जाने वाले नाटकों में पहला नाटक 'इन्द्रसभा' था।

सन् 1853 ई. में लखनऊ के केसर बाग में स्वर्गीय मुन्शी अमानत द्वारा लिखा यह नाटक मंच पर प्रस्तुत किया गया था। जब यह नाटक प्रसिद्ध हुआ तो इसे देखकर देश में अनेक नाटक कम्पनियाँ स्थापित हुई, ना जाने ये नाटक कम्पनियाँ कितनी बार बनी ओर टूटी ओर फिर से उभर कर सामने आई जिनमें ऐसे नाटकों के लिये कलकत्ता व बम्बई आदि नाटकों के केन्द्र स्थल बन गये और ये नाटक कम्पनियों के गढ़ कहलाये गये। राजस्थान में सर्वप्रथम बरेली के जमादार साहब की थिएट्रिकल कम्पनी स्थापित हुई थी और इस नाटक कम्पनी के अनुसरण में कवि, लेखक, लोक कलाकार व निर्देशक स्वर्गीय लक्ष्मण दास जी डांगी ने सन् 1956 ई. में 'मारवाड़ नाटक कम्पनी' की स्थापना की थी।

इस नाटक कम्पनी में 'जानकी स्वयंवर' 'हरिशचन्द्र' 'द्रौपदी स्वयंवरश, 'पूरण भगतःश, आदि नाटक मंच पर प्रस्तुत किये गये थे। और इस नाटक कम्पनी में 75 गायक कलाकारों को शरण दी हुई थी। इस नाटक कम्पनी ने जयपुर में भी बहुत से नाटकों को मंच पर प्रस्तुत किया था। तथा अन्य शहरों के अतिरिक्त इस कम्पनी ने लखनऊ के नवाब शीश महल के यहाँ कच्चा थिएटर बनवाकर उसमें कुछ नाटकों को दिखाया। ये नाटक इतने प्रसिद्ध हुये कि दूसरी नाटक कम्पनियों के मालिकों को भी इस दिशा में नाटकों के प्रति बहुत उत्साहित हुये। बीकानेर राज्य में चार वर्ष पश्चात् स्वर्गीय प्रेम सुख जी व्यास ने 'जे.सी. नाटक कम्पनी' जोधपुर बीकानेर के नाम द्वारा स्थापित की थी। इस नाटक कम्पनी का पहला नाटक 'हरिशचन्द' था जिसे 'बीकानेर के कोट गेट' के अन्दर झलाय वालों की कोठड़ी में कच्चा थिएटर बनाकर इस नाटक की

प्रस्तुति की गई थी। इस नाटक कम्पनी के मालिक प्रेम सुख जी व्यास निर्देशक ही नहीं वरन् बहुत अच्छे लेखक भी थे।

इस नाटक कम्पनी ने बीकानेर व जोधपुर के अतिरिक्त पटना, बम्बई, भागलपुर व दिल्ली इन स्थानों में भी अपने नाटकों को प्रस्तुत किया था। व्यास जी के प्रस्तुत किये गये नाटकों को बीकानेर के लालगढ़ किले में महाराज गंगासिंह जी ने भी देखे और उनकी बहुत प्रशंसा की थी।

नाटकों को रंगमंच के स्तर तक पहुँचाने में लक्ष्मणदास जी डांगी और प्रेमसुख जी व्यास इन दोनों की सर्वप्रथम भूमिका रही। इन दोनों ने बहुत अच्छे-अच्छे नाटकों की स्थापना की थी। और इन्होंने इन नाटकों के माध्यम से देशवासियों का ध्यान आकर्षित किया जिनमें गीत, संगीत, नृत्य-नाट्य व राजस्थानी भाषा सभी होते थे। इनके कारण भी लोगों में नाटकों के प्रति रुझान बढ़ा। बीकानेर, भरतपुर, जोधपुर, झालावाड़, जयपुर ने ही नहीं बल्कि टोंक के नवाब ने भी पारसी-हिन्दी रंगमंच में राजस्थान के कलाकारों के योगदान को स्वीकार किया था। न्यू अल्फ्रेड व खटाऊ अल्फ्रेड नाटक कम्पनियाँ भी जयपुर में आई। यही नहीं जोधपुर, बीकानेर, समदड़ी आदि राज्यों के आस-पास के गाँव जिनमें फलौदी, शेखाला, गूदोंच, खोड़, मतोड़ा आदि गाँवों के प्रसिद्ध गायक भी इस रंगमंच के लिये अच्छे कलाकार रहे।

- राजस्थान के लोक कलाकारों का संगीत देश की सभी नाटक कम्पनियों में प्रचलित था।
- स्वर्गीय माणिकलाल डांगी ने सन् 1933 ई. में पंजाब के स्वर्गीय मुलकराज और स्वर्गीय मदनपुरी के मार्गदर्शन से 'हेवलिंग डांस पार्टी' स्थापित की थी। इन्होंने सन् 1936 से 1962 ई. तक कई नाटकों का प्रदर्शन किया और नई नाटक कम्पनियाँ भी खोली थी।
- इसी प्रकार स्वर्गीय गणपतलाल जी डांगी ने सन् 1942 ई. में 'दिवार एफर्ट थिएट्रिकल कम्पनी' की प्रस्तुति अजमेर में की गई और इस कम्पनी को स्थापित करने में आपने बहुत परिश्रम किया।
- माणिकलाल जी डांगी ने अपने 'शाहजहाँ थिएटर कम्पनी' और 'कोरोनेशन कम्पनी' स्थापित की ये बहुत प्रसिद्ध कम्पनियाँ थीं जिनका संचालन कई वर्षों तक कायम रहा।
- माणिकलाल जी नाटकों को मंच पर प्रस्तुति के लिये देशभर में भ्रमण किया करते थे और आपके पास बहुत प्रसिद्ध कलाकारों का एक संग्राहलय था।
- कलकत्ता में राजस्थानी भाषा का प्रथम नाटक 'रामू चनणा' जिसे स्वर्गीय भरत व्यास द्वारा लिखा गया था। अल्फेड थियेटर कम्पनी ने इस नाटक को प्रदर्शित किया। इसके बाद स्वर्गीय कन्हैयालाल जी पंवार जो राजस्थानी नाटकों में अहम भूमिका निभाया करते थे। जिनमें 'बिनणी जोरा मर दी आई' 'कुंवारो सासरोश, चून्दड़ी आदि नाटकों को भी प्रस्तुत किया गया था।[11]

राजस्थान में पारसी लोक मंच की कला शैली को प्रायः सभी राजा-महाराजा और नवाबों ने स्वीकार किया और यहाँ पर पारसी रंगमंच की कम्पनियों को आमंत्रित किया गया और इन नाट्य प्रस्तुतियों के कारण जनता का ध्यान इस और तेजी से बढ़ने के पश्चात् देश के कई गाँवों व शहरों में रंगमंच बनाकर नाटक खेलने की परम्परा स्थापित हुई।

उस समय हिन्दी भाषा का इतना प्रचलन नहीं था और उर्दू भाषा में नाटकों ने श्रोताओं को बहुत आकर्षित किया और इन नाटकों में शेरों-शायरी भी हुआ करती थी जिनमें दर्शकों के मन को मोह लिया जाता था। इसी प्रकार जयपुर, भरतपुर, बीकानेर, धौलपुर, झालावाड़ व जोधपुर कोटा और बूँदी के नरेशों ने ही नहीं वरन् टोंक के नवाब ने भी पारसी कला शैली को सुरक्षित रखने में अग्रणीय रहे। नाटकों के लेखक और शायर स्वयं रंगमंच के स्वरुप से भलीभांति परिपूर्ण थे। इसी कारण उनके नाटक प्रशंसा रहित होते थे। सन् 1879 से 1885 तक का यह समय उर्दू नाटकों को बहुत पसंद किया जाता था। यहाँ तक कि जयपुर के महाराजा रामसिंह

द्वितीय ने अपने शासनकाल में सन् 1835 से 1880 ई. में एक नाटकघर बनवाया था जो वर्तमान में भी रामप्रकाश टाकीज के नाम से प्रसिद्ध है। इन नाटकघरों में प्रायः सामाजिक स्वरुप के मंच प्रस्तुत किये जाते थे। इनमें प्रायः रामायण और रामलीला पर आधारित नाटक खेले जाते थे। इससे पहले भी जयपुर में नाटक की परम्परा कायम थी और उसके अनुरुप नाटकों की प्रस्तुति का प्रचलन था।[12] तथा राजस्थान के विभिन्न राजा-महाराजाओं की तरह टोंक रियासत के नवाब इब्राहिम अली खान साहब का सन् (1929 से 1930) का वह समय था जिसमें नवाब साहब को नाटक देखने का बहुत शौक था। भरतपुर के स्वर्गीय लाला सूरजभान के रजिस्टर से हमें टोंक के नाटकों की गतिविधियाँ प्राप्त होती हैं। सन् 1928 ई. को जब भरतपुर के महाराज किशन सिंह को निर्वासित किया गया तो उनके सानिध्य में नाटक मण्डली के मंच हुआ करते थे वह भी समाप्त हो गये फिर इस नाटक मण्डली का सारा सामान कुछ नीलाम कर दिया और कुछ सामान स्वर्गीय सूरजभान ने खरीद लिया था। और इस नाटक मण्डली को सूरजभान ने टोंक में 'भरतपुर ड्रामेटिक सोसायटी' के नाम से स्थापित किया। इस नाटक मण्डली के पीछे जयपुर सांगानेरी गेट पर स्थित जयपुर इम्पीरियल होटल के मालिक स्वर्गीय मदन गोपाल जी की प्रेरणा थी और सन् 1928 से 1929 ई. अगस्त से दिसम्बर तक यह मण्डली टोंक में स्थित थी और फिर सूरजभान ने इस नाटक मण्डली का सारा सामान टोंक के स्वर्गीय बशीर खाँ को बेचकर वापस भरतपुर लौट गये। टोंक की इस 'भरतपुर ड्रामेटिक सोसायटी' ने देश के कई क्षेत्रों में नाटकों का मंचन किया था। इस नाटक मण्डली के कलाकारों में स्वर्गीय अब्बास मोहम्मद, स्वर्गीय बुद्धा नाई, स्वर्गीय अब्दुल हाज़ी साहब, स्वर्गीय हुसैन अहमद अब्दुल, स्वर्गीय कादिर खाँ, स्वर्गीय अमीनुद्दीन, स्वर्गीय बाबू अब्दुल हमीद मिस्त्री, स्वर्गीय अहमद अली साहब, स्वर्गीय बजरंग अहमद अली साहब, स्वर्गीय अब्दुल्ला खाँ, स्वर्गीय अब्बास अली, स्वर्गीय अहमद रज़ा खाँ, स्वर्गीय अकबर व किशन बाबू आदि कलाकार थे।

ज़ाम साहब द्वारा लिखा पहला नाटक जिसका नाम 'हरदिल अजीज़' था और 'भरतपुर ड्रामेटिक सोसायटी' मण्डली के पश्चात टोंक में अजमेर की नाटक मण्डली जिसके निर्देशक स्वर्गीय कल्लू बादशाह थे। इस नाटक मण्डली में 'खूबसूरत बला' चन्द्रा बकावली, लैला मजनूं, शीरी फरहांद, देहली दरवार, गुलरु ज़रीना आदि इन नाटकों को टोंक में मंच पर प्रस्तुत किये जाते थे।

नाट्य कला की प्रस्तुति का दौर नवाब इब्राहिम अली खान के दौर में ही प्रारम्भ हो चुका था। फिर उनके पुत्र नवाब सआदत अली खान के शासनकाल में नाट्य कला का दौर बहुत तेजी से बढ़ा और सन् 1930 से 1946 ई. तक टोंक में विभिन्न स्थानों से नाटक मण्डलियाँ आई थी। और अपना खेल दिखाकर चली जाती थी। नवाब सआदत अली खाँ के संरक्षण से पूर्व भी यहाँ बहुत सी नाटक मण्डलियाँ आया करती थी।

इसी प्रकार टोंक में पारसी जुब्ली थिएट्रिकल कम्पनी भी यहाँ आई थी जिसके मालिक प्रसिद्ध पारसी नाटक प्रेमी व अभिनेता स्वर्गीय नाज़रजी थे। नाज़र जी यहाँ टोंक में बहुत समय तक रहे और आप टोंक में बिमार होने के पश्चात् यहीं देहान्त हो गया फिर इन्हें जयपुर की पारसी आरामगाह में दफ़न कर दिया। इसके पश्चात् प्रसिद्ध नाटक मण्डली 'अलेक्जेंड्रिया ड्रामा कम्पनी' भी टोंक में आई थी।

यह नाटक मण्डलियाँ टोंक में नवाब साहब की सालगिरह पर व अन्य अवसरों पर आया करती थी और अपना नाटक दिखाकर चली जाती थी। नवाब सआदत अली खान साहब को काव्य एवं नाट्य कला से बहुत प्रेम था।

इसी प्रेम के द्वारा झालावाड़ के स्वर्गीय महाराजा भवानी सिंह और रामपुर के नवाब साहब से आपकी बहुत घनिष्ठता थी उनकी नाटक मण्डली में स्वर्गीय कादर बख्श इसके निर्देशक व स्वर्गीय अब्दुल जब्बार खान मैनेजर थे। इनके अतिरिक्त अन्य कलाकारों में स्वर्गीय फजलुद्दीन (नायक) व स्वर्गीय गुलाम रसुल (वादक) थे और हास्य कलाकारों में स्वर्गीय हुसैन उद्दीक फ्रौक, स्वर्गीय कमरुद्दीन, स्वर्गीय

मोहम्मद रमजान, स्वर्गीय हुसैन बख्श, स्वर्गीय इस्माईल साहब स्वर्गीय नत्थू जी, स्वर्गीय ओमप्रकाश जी, स्वर्गीय माणीलाल व स्वर्गीय मोहम्मद हुसैन आदि कलाकार थे। नवाब सआदत अली खान के दौर में नाटक मण्डलियों में पुरुष कलाकार ही नहीं वरन् महिला कलाकार भी हुआ करती थी जिनमें स्वर्गीय नन्हीं बाई, स्वर्गीय बिब्बो बाई, स्वर्गीय अशरफी बाई, स्वर्गीय नूरी, स्वर्गीय मैहरुनिशा, स्वर्गीय मुमताज व स्वर्गीय कल्लो बाई आदि प्रसिद्ध कलाकार भी मौजूद थी। उस समय नाटक मण्डली में स्वर्गीय हयात् नामक एक सुन्दर लड़का था जो स्त्रियों के पात्र निभाया करता था। नवाब साहब के शासन काल में नाटक मण्डली का रंगमंच वर्तमान राज टाकीज हुआ करता था जिसके प्रमुख नाटककार 'मोहम्मद उमर जाम' साहब थे। इन्होंने नाटक मण्डली में 37 नाटक लिखे थे और ठुमरियाँ, ग़जलें आदि भी लिखा करते थे और जयपुर के स्वर्गीय पंडित अमरनाथ अटल ज़ाम साहब के बहुत करीबी दोस्त थे।[13]

नवाब इब्राहिम अली खान की मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र सन् 1930 ई. में नवाब सआदत अली खाँ टोंक रियासत के शासक नियुक्त हुये। नवाब सआदत अली खान आपको भी शायरी के अतिरिक्त गाने आदि का भी बहुत शोक था तथा नाटक का भी बड़ा शौक था उन्होंने एक नाटक मण्डली भी बनायी थी। आपके शौक के कारण ही टोंक में एक नाटक घर भी बनाया गया था। जहाँ नाटकों का मंचन नाच गाने के साथ होता था। नाटक के शौक ने भी टोंक में भारतीय संगीत को बढ़ावा दिया। यहाँ बसन्त, होली, बहार आदि रागों के गीतों के अतिरिक्त शादी ब्याह के अवसर भी गाने व ठुमरियों की विषयवस्तु बने।[14]

नवाब इब्राहिम अली खान के देहान्त के पश्चात् आपके शासनकाल के नियुक्त कलाकार कुछ बाहर चले गये और कुछ कलाकार टोंक में ही रहे। नवाब इब्राहिम अली खाँ के पश्चात् टोंक में संगीत समारोह के आयोजन भी कम होने लगे थे। क्योंकि नवाब सआदत अली खाँ को नाटकों से अत्यधिक प्रेम था और नवाब इब्राहिम अली खाँ के शासनकाल के नियुक्त कलाकारों में स्वर्गीय मोहम्मद अली खाँ, स्वर्गीय बून्दु खाँ, स्वर्गीय अहमद जान खाँ आदि कलाकार टोंक में ही मौजूद रहे।

नवाब सआदत अली के समय में नवाब खानदान के साहबज़ादों ने इन कलाकारों से गायकी की शिक्षा भी प्राप्त की थी। जिनमें स्वर्गीय अब्दुल माज़िद खाँ, स्वर्गीय दाता मियाँ, स्वर्गीय अहमद सईद खाँ, स्वर्गीय अशरफ खाँ, स्वर्गीय शरीफ खाँ, स्वर्गीय मोहम्मद अतीक खाँ, स्वर्गीय यासीन मोहम्मद खाँ साहब, स्वर्गीय हामिद खाँ आदि कलाकार प्रसिद्ध थे।

नवाब सआदत अली खाँ के शासनकाल में नाट्य कला का सम्पूर्ण विकास हुआ। नवाब साहब के अत्यधिक प्रेम प्यार के कारण यहाँ पेशेवर नाटक मण्डलियाँ आना प्रारम्भ हुई यहाँ पर 'प्यारी का नाटक' एवं 'राव साहब' आदि नाटकों के प्रमाण मिलते हैं। टोंक में प्रसिद्ध नाटक कम्पनियाँ आया करती थी। जिससे नवाब सआदत अली खाँ को भी इस नाट्य कला के क्षेत्र में रुचि उत्पन्न हुई व जनता में भी नाटक देखने का शौक पैदा हुआ।[15] नवाब सआदत अली खाँ टोंक गुलज़ार बाग की कोठी में निवास करते थे। आप नाटक व शायरी के ही शौकिन नहीं थे बल्कि आपको क्रिकेट, शिकार, टेनिस आदि का भी शौक था। यहाँ तक कि आपने अपने निजी खर्चे से अपनी एक क्रिकेट टीम भी बना रखी थी। इस टीम ने उस समय 'काल्विन शिल्ड' भी जीती थी।

नवाब सआदत अली खाँ साहब शाम के समय हमेशा खलील क्लब में टेनिस खेलने जाया करते थे। इनके अतिरिक्त आप शेरो शायरी के बहुत प्रेमी थे। हिन्दी भाषा में 'राज' आपका उपनाम था। मुशायरों में अपनी शेरो-शायरी किसी अन्य कलाकारों से सुनते थे और शाम के समय नवाब साहब नाटक एवं सिनेमा देखने जाया करते थे।

नवाब सआदत अली खान के समय में जो भी शायर थे वह बहुत अच्छी शैरो-शायरी किया करते थे। इनमें स्वर्गीय दाग देहलवी के शिष्य स्वर्गीय मोहम्मद सईद खान आशिक थे आपकी शायरी के क्षेत्र में पूरे हिन्दुस्तान में आपका नाम प्रसिद्ध था।

आपने नवाब इब्राहिम अली खान के दौर में ही शायरी की शुरुआत की थी। आपने जीवन के आखिरी समय तक शैरो शायरी को कायम रखा और सन् 1940 ई. में आपका देहान्त हो गया। इनके पश्चात् स्वर्गीय हाफ़िज आलमगीर खाँ कैफ आपका अधिकांश समय झालावाड़ के महाराजा भवानीसिंह के साथ व्यतीत हुआ और आपको कैफ साहब भगवान मानते थे क्योंकि दाग देहलवी के पश्चात् आपका नाम ही गज़लों में प्रसिद्ध था और आपने टोंक में भी शैरो शायरी के बहुत से आयोजन किये थे। आपकी शायरी दमदार हुआ करती थी।[16]

इसी प्रकार स्वर्गीय मौलवी सैफ़ साहब इस दौर के बहुत प्रसिद्ध शायर थे। इसी समय में स्वर्गीय सैरूयद मेहमूदुल हसन सोलत साहब भी बहुत अच्छे शैर कहते थे। आप अरबी, फ़ारसी के प्रसिद्ध विद्वान थे।

नवाब सआदत अली खाँ साहब के शासनकाल में सैंकड़ों ही शैरों-शायरी करने वाले शायर थे। इसी प्रकार स्वर्गीय हनुमान सिंहल साहब जो लेखक भी थे जो वर्तमान में उनके वंशज टोंक में स्थित है और हनुमान सिंहल साहब ने टोंक का इतिहास व टोंक संबंधित बहुत सी किताबों की रचना की थी। उनके पिता स्वर्गीय मास्टर रामनिवास जी अग्रवाल 'नदीम' साहब नवाब सआदत अली खाँ के दरबार में मुशायरों में शैरो-शायरी किया करते थे और नवाब साहब इन्हें बहुत सम्मान दिया करते थे। आप उस समय टोंक दरबार हाई स्कूल के अध्यापक थे। आपके अतिरिक्त उस दौर के अन्य शायरों में स्वर्गीय साहबज़ादा इमदाद अली खाँ, स्वर्गीय मती उल्लाह खाँ साहब, स्वर्गीय बिस्मिल सईदी, वासिक साहब, स्वर्गीय साहबज़ादा, शफ़ीकुर्रहमान, स्वर्गीय साहबज़ादा हामिद सईद खाँ, ज़ाम साहब, स्वर्गीय अख्तर शिरानी उस समय के प्रसिद्ध शायर हुआ करते थे। नवाब सआदत अली खां साहब स्वयं भी बहुत अच्छे शायर और कवि थे। आपके शासनकाल में स्वर्गीय एज़ाज सिद्धिकी, स्वर्गीय शहरी भोपाली, स्वर्गीय अहतर हापुड़ी, स्वर्गीय ज़िगर मुरादाबादी, स्वर्गीय हफीज़ जालंधरी, स्वर्गीय सीमाव अकबराबादी, स्वर्गीय माहेरुल कादरी, स्वर्गीय जोश मलयासिनी, स्वर्गीय सागर निज़ामी, स्वर्गीय मालवी मंज़र, स्वर्गीय अकबराबादी आदि विद्वान टोंक में आकर अपनी शैरों शायरी से यहाँ का वातावरण खुशनुमा कर देते थे। उस दौर के महत्वपूर्ण कवियों में स्वर्गीय डॉ. मनोहर सहाय अनवर एवं स्वर्गीय मास्टर रामनिवास 'नदीम' आप उस दौर के हिन्दु समाज के पहले व्यक्ति थे जिन्होंने उर्दू, फ़ारसी में एम.ए. किया था। और आप फ़ारसी में शैरो-शायरी भी कहते थे। टोंक में रंगमंच की स्थापना का श्रेय नवाब इब्राहिम अली खान साहब के शासनकाल से ही प्रारम्भ हो गया था। बाहर से नाटक मण्डलियों का आगमन शुरु हो गया था। ओर टोंक में नाट्य कला का क्षेत्र बढ़ता ही गया ओर इन नाटकों को मंच पर प्रस्तुति के लिये टोंक में 'राज थियेटर कम्पनी' का निर्माण हुआ। राज थियेटर कम्पनी में काम करने वाले कलाकारों को वेतन आदि दिये जाते थे। इनमें स्वर्गीय सिद्धिक अली, स्वर्गीय जमाल मियाँ, स्वर्गीय सर्वश्री अब्बार खाँ, स्वर्गीय बशीर खाँ आदि इन कलाकारों के नाम आज भी टोंक के पुराने लोगों को याद है।[17]

इन नाटकों का मंचन अधिकांश रात के समय ही हुआ करता था और ये नाटक लगभग तीन से पाँच घण्टों तक चलता था। इन नाटकों में अधिकतर ऐतिहासिक घटनाओं को दर्शाया जाता था। तथा इन नाटकों में गाने आदि हुआ करते थे। उस दौर के नाटक लिखने वालों में कुछ लोगों को बहुत प्रसिद्धि प्राप्त हुई जिनमें स्वर्गीय उस्ताद आबरु, स्वर्गीय दशरथ सक्सेना, स्वर्गीय पंडित देव नन्दन प्रसाद, स्वर्गीय मुश्तर ख़ैराबादी, स्वर्गीय ज़लालुद्दीन आदि कलाकार शामिल थे।[18]

नवाब सआदत अली खाँ के दौर में मुस्लिम समाज के लोग ही नहीं वरन् हिन्दू समाज के लोग भी नाटकों की प्रस्तुति मंच पर प्रस्तुत किया करते थे। जिसमें राजा-रानी का नाटक व अन्य नाटकों को प्रस्तुत किया जाता था। यही नहीं उस समय भज़न मण्डलियाँ भी हुआ करती थी जिसमें स्वर्गीय राम कुमार जी गायक स्वर्गीय मास्टर छितर मल जी

हारमोनियम मास्टर थे नवाब साहब इन कलाकारों से भज़न आदि सुना करते थे। और स्वर्गीय डॉ. चान्दमल जी एल.डी.सी. जैसे कलाकार नवाब साहब को भज़न-कीर्तनों के अवसर पर अपने घर बुलाया करते थे। ओर नवाब सआदत अली खाँ साहब इनके भजन-कीर्तनों से बहुत खुश होते ओर इन्हें कुछ भेंट व ईनाम भी दिया करते थे।

नवाब सआदत अली खाँ के शासनकाल में नियुक्त कलाकारों में स्वर्गीय मम्दु खाँ, स्वर्गीय मम्मु खाँ, स्वर्गीय गुलाम मोहम्मद खाँ तवला वादक थे और स्वर्गीय नन्हें खाँ, स्वर्गीय मोहम्मद हुसैन खान, स्वर्गीय भंवर लाल जी, स्वर्गीय मंजी लाला, स्वर्गीय तानु खाँ, स्वर्गीय छोटे खान, स्वर्गीय मुरनी खाँ, सारंगी वादक थे। ये सभी कलाकार उस समय नाटक मण्डली में कर्मचारी थे जो नाटकों के बीच-बीच में गाने-बजाने का कार्य किया करते थे।

नवाब सआदत अली खाँ के शासनकाल में ये सभी कलाकार वो हैं जिनके पिता नवाब इब्राहिम अली खाँ के दौर में मौजूद थे। ये उन्हीं की वंशज हैं।

नवाब साहब अपनी प्रजा को बहुत प्यार से रखते थे आपने कभी भी हिन्दू-मुस्लिम में भेदभाव नहीं किया।

नवाब सआदत अली खाँ साहब के शासनकाल में हिन्दू समाज के लोगों में भी बहुत अच्छे शायर हुआ करते थे जिनमें स्वर्गीय भौरा साहब, स्वर्गीय डॉ. मनसुख दास जी, स्वर्गीय डॉ. श्यामलाल जी, स्वर्गीय डॉ. रामनिवास जी जो एक लेखक भी थे। और स्वर्गीय जगदीश बोहरा साहब ये सभी कलाकार नवाब साहब के समय में उर्दू शैरो-शायरी के प्रसिद्ध कलाकार थे। उस दौर में शायरी के बड़े-बड़े मुशायरे होते थे जिनमें ये सभी कलाकार अपनी-अपनी कला की प्रस्तुति दिया करते थे।

जिस प्रकार मुस्लिम लोग चारबैंत लिखते व गाते थे ठीक उसी प्रकार हिन्दुओं में भी उस समय बहुत अच्छे उर्दू के शायर होते थे और वो चारबैंत भी लिखा करते थे। स्वर्गीय कैफ साहब, स्वर्गीय सैफ साहब, स्वर्गीय हुनर साहब आदि ये सब उर्दू के कलाकार थे और नवाब सआदत अली खाँ के समय हिन्दू-मुस्लिम सभी भाई-भाई की तरह रहते थे किसी में कोई मतभेद नहीं था।

नवाब सआदत अली खाँ साहब के समय नाटक व शायरी का ही विकास नहीं हुआ बल्कि यहाँ ख्याल व ठुमरियाँ गाने वाले बड़े-बड़े कलाकारों का भी जन्म हुआ जिनमें एक थी स्वर्गीय दिवानी दुर्गा उस समय एक प्रसिद्ध गायिका थी। जो नवाब साहब के शासनकाल में ठुमरियाँ गाया करती थी उनके पास ठुमरियों का खजाना था। दिवानी दुर्गा जब ठुमरी गाती थी तो उसके अंग भाव भी प्रस्तुत किया करती थी। जैसे उदाहरणार्थ एक ठुमरी प्रस्तुत है -

स्थाई - पिया कर घर देखो
धरकत है मोरि छतियाँ
अन्तरा - कैसी ये रतियाँ
कारी पीली अतहि डरावे
आन अचानक तुम बैंयूया गहली नी

परन्तु इनकी अन्य कोई और ठुमरियाँ हमें प्राप्त नहीं हो सकी।

इस प्रकार सन् 1947 ई. में नवाब सआदत अली खान की मृत्यु होने के पश्चात् इनके शासनकाल में जो कलाकार नियुक्त थे कुछ कलाकार स्वर्गवासी हो गये और कुछ टोंक से बाहर चले गये और कुछ कलाकार राजस्थान में ही रहे व कुछ राजस्थान से बाहर चले गये और बहुत से कलाकारों ने आकाशवाणी में अपना स्थान बनाया व कुछ कलाकार स्कूल व कॉलेजों में शामिल हो गये और आज उन्हीं कलाकारों की वंशज व पीढ़ी आकाशवाणी में टॉप ग्रेड, ए ग्रेड के कलाकार वर्तमान में नियुक्त हैं।[19] और नवाब सआदत अली खान की मृत्यु के पश्चात् उनके छोटे भाई फारुक़ अली खान नवाब बने। उसी दौर में भारत आज़ाद हुआ और राजस्थान बनने का कार्य प्रारम्भ हुआ। टोंक रियासत को आज़ाद भारत में सम्मिलित करने का निर्णय लिया गया। नवाब फारुक़ अली खान को केवल 7 महिने ही शासन का अवसर मिला। सन् 1948 ई. में उनका देहान्त हो गया तथा उनके छोटे भाई इस्माईल अली खान टोंक के नवाब

नियुक्त हुए। इनका शासन काल केवल एक महीने ही रहा और टोंक में प्रशासक भारत सरकार की ओर से नियुक्त कर दिया गया। 30 मार्च सन् 1949 ई. को राजस्थान की स्थापना के पश्चात् टोंक रियासत राजस्थान में सम्मिलित हो गई और इस प्रकार लगभग 150 वर्ष पुरानी रियासत समाप्त हो गई। उसकी राजधानी शहर टोंक को जिला टोंक का मुख्यालय बना दिया गया।

संदर्भ

1. चौधरी प्रताप सिंह, 8 राजस्थानः संगीत और संगीतकार
2. चौधरी प्रताप सिंह, 92-93, राजस्थानः संगीत और संगीतकार
3. चौधरी प्रताप सिंह, 93-94, राजस्थानः संगीत और संगीतकार
4. सिंहल हनुमान, 155, 157, टोंक का इतिहास
5. क्षीरसागर, डॉ. मंजूश्री, 101, राजस्थान की संगीत परम्परा
6. चौधरी प्रताप सिंह, 94, राजस्थानः संगीत और संगीतकार
7. चौधरी प्रताप सिंह, 94, राजस्थानः संगीत और संगीतकार
8. सिंहल, हनुमान, 151, 152, टोंक का इतिहास
9. बोहरा पारुल, 10-13, उस्ताद अमीर मोहम्मद खाँ 'मेहर पिया' की भारतीय संगीत को देन
10. बोहरा पारुल, 23-24, उस्ताद अमीर मोहम्मद खाँ 'मेहर पिया' की भारतीय संगीत को देन
11. 'निर्विरोध' डॉ. तारादत्त, 62, राजस्थान का पारसी रंगमंच
12. 'निर्विरोध', डॉ. तारादत्त, 92, राजस्थान का पारसी रंगमंच
13. डॉ. सोमनाथ, 107, पारसी थियेटर
14. 'निर्विरोध', डॉ. तारादत्त, 97, राजस्थान का पारसी रंगमंच
15. चौधरी प्रताप सिंह, 93, राजस्थानः संगीत और संगीतकार
16. सिंहल हनुमान, 164, टोंक का इतिहास
17. सिंहल हनुमान, 166, टोंक का इतिहास
18. चौधरी प्रताप सिंह, 93, राजस्थानः संगीत और संगीतकार
19.
20. चौधरी प्रताप सिंह, 94-95, राजस्थानः संगीत और संगीतकार
21. बोहरा पारुल, 2-7, उस्ताद अमीर मोहम्मद खाँ 'मेहर पिया' की भारतीय संगीत को देन
22. बोहरा पारुल, 74-77, उस्ताद अमीर मोहम्मद खाँ 'मेहर पिया' की भारतीय संगीत को देन
23. बोहरा पारुल, 101-103, उस्ताद अमीर मोहम्मद खाँ 'मेहर पिया' की भारतीय संगीत को देन
24. बोहरा पारुल, 113-117, उस्ताद अमीर मोहम्मद खाँ 'मेहर पिया' की भारतीय संगीत को देन
25. बोहरा पारुल, 124, उस्ताद अमीर मोहम्मद खाँ 'मेहर पिया' की भारतीय संगीत को देन
26. बोहरा पारुल, 126-127, उस्ताद अमीर मोहम्मद खाँ 'मेहर पिया' की भारतीय संगीत को देन
27. बोहरा पारुल, 134-135, उस्ताद अमीर मोहम्मद खाँ 'मेहर पिया' की भारतीय संगीत को देन
28. बोहरा पारुल, 140, उस्ताद अमीर मोहम्मद खाँ 'मेहर पिया' की भारतीय संगीत को देन
29. बोहरा पारुल, 147-148, उस्ताद अमीर मोहम्मद खाँ 'मेहर पिया' की भारतीय संगीत को देन
30.
31.
32. चौधरी प्रताप सिंह, 115, राजस्थानः संगीत और संगीतकार

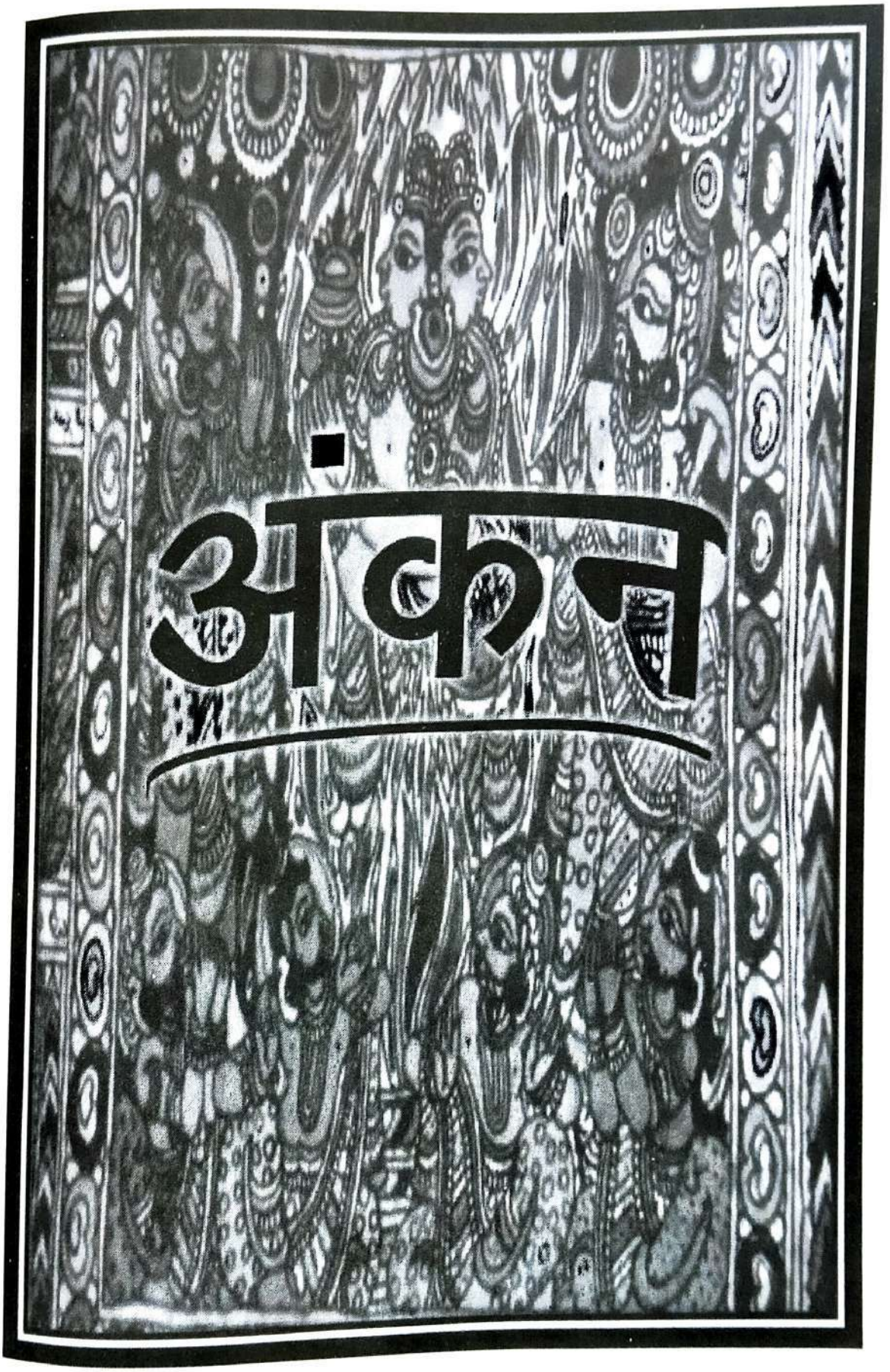
अकन

गीता दत्त

कुषाण कला में 'ईहामृग'

डा. संजू मिश्रा

प्रदर्श-व्याख्याता, इलाहाबाद संग्रहालय, इलाहाबाद

ईसा की प्रथम तीन शताब्दियाँ भारत के राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास के विकास की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं। यह वह काल था जब उत्तर भारत के एक बड़े भू-भाग पर शक, कुषाण, मुरुण्ड आदि वैदेशिक शक्तियों की राजनीतिक सत्ता समय-समय पर स्थापित हुई। प्राचीन साहित्यिक तथा अभिलेखीय साक्ष्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस काल में विविध कलाओं तथा शिल्पों के क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रगति हुई।

पुरातात्विक अन्वेषण तथा उत्खनन से ज्ञात साक्ष्य इसकी अंशतः पुष्टि भी करते हैं। भारतीय कला के कतिपय पक्षों पर विदेशी प्रभाव परिलक्षित होता है, जिसके कुछ उदाहरणों को इस शोधपत्र में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। इस कालखण्ड में भारतीय कला के अनेक अलंकरण, उपमान तथा शिल्प विधानों पर विदेशी प्रभाव दिखलाई पड़ता है।

कुषाणों को अधिकांश विद्वानों ने दो विभिन्न राजवंशों में विभाजित किया है, किन्तु खरोष्ठी लिपि में अंकित, अफगानिस्तान से प्राप्त रबतक नामक अभिलेख के आधार पर अब ऐसा नहीं कहा जा सकता है। कुजुल कडफिसेज तथा विम कडफिसेज कनिष्क प्रथम के ही वंशज तथा पूर्वज थे एवं कनिष्क प्रथम, वाशिष्क, हुविष्क, कनिष्क द्वितीय तथा वासुदेव कुषाण कुल के प्रमुख शासक थे। कनिष्क प्रथम के शासन काल में बौद्ध धर्म की महायान शाखा का उदय एवं प्रसार हुआ तथा कला के क्षेत्र में प्रस्तर मूर्तियाँ, गांधार एवं मथुरा दो भिन्न-भिन्न शैलियों के रूप में विकसित हुई। गांधार तथा मथुरा शैलियों में बुद्ध तथा बोधिसत्व की मूर्तियों के अतिरिक्त पशुओं की विविध प्रकार की मूर्तियों का भी निर्माण हुआ। प्रस्तर एवं मृण्मूर्तियों में सिंह, हाथी, अश्व, बैल, बकरा[1] तथा मृग[2] आदि का अंकन विशेष उल्लेखनीय हैं।

चित्र 1 : सपक्ष अज, मथुरा

चित्र 2 : सपक्ष मृग, मथुरा

पश्चिमी एशिया के हेलेनिस्टिक जगत में इस प्रकार के पशुओं के अंकन की परंपरा असीरियन सभ्यता के काल से मिलने लगती है।[3] प्राचीन ईरान के हखामनी राजवंश की कलाकृतियों में भी इस प्रकार के पशुओं का अंकन प्राप्य है। हिंद-यवन शासकों के शासन काल में बल्ख या बैक्ट्रिया के क्षेत्रों में पश्चिमी एशिया की कला परंपरा के प्रतिमानों के साथ ही साथ प्राचीन यूनानी तथा रोमन कला के प्रतिरूप भी प्रचलन में आए। इनमें से बहुत से तत्त्व गांधार कला में घुलमिल गए तथा कतिपय प्रतिमान पूर्व की ओर भरहुत, सांची, मथुरा तथा कौशाम्बी की कला के अलंकरण के अभिन्न अंग बन गए।

शनैः शनैः भारतीय साहित्य में इन कला प्रतिमानों को क्रमशः आत्मसात् कर लिया गया। भारतीय साहित्य में सपक्ष अथवा आकाशचारी अथवा पंखयुक्त पशु-पक्षियों के लिए सुप्रचलित नाम 'ईहामृग' मिलता है। वाल्मिकी रामायण में यह उल्लेख मिलता है, कि राजभवन के स्तंभों को अलंकृत करने के लिए उनमें 'ईहामृग' या 'मृगों' की आकृतियां निर्मित की जाय।[4] प्रसिद्ध कवि कालिदास ने अपने रघुवंश महाकाव्य[5] में मतंग मकर का उल्लेख किया है, जिसका अग्रभाग हाथी का तथा पृष्ठ भाग महामत्स्य अथवा मकर की तरह का होता था।[6] मत्स्य, वायु, ब्रह्म, वामन, लिंग आदि पुराणों में भी ईहामृग का उल्लेख प्राप्त होता है। बारहवीं शताब्दी के जैन शिल्प ग्रन्थ 'अपराजितपृच्छा' के लेखक भुवनदेव ने सोलह विभिन्न प्रकार के व्यालों का उल्लेख किया है।[7]

कुषाण काल के पूर्व, शुंग काल से ही कला में विभिन्न प्रकार के पशुओं का अंकन प्रारंभ हो गया था। मध्य प्रदेश के सतना जिले में स्थित भरहुत तथा रायसेन जिले में स्थित साँची की कला में इस प्रकार के उदाहरण हमें यत्र-तत्र देखने को मिलते हैं, यथा : 'जलहस्ति', जिसका पूरा शरीर हाथी के समान तथा पूँछ मछली के आकार की है। मकरमच्छ, जिसमें मुख्य भाग मकर का तथा पीछे का मुड़ा हुआ भाग मछली का है। इसी प्रकार 'बलाहकाश्व'[8] के रूप में अश्व को सपक्ष अथवा पंखयुक्त दर्शाया गया है।

चित्र 3 : गजमच्छ, भरहुत

चित्र 4 : मकरमच्छ, भरहुत

बोधगया के स्तूप में भी भरहुत तथा साँची की विदेशी प्रभाव वाली कलाकृतियों को स्थान दिया गया है, जिनमें नरमच्छ, गोमच्छ आदि का उल्लेख उदाहरणार्थ किया जा सकता है। बोधगया की कलाकृतियाँ भरहुत तथा साँची की कलाकृतियों की तुलना में अधिक विकसित तथा परिष्कृत हैं। इस प्रकार इन कला-कृतियों ने मथुरा तथा कौशाम्वी आदि कलाकेन्द्रों में, कुषाण काल में निर्मित होने वाली सपक्ष कला कृतियों के निर्माण का मार्ग प्रशस्त किया।[9]

मथुरा की कला में सपक्ष सिंह, सपक्ष वृषभ सुपर्ण, किन्नर आदि का अंकन कंकाली टीले से प्राप्त स्तंभों की घंटाकृतियों पर प्रायः मिलता है,[10] तथा सपक्ष सिंहाकृतियाँ असीरियन कला में अंकित सपक्ष सिंह कृतियों से बहुत कुछ मिलती जुलती हैं।

चित्र 5 : कुषाणकालीन सपक्ष सिंह, कंकाली टीला, मथुरा

चित्र 7 : सुपर्ण, मथुरा

कौशाम्बी के घोषिताराम बौद्ध विहार से प्राप्त तथा इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रोफेसर जी0आर0 शर्मा स्मारक संग्रहालय में संग्रहीत दो स्तंभों पर पंखयुक्त सिंह आकृतियाँ मिलती हैं।[11] इन पशु आकृतियों में चार सिंहों को पीठ से पीठ सटाकर बैठी हुई मुद्रा में दर्शाया गया है। इनमें से एक उदाहरण में शरीर को सपक्ष सिंह का किंतु मुखाकृतियों को मानव की मुखमुद्राओं की भाँति बनाया गया है। एक अन्य उदाहरण में शरीर का भाग तो सपक्ष सिंह जैसा ही है, किंतु मुखाकृतियाँ एक-दूसरे से विपरीत दिशा में बनी हुई हैं, तथा मानव रूप में हैं। ये मानव

मुखाकृतियाँ कानों में विशाल आकार के कुण्डल भी पहने हुए हैं।

चित्र 8 : मानवमुखाकृति युक्त सपक्ष सिंह शीर्ष, कौशाम्बी

प्रस्तुत उदाहरणों से इंगित होता है, कि इन कलाकृतियों में जहाँ एक ओर वैदेशिक प्रभाव परिलक्षित होता है, वहीं दूसरी ओर इनसे प्रकृति की सर्वव्यापी सत्ता का भान होता है तथा कलाकारों की कल्पनाशीलता के विषय पर भी प्रकाश पड़ता है। इन पशु कलाकृतियों का निर्माण संभवतः श्रमण धर्मों विशेषकर 'बौद्ध धर्म' के संरक्षण में किया गया होगा, यद्यपि उनकी प्रेरणा वैदेशिक स्रोत से प्राप्त हुई थी, किंतु काल के प्रवाह के साथ, भारतीय संस्कृति ने अपनी जीवतता तथा सहिष्णुता का परिचय देते हुए कालांतर में इन विदेशी तत्त्वों को आत्मसात कर लिया तथा उनका वैदेशिक प्रभाव बहुत सीमा तक समाप्त हो गया एवं गुप्तकाल तक आते-आते यह प्रभाव पूर्णतः समाप्त हो जाता है।

संदर्भ

1. स्मिथ, वी0ए0 1901. जैन स्तूप एण्ड अदर एण्टीक्विटीज फ्रॉम मथुरा, इलाहाबाद : प्लेट संख्या XLV
   कृष्णमूर्ति 1985. मिथिकल एनिमल्स इन इण्डियन आर्ट, दिल्ली : पृष्ठ 17।
2. स्मिथ, वी0ए0. पूर्वोद्धृत : प्लेट संख्या LXXVI
3. कुमार, विनय 2008. फैब्यूलस एरियल एनिमल मोटिफ्स इन कुषाणा आर्ट, इन हिस्ट्री टुडे, नम्बर 9, जर्नल ऑफ हिस्ट्री एण्ड हिस्टॉरिकल ऑर्कियोलॉजी, नई दिल्ली : पृष्ठ 35।
4. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, संवत् 2055, 19 वाँ संस्करण, गीताप्रेस, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश : पृष्ठ 34।
   ईहामृगसमायुक्तैः कार्तस्वरहिरण्मयैः।
   सुकृतैराचिंत स्तम्भैः प्रदीप्तमिव च श्रिया।। 5.9.13
5. द्विवेदी, रेवा प्रसाद 1976. कालिदास ग्रन्थावली (संपादित) काशी हिंदू विश्वविद्यालय; वाराणसी : पृष्ठ 230।
   मातङ्गनक्रैः सहसोत्पतद्भिर्भिन्नान् द्विधा पश्य समुद्रफेनान।
   कपोलसंसर्पितया य एषां व्रजन्ति कर्णक्षणचामरत्वम्।।
   रघुवंश, त्रयोदश सर्ग, श्लोक संख्या 11
6. कृष्णमूर्ति. पूर्वोद्धृत : पृष्ठ 4।
7. अपराजित-पृच्छा 1950. बड़ौदा : पृष्ठ 233।
8. अग्रवाल, वासुदेव शरण 1965. इण्डियन आर्ट, वाराणसी : पृष्ठ 136।
9. यादव, आर0पी0 1985. प्राचीन भारतीय कला, वाराणसी : पृष्ठ 35।
10. स्मिथ, वी0ए0. पूर्वोद्धृत : प्लेट संख्या ग्गटपपप
11. शर्मा, जी0आर0 1980 : हिस्ट्री टू प्री-हिस्ट्री : ऑर्कियोलॉजी ऑफ द गंगा वैली एण्ड द विन्ध्याज, नम्बर 11, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद : पृष्ठ 50

लोक चित्रकला कला परम्परा व संस्कृति का संवाहकः आदिवासी समाज

किरन मिश्रा

शोधार्थी, महात्मा गांधी चित्रकूट, ग्रामोदय विश्वविालय, चित्रकूट

लोक : आदिवासी समाज -भारत युग युगान्तर से विभिन्न संस्कृतियों का संगम स्थल व सम्पर्क का अद्भुत संगम रहा है। भारत की मूल संस्कृति के साथ मिलकर विभिन्न जातियें की विभिन्न संस्कृतियों का जन्म होता रहा है, भारत में अनेक ऐसे समुदाय हैं जो सभ्य समाज से दूर वनों एवं पहाड़ों की प्राकृतिक वादियों में एक बेहद स्थिर जीवन यापन कर रहे हैं। उनकी परम्परायें रीति-रिवाज अपने आप में ही सिमटे हुये हैं आधुनिक सभ्यता से उनका बिल्कुल नवीन परिचय हो रहा है। अपनी ही समस्याओं में सिमटी इस भारतीय जनसंख्या का नाम भारतीय आदिवासी हैं। ये प्रायः सभ्य समाज से दूर वनों, पहाड़ी या पठारी क्षेत्रों में रहते हैं और प्रत्येक अर्थ में पिछड़े हुये हैं।

शुरुआती रूप से संथाल, गोंड, कूकी नागा, बैगा, भील, कोरकू, सहरिया, केल, भिम्मा तथा भरिया जनजातियों के सोथ बस्तर की मुरिया, दण्डानी भाड़िया जनजाति का परिचय मिलता है इनमें मूलतः जनजातियों की मूल पहचान, सांस्कृतिक परम्परा की विशिष्टता के लक्षणों की खोज, प्रदर्शनकरी और रूपंकर कलाएं, पर्व-त्यौहार और मेले, धार्मिक आस्था और अनुष्ठान, जनजातीय देवलोक और वाचिक परम्परा के कुछ प्रमुख रूपों में नमूनों का संग्रह व संवाहक के रूप में मिलते हैं। एक विशिष्ट जनजातीय परिवेश और सांस्कृतिक परम्परा की अर्न्तछाया में कोई जनजातीय कलारूप आकर लेता है, वह एक खास तरह की स्थानिकता और सांस्कृतिक बोध को अभिव्यक्त करता है। जैसा दूसरी किसी परम्परा में संभव नहीं होता। जनजातीय नृत्यों का संगीत परम्परा और मौखिक साहित्य के साथ शिल्प परम्परा का चित्रों और जनजातीय आध्यात्मिक विश्वासों के साथ गहरा सम्बन्ध है। जनजातीय कथा या गाथाएँ विशेष स्वर कल्पनात्मक मिथकीय और तोटामिक धारणाओं प्रकृति और पितरों की विश्वास परम्पराओं तथा जनजातीय स्थानिक देवलोक आस्थाओं के प्रकट करती है। स्मृति और चेतनागत जगत में सक्रिय इन अमूर्त्त प्रेरणाओं का प्रक्षेपण, चित्रों और शिल्पों में होता है। यहाँ तक कि इनका प्रभाव कुछ प्रदर्शनकारी कलाओं विशेष रूप से नृत्यों में भी स्पष्ट दिखता है।

लोक संस्कृति अनपढ़, निरक्षर, गंवार और जनपदीय लोक से सम्बन्धित है लोक संस्कृति की विशेषता है कि यह अभिव्यक्ति के द्वारा कौशल भावों, मिथकों और देहभाषा के अनेक रूपों में बिखरा हुआ है।

''मनुष्य अपने आस-पास जिस अनुभव के आधार पर जिस जीवन का ताना-बाना बुनता है वही लोक है लोक शब्द अत्यंत प्राचीन है। साधारण जनता के लिए लोक का प्रयोग ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर किया गया है। (ऋतु 3/53/12) ऋग्वेद के पुरूष सूक्त में 'लोक' शब्द क व्यवहार जीव तथा स्थान दोनों अर्थों में किया है।''[1]

''लोक के सम्बन्ध में ''डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी'' का मत मुझे अच्छा लगा है। 'लोक' शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम नहीं है बल्कि नगरों और गांवों में फैली हुई वह समूची जनता है जिनके व्यवहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं है।'' संस्कृत वाङ्मय में लोक का उपयोग प्रचुरता से मिलता है।''[2]

''डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल'' ने तो लोक को महासमुद्र माना है—''लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है। उसमे भूत, भविष्य और वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। लोक ही राष्ट्र का अमर स्वरूप है।''[3]

''लोक कला परम्पराएं व संस्कृति राष्ट्र की अमूल्य निधि है। हमारे इतिहास में जो भी सुन्दर तेजस्वी तत्व है, वह लोक में कहीं न कहीं सुरक्षित है। हमारी कशषि नीति, अर्थशास्त्र, ज्ञान साहित्य, कला में नाना रूप भाषाएं और शब्दों के भण्डार जीवन के आनंदमय पर्वोत्सव, नृत्य, संगीत, कथा वार्ताएँ आचार-विचार सभी कुछ भारतीय आदिवासी जनजातीय लोक कला परम्पराओं द्वार भारतीय लोक में ओतप्रोत है। लोक कलाओं की गंगा युग-युग से बह रही है उसके ओजायमान प्रवाह में हमारी संस्कृति के मेघ जल पूर्व युगों में बरसते रहे हैं। संप्रति बरस रहे हैं अैर आगे भी उनकी सहस्त्र धाराएँ लोक जीवन की भागीरथी को आगे बढ़ाती रहेंगी।

आदिवासी संस्कृति, विश्वास व लोक कला

''लोक साहित्य विज्ञान'' में डॉ0 सत्येन्द्र ने लिखा है- ''लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना अथवा अहंकर से शून्य है।''[4]

लोक की व्यवहारिकता ही लोक संस्कृति की जननी है। आदिवासी लोक-संस्कृति प्रत्येक क्षेत्र की भीतरी शक्ति है जो इतनी सुदृढ़ होती है कि वह विपरीत परिस्थितियों या विजातीय तत्वों से कभी प्रभावित नहीं होती है। लोक-संस्कृति हमारे जीवन वृक्ष की जड़ के समान है। उस जड़ को लोक कलाओं तथा विश्वासों में पोषक तत्व मिलने पर ही पुष्पित पल्लवित होने के अवसर मिलते हैं।

''कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अनुसार''- ''जनपदों के अपने शील, वेश, भाषा, आचार, देवता, समाज, उत्स और विहार होते हैं। अर्थात् प्रत्येक जनपद या क्षेत्र की अपनी एक विशिष्ट पहचान होती है। जिसे दूसरे शब्दों 'लोक'-'संस्कृति' भी कहा जा सकता है।''[5]

आदिवासी समाज में मनुष्यों के अपने आदर्श, विश्वास, रीति-रिवाज, मान्यताएँ व कलाएँ होती हैं जो पूरे अदिवासी जन जीवन के मूल में निहित रहती है। आदिवासी समाज में सामाजिक आधार, पर्यावरण, लोक-पर्व, लोक-कलाएँ, लोक-उत्सव, रीति-रिवाज, संस्कार, प्रथायें, लोकाचार, वर्जनायें आदि समाज रूप से वर्तमान में भी उपयोगी है।

आदिवासी समाज के लोग सहज, सरल तथा आत्म विश्वास के धनी होते हैं, वे अपने क्षेत्र में स्वच्छन्द रूप से निवास करना, उचित मानते हैं। लोक संस्कृति अपने प्राचीन और वैशिष्ट परम्पराओं, भावनाओं के आधार पर ही फलती-फूलती है। आदिवासी लोक संस्कृति धर्म व सम्प्रदाय से ऊपर होती है।

हमारे भारतीय समाज में एक तरफ जहाँ गरीब, उपेक्षित, दलितों, शोषितों की अर्थहीन वैराग्य संस्कृति है तो वहीं दूसरी ओर पूँजीपतियों एवं अभिजात्य वर्ग की भोगवादी संस्कृति।

भारतीय आदिवासी समाज में लोक संस्कृति के विविध उपादान विरासत को कायम रखने में प्रभावी है।

यदि किसी दौर की सभ्यता और संस्कृति का हृदय और मस्तिष्क एक साथ परखना है, तो वहां के लोक-विश्वासों को जानना अत्यन्त आवश्यक है। आदिवासी समाजों के द्वारा पूरी तरह विचारों के अनुकूल और विपरीत परिस्थितियों के परखने के बाद ही विश्वास किया जाता है। जो निरन्तर इनके द्वारा पीढ़ी दर पीढ़ी चलायमान होते जाते हैं। प्रागैतिहासिक काल से ही मनुष्य आदिवासी समाज प्रकृति के अत्यन्त समीप था। इसका प्रमाण गुहाचित्रों एवं शैलाश्रयों पर उकेरी कला से प्राप्त होते हैं। प्रकृति के उपयोगी स्वरूप एवं प्रकोप से वे भली

प्रकार परिचित थे। आदिवासी समज के विश्वासों में कशषि क्षेत्र में पृथ्वी, जल, पशु, वृक्ष, वर्षा, नदी आदि को देव-स्वरूप में पूजा जाता है। देवताओं को प्रसन्न करने हेतु फल, अनाज, व मांस इत्यादि भेंट करना सामान्य बातें थीं। जीवन की समस्त बाधाओं को दूर करने का उपाय वे झाड़-फूँक, जादू-टोने और तंत्र-मंत्र को मानते हैं। आत्मा की अमरता, प्रेतयोनि, दुष्ट-आत्मायें इन सभी पर विश्वास किये जाते रहे हैं। बुन्देलखण्ड के उत्तर में बसने वाली सहारिया जाति पवित्र अपवित्र तथा पाप-पुण्य मानती हैं। गौ-हत्या के पाप निवारण हेतु दण्ड में पूरी बिरादरी को रोटी देना पड़ता है। लोक-विश्वासों में पशु-पक्षियों का बोलना, शुभ-अशुभ की श्रेणी में आता था। जैसे- सियार, भेड़िया, कुत्ते अदि। वृक्षों में भी कल्याणकारी देव-वास माना जाता था। जैसे- नीम, वट, पीपल, पलास शमी आदि। लोक विश्वासों से गुंथित आदिवासी लोक कथायें, लोक-संस्कृति की संवाहक होती है।

''वही' में लिखा है कि- ''उस समय मंत्रों के बल पर अनेक सिद्धियाँ प्राप्त होती थी। आंखों में विशेष अंजन लगाने से गड़ा धन दिखाई देता था। रोगों व आपत्तियों से बचने के लिए तंत्र-मंत्र व ज्योतिष का प्रयोग होता था। आदिवासी समाज में निरन्तर भक्ति भावना, मूर्तिपूजा तथा भूत-प्रेत के अस्तित्व पर विश्वास बना रहा। वस्तुतः आदिवासी समाज धीरे-धीरे इन धार्मिक, प्राकृतिक, कशषि सम्बन्धी, रीति-रिवाजों।''

लोक विश्वासों को लोक संस्कृति का अंग मानते हैं जिससे समयान्तर पर वर्तमान समाज का व्यक्ति भी विश्वासों को मानने के लिए तत्पर व सहज रहता है। प्रत्येक तीज त्योहारों पर प्रचलित लोक विश्वासों मान्यताओं, पूजा आदि विश्वासों के साथ ही शुभ-अशुभ, तिथियां, नक्षत्र इत्यादि जन-सामान्य में ज्यों के त्यो स्वीकार कर लिये गये। वर्तमान में लोक-कथाओं, लोकगीतों, लोक रीतियों व संस्कारों को आदर्श जीवन के लिए आवश्यक माना जाने लगा है जो कि हमारे आदिम समाज के द्वारा स्थानान्तरित रूप में ही मिलते हैं।

''लोक विश्वास युगों से जन-मानस में व्याप्त है, जो अपनी लोक कल्याणकारी अवधारणा के कारण ही जीवित है। लोक देवताओं पर विश्वास यह सिद्ध करता है कि व्यक्ति अपने कार्यों से युग-युगान्तर तक अमर रहता है।''[6]

आदिवासी समाज के अन्तर्गत लोक कलायें तो समस्त कलाओं की जननी है वह भावना से उत्पन्न हुई है। प्रागैतिहासिक काल में आदि-मानव ने भावाभिव्यक्ति का माध्यम कला को ही बनाया था। लोक कलाओं के द्वारा आदिवासी जन अपने मनोरंजन के रूप में कलाओं को पीढ़ी दर पीढ़ी बढ़ाते जाते हैं, जिससे परम्पराओं की पवित्रता मिलती है। वह सरस, सरल तथा हृदयग्राही बन जाती है। निष्ठा और विश्वास उसको सामाजिक स्थायित्व प्रदान करते हैं।

''लोक कला और लोक जीवन में अपनत्व का भाव होता है। आदिवासी लोक कलायें भारत की आध्यात्मिक अभिव्यक्ति का अजस्र स्त्रोत है। साथ ही समस्त लोक कलाओं से हमारा अपनापन ही उसकी उपस्थिति से हमें आल्हादित कर देता है। लोक कलायें देश की सांस्कृतिक प्रतिष्ठा व मर्यादा होती है।[7]

कला के विभिन्न पक्षों में व्यक्ति ने कलाओं के साथ अन्तर्सम्बन्ध स्थापित कर भावों को व्यक्त करने का माध्यम प्राप्त कर लिया है। समाज ने मूल कलात्मक अभिव्यक्ति से प्रभावित होकर उसे अपना लिया। जिसका प्रदर्शन जीवन के सभी क्षेत्रों में हुआ। परिणामस्वरूप साहित्य, संगीत शिल्प, चित्रकला, नृत्य सभी कलात्मकता से परिपूर्ण हो गये। आदिवासी समाज का कलाप्रेम वर्तमान तक कला अभिव्यक्ति और कला रूचि सम्पन्न समाज में परिवर्तित हो गया। साहित्य में जब तक भाव-व्यंजना के कलात्मक शब्द न हो उसका रस भाव प्रगट ही नहीं होता है। संगीत की रस-धारा भी कला की आश्रित है। जब तक ताल, वाद्य, सुर, शब्दों का सही ताल-मेल नहीं होगा तब तक कर्णप्रिय संगीत की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। नर्तकी सा नर्तक बिना सुर-ताल

के सुन्दर नृत्य प्रस्तुत करने में असमर्थ होते हैं। वाद्य यन्त्रों से लयात्मक स्वर प्रस्फुटित होता है। उनके आकार-प्रकार से और साथ ही भूमि, भित्ति, वस्त्र, पत्र आदि पर रंगो, तूलिका के साथ संयोजन होने पर चित्रकला होती है। जिसका संवाहक है आदिवासी लोक-कलाकार। आदिवासी समाज में मनुष्य प्रत्येक उत्सवों, संस्कारों, रीति-रिवाजों तथा स्वयं के मनोरंजन के लिए कलाओं के अन्तर्गत, साहित्य कला को गद्य और पद्य में व्यक्त करता है। लोक नृत्य व संगीत में गीतों व वाद्यों के द्वारा अपने संस्कारों व रीति-रिवाजों को गाकर व बजाकर व्यक्त करता है तो मन को मोह लेते हैं। जोकि वर्तमान स्थिति के समान भड़काऊ व अश्लील नहीं होते। विशेष अवसरों पर वस्त्रों, आभूषणों बर्तनों, व खिलौने के रूप में अपनी संस्कृति को सहेजते रहते हैं। काष्ट शिल्प के रूप में दरवाजों पर भी नक्काशी विशिष्ट होती है साथ ही लकड़ी की चौकी, खिलौने, कलमदान, पेटियाँ, आसन आदि अनेक रूप में कलाओं का निर्माण होता है। अन्य रूप में बांस, खजूर, सरकंडा व झाड़ू से बनी गृहोपयोगी वस्तुयें जैसे डलिया पंखे, सूप आदि लोक कला के सुन्दर नमूने हैं इन पर लोक चित्रकारी भी की जाती है। शारीरिक कला के अन्तर्गत गोदना, कल्पना का चित्रण सौन्दर्य में वृद्धि करता है। लोक-कलायें मानव जीवन को अनुरंजित करती है। आदिवासी जनजातियाँ अपने कार्यों, मनोरंजनों, विश्वासों, परम्पराओं के उपयोग से हमारी सांस्कृतिक विरासत को निरन्तर प्रसारित करती चली आ रही है। जिससे लोक के प्रति अदम्य निष्ठा को आत्मसात किये हुये लोककला समस्त लोक से सम्बन्ध स्थापित रखती है। लोक चित्रकला के अन्तर्गत भूमि पर चौक पूरन, उरैन कथा देवोत्थान एकादशी, गोधन, दौज, दसैरा, नौरता, झाँसी तथा भित्ति पर पितैरी कला, ढरकौना, भये के सांतिया, दीपावली, अहोई आठें, करवा चौथ, नाग पंचमी, हरछठ, आदि के साथ गोदना, चरूआ, चैती पूना आदि चित्र कलाओं के द्वारा आदिवासी समाज उल्लास व परम्पराओं का निर्वाह निरन्तर करता चलता है।

आदिवासी समाज में प्रचलित कला, संगीत, नृत्य व संस्कृति को सहेजने रूप में इस वर्ग विशेष को विकास की प्रक्रिया से जोड़ना होगा, जिससे जनजातियों के संरक्षण रूप में हम अपनी संसकृति व परम्पराओं को भी बचा रख पायेगे साथ ही राष्ट्रीय मुख्य धारा से जुड़ने के लिए कला संस्कृति संगीत एवं आदिवासियों के बीच सम्पर्क की खाई कम की जाए।

''लोकगीत, लोकनृत्य, लोक कथाए, जादू टोना, शुकन-अपशकुन, समय-समय पर आनेवाले त्यौहारों कभी देवता, धरती, वर्षा की आकांक्षा फसल की खुशी शायद ही कोई माह किसी उत्सव या पर्व के बिना रहता है। ये सारे उपादान आदिवासी समाज के सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यो के संवाहक है।''[8]

आज हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे पाश्चात्य संस्कृति झलक रही है। आज हमारे जीवन में भारतीय संस्कृति एवं आदिवासी संस्कृति प्राय लुप्त होती जा रही है। वर्तमान में आदिवासी समाजो के द्वारा स्थापित विश्वासो त्योहारो कलाओ के रूप में इनका संरक्षण करके ही हम भारतीय संस्कृति को नष्ट होने से बचा सकता है।

वास्तव में आदिवासी संस्कृति को राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सम्मान सहयोग व संरक्षण प्राप्त होना चाहिए।

कलात्मक प्रभाव : प्रकृति और विज्ञान

वर्तमान में प्राकृतिक पर्यावरण और विज्ञान हमारे मूल भूत अवयवों मे है। मनुष्य के जीवन आधार के रूप पर्यावरण और प्रकृति को वायु, जल, मृदा, वनस्पति इत्यादि को प्राप्त करते है। जिनका सन्तुलन हमारे जीवन को सन्तुलित एवं संयोजित करने मे उपयोगी है। वास्तव मे प्रकृति के बिना मानव जीवन सम्भव ही नही है। प्रकृति की सभी रचनाओं को पूर्णता है, सभी में प्रकृति की अदभुत शक्ति है तो प्रकृति की किसी एक ही वस्तु को लेकर उसका पूर्ण निरीक्षण करके तथा उसके आधारभूत रचना-सिद्धान्तों को जानकर हमे उसकी शक्ति, उसकी रचना-शक्ति

का रहस्य ज्ञात हो सकता है। जो उसकी रचनाओं में एक ही प्रकार से निहित है कलाओ के अन्तर्गत वनो की कटाई से काष्ट शिल्प व फनीचरों का निर्माण, जानवरो की खाल तथा बाल को प्राप्त कर रासायनिक रंगो तथा मूर्ति विसर्जन के द्वारा नदियो को प्रदूषित आदि कार्यो का दुष्प्रभाव हमारे पर्यावरण पर पड़ रहा है। विज्ञान एवं कला दोनो एक दूसरे से सदैव दूर रखे गये है। विज्ञान का सम्बन्ध मस्तिष्क से है तथा कलाओ का सम्बन्ध हृदय से है। विज्ञान के हानिकारक रूप मे कला को प्रभावित करने मे रासायनिक रंगो का उपयोग निरन्तर हो रहा है जिससे कलाऐ भी अपना वास्तविक रूप परिवर्तित कर रही है जिसे ये सभी अपनी पहचान खो रही है।

वर्तमान मे कला के द्वारा विज्ञान व पर्यावरण का जिस प्रकार दोहन हो रहा है उसी प्रकार विज्ञान भी कलाओ को प्रभावित कर रही है अतः आज की प्रासंगिकता को देखते हुए प्राकृतिक पर्यावरण को कलागत रूपो से सामन्जस्य रूप मे स्थापित करके हम अपने परिवेश को सन्तुलित रखने का प्रयास कर सकते है।

सन्दर्भ :-

1. बसंत निरगुणे, लोक की अवधारणा (आलेख) चौमासा (पत्रिका) अंक 65, जुलाई-अक्टुबर, 2004 पृ0-16
2. बसंत निरगुणे, लोक की अवधारणा (आलेख) चौमासा (पत्रिका) अंक 65, जुलाई-अक्टुबर, 2004 पृ0-17
3. बसंत निरगुणे, लोक की अवधारणा (आलेख) चौमासा (पत्रिका) अंक 65, जुलाई-अक्टुबर, 2004 पृ0-17
4. डॉ0 श्रीमती मधु श्रीवास्तव, बुन्देलखण्ड की लोक चित्रकला मार्च 2010 पृ0-16
5. डॉ0 श्रीमती मधु श्रीवास्तव, बुन्देलखण्ड की लोक चित्रकला मार्च 2010 पृ0-17
6. डॉ0 श्रीमती मधु श्रीवास्तव, बुन्देलखण्ड की लोक चित्रकला मार्च 2010 पृ0-32
7. डॉ0 श्रीमती मधु श्रीवास्तव, बुन्देलखण्ड की लोक चित्रकला मार्च 2010 पृ0-55
8. डॉ0 एन0पी0 गामीत, वन्य जाति हिन्दी आदिवासी जीवन केन्द्रित उपन्यासों में सास्कृतिक परिवेश जुलाई 2013 पृ0-51

अनुभूति

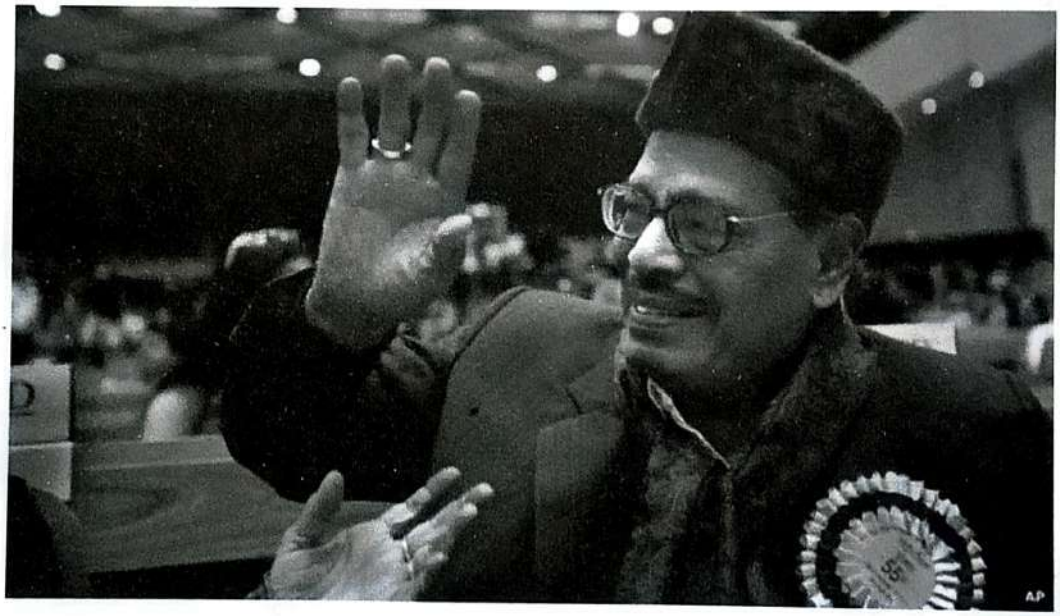

मन्ना डे

जीवन का उत्स है संगीत

डॉ. रामनरेश त्रिपाठी

कलाविद्, इलाहाबाद

'संगीत' जीवन का 'उत्स' है। यह केवल मानव जीवन तथ सीमित नहीं है, सम्पूर्ण चारचर में इसका अस्तित्व विद्यमान है। चराचर परमात्माका सृजन है। प्रत्येक जड और चेतन संगीत मय हैं नहीं से निकलने वाली 'कल कथ' की ध्वनि में भी संगीत का पृवाह है, वायु के क्यांकि से हिलके वाले पेड़ पौधे भी स्वर के प्रवाह में झूमते दृष्टिगत होते है। चिड़ियों की चह च-आहट में संगीतमय स्वर के दर्शन होते है। कीट पतंग, पशु-पक्षी सभी किसी ने किसी रूप में इस विद्या से जुड़े हुये है। आध्यात्मिक चिंता की दृष्टि से देखा जाय तो 'स्वर' ही तो ब्रह्म है। बच्चा माँ के गर्भ से बाहर आता है, उसका पहला स्वर रुदन भरा होता है, फिर उसमें संगीत की ध्वनी छिपी होती है। बच्चे के रोने की आवाज से परिवार के लोग समझ लेते है, बच्चे का जन्म हुआ है अथवा बच्ची का!

संगीत एवं कला दोनों एक दूसरे के पर्याप्त है। कला 'स्वर' के साथ भी समाविष्ट है और वाद्य यंत्रों के साथ भी बांस की लकड़ी से बनी बांसुरी के स्वर कितने कलात्मक भावों को पैदा करते है, किस प्रकार मानव जीव जन्तु पशु पक्षियों को मंत्र मुग्ध करते है, देखते ही बनता है, कछुवर की ध्वनि तो इतनी कर्ण प्रिय प्रतीत होती है कि विषैला पुंजग भी मंत्र मुग्ध होकर सुनता और उसके वशीभूत हो जाता है। ढोलक, मृदंग, डमरू, तबला आदि वाद्य मंत्र लकड़ी एवं चमड़े की कला से पोषित हैं, सितार तानपूरा बीन अवि वाद्य मंत्र भारतीय जन जीवन के अंग बन चुके है। बरसात में जब मेढ़क बोलता है तो ऐसा प्रतीत होता है कि वेद पाठ करने वाले विद्यार्थी वेदपाठ कर रहे है। गोस्वामी तुलसी दास ने तो रामचरित्रमानस मे स्पष्ट ही कर दिया है दादुर ध्वनि चहु ओर सुहाई। वेद .....समुदायी' दादुर के 'टर्र-टर्र। की ध्वनि में एक प्रकार के स्वर का समावेश है, जो 'वेदपाठ' का अहसास कराता हैं वेद पाठ करने वाले बटुओ, आर्भायों को देखिये सम्पूर्ण वैदिक .....उदात्त अनुदात के स्वरों से बंधी हैं, सामवेद तो गेय है ही। वेद की रचनओं में ही ..... समाहित है। इसी लिये वेद से जुडे हुये मंत्रों को वेदमंत्रों की संज्ञा दी गई। यद्यपि मंत्र का अर्थ है 'मननात्इति मंत्रः जो मग्न की जाय वह मंत्र है परन्तु अन्तर्गत में मंत्र अन्तर्नाद को जन्म देता है और स्वर–बहिर्नाद को कंठ से निकलने वाली ध्वनि ही स्वर का रूप ले लेतर है और सात स्वरों में बंध जाती है परन्तु मंत्र अन्तर्नाद के साथ संबंध बनता है और परमात्मा के साथ जोड़ देता है।

योगी जन इस को नाद ब्रह्म के नाम से जानते है। बिना परमात्मा तत्व का समावेश हुये नाद साधना अथवा संगीत साधाना का बोध हो ही नहीं सकता ळैं सुप्रसिद्ध सितार वादक अलाउद्दीन खा प्रतिदिन मैहर मैं अपने परसे पहाड़ी पर स्थित भगवती शारदा के दर्शन हेतु जाया करते थे। किसी ने पुछा आप मुस्लिम होकर .....दर्शन हेतु क्यों जाते है?

खा साहब का उत्तर था। मुझे अपने हर सितार के 'स्वर' में या शारदा के दर्शन होते है, फिर

उनके प्रत्यक्ष दर्शन तो मेरे लिये सौभाग्य की बात है। संगीत और ब्रह्म भक्ति दोनों एक है, इसमें हिन्दू मुस्लिम को विछद कहा है? ऐसे हजारों संत एवं फकीर हुये है, जिन्होंने नाचते-गाते, भक्ति संगीत की लय में खोकर परमात्मा के दर्शन कर अपने लक्ष्य की प्राप्ति की है। कबीर, सूर,रैदास, दादू, मीरा आदि जने कितने संत इसी भक्ति संगीत में खो कर इस दुनिया में प्रसिद्धि पायी और सदा सदन के लिये ऊपर हो गये है।

सम्पूर्ण सृष्टि का सृजन हार 'शिव तत्व' को माना गया है। शिव में ही सतोगुण, तमो गुण, रजोगुण अर्थात ब्रह्मा,विष्णु,महेश की संकल्प में है। वही .....शक्ति मय है। तात्विक दृष्टि से यही सत्य है। शिव इस संगीत के भी आकार विन्दु हैं। नटराज के रूप में उनकी संकल्पना नृत्य एक संगीत प्रधान है। 'डमरू' उनका वाद्य यंत्र ही नहीं सम्पूर्ण सृष्टि का नियायक है। 'नृत्यावसाने नट राज राजौ, निनाद ढक्कान नौ पंच पार, चौदह बार 'डमरू' के बनाने से माहेश्वर सूभों को जन्म होता है। इस माहेश्वर सूयो से ही सम्पूर्ण व्याकरण शास्त्र की रचना एवं स्वर विज्ञान का जन्म होता है। आन भी संगीत विद्या के जन्म दाता के रूप में शिव को नटराज स्वरूप ही सर्वर्थामान है.....तो संगीत भारत की आत्मा

धरती गाती हैं : लोक संस्कृति

आनन्द वर्धन शुक्ल

डी0. आई0 जी0, जयपुर, पूर्व-निदेशक, उ0 म0 सांस्कृतिक केन्द्र, उ0 प्र0

लोक संस्कृति हमारी वर्षो की विरासत हैं, वह सांस्कृतिक थाती हैं, जो धीरे-धीरे परिष्कृत हुई, वहीं हमारा शास्त्रीय गीत-संगीत के रूप में प्रतिठित हुआ और जो हमारी जीवन शैली तथा जीवन पद्धति है, खान-पान, आचार-विचार तीज त्योहार, वहीं हमारी 'लोक संस्कृति' हैं। यही धरती का गान है। हजारों वर्षो से प्रवाहमान जो थाती हैं, वह हमारी विरासत है, धरोहर है—वह लोक से ही पल्लवित व पुष्पित है—अर्थ यह है कि जो हमारी लोक संस्कृति हैं, लोकगीत है, लोक नृत्य व सब शास्त्रीय की नींव का पत्थर हैं उदाहरणार्थ उडीसा का शास्त्रीय नृत्य ओडिसी हैं, किन्तु इसके आधार में गोटीपुआ का लोक नृत्य अवश्य पारिदर्शित होता है इसी प्रकार अन्य विधाएं भी आपस में जुड़ी प्रतीत होती हैं रागों का आधार भी लोक गायन की परम्परा से है।

''लोक'' का अर्थ समूह से है अर्थात जो सब साथ करें वहीं वास्तविक अर्थो में लोक है यही हमारा रहन-सहन भी हैं हमारे पुराणों में जो संस्कार वर्णित हैं, उन सब से जुड़ी सभी क्रियायें लोक संस्कृति की जननी हैं। हमारा वेश, हमारा खान-पान, तीज त्यौहार, विवाह, चित्रकला व इनसे जुड़े गीत सभी तो लोक हैं। जो कुछ वाचिक परम्परा से हम आज तक सहेज कर लाये- वहीं तो ''कह नानी'', कहानी हो गई जो लोक गाथाओं, लोक कथाओं के रूप में अभी भी जीवित है। घर में हमारी माताऐं, बहनें हर उत्सव, त्यौहार, संस्कार के अवसर पर एक साथ बैठकर गाती थीं; वहीं लोक गीत हो गया, सवेरे वाला 'भोर का गान' संध्या की 'सांझी' तक चला गया पर यहां यह उल्लेखनीय हैं कि यह सब कुछ भारत के सन्दर्भ में, ग्रामीण परिवेश में ही पला बढ़ा, नगरों से इतर प्रकृति की गोद में पुष्पित हुआ और यह अतिषयोक्ति नहीं होगी कि 'प्रकृति से जुड़ाव ही हमारी लोक संस्कृति की आत्मा हैं।'

यहां यह भी कहना समीचीन होगा कि पूरे विश्व की धरोहर ऐसे ही लोक रूप में संजोयी गई। मैक्सिको की ''माया'' संस्कृति रही हो, या उत्तर अमेरिका की ''रेड इंडियन'' द्वारा या अफ्रीका के घने जंगलो में गाये जाने वाले गीतो की मधुरता ही तो ''फोक'' हैं या लोक हैं। यह उस नदी के समान हैं जो सतत, सरल, सहज बह रहीं हैं परन्तु दृष्टिगत नहीं हो पाती। यदि भारतीय सन्दर्भ में देखें तो जितने भी कार्य हमारी दिनचर्या के अंग बने वह परिष्कृत और परिमार्जित होकर जीवन में लोक रूप में रच बस गये।

यह भी उल्लेखनीय है कि इन्हीं लोक गीतों में पौराणिक गाथायें संजोयी हुई है। दक्षिण भारत हो या उत्तर भारत सभी के संस्कार (लोक) गीतों में पौराणिक कथाओं के माध्यम से बात कही जाती थी। पूर्वी उत्तर प्रदेश के गीतों की ही बानगी ली जाये तो दृष्टव्य होता है, वही परिदृश्य, जो राम चरित मानस या भागवत में वर्णित है। विवाह के गीतों में राम के विवाह का वर्णन है-

''राजा दशरथ के चार बेटवा
चारू सं बाड़े कुंवार हो
चार भैय्या में सुनर वर
सांवर, उनके तिलक चढाव हो''

निश्चित रूप से तिलक संस्कार में गीत गाते समय रामकथा साथ चल रही होती है। बिटिया विदा होके जा रही होती है तो जनक दुलारी सीता का स्मरण रहता है-

"जाई डोली पहूंची अवधपुर
छूटा जनक तोरा देश रे..."

एक और उदारण विदाई का -

"बड़ा रे जतन से हम
सिया जी के पोसलीं
सेहू रघुवर ले-ले जाय रे...."

अपनी पुत्री में सीता और कुंवर में राम के दर्शन–

"धनि धनि सिया
रूउरी भाग
राम वर पायो''

अवधी उदाहरण भी ऐसी ही गाथाओं से ओत-प्रोत है। सोहर का इससे अच्छा कोई उदाहरण नही हो सकता–

''अरे जुसुदा जी ठाढ़ी
औनावे कन्हैया केतों रोवे हो।''

हमारे महाकवि तुलसीदास ने भी अपनी रचनाओं में लोक से नाता नही तोड़ा। मूल रूप से अवधी में रामचरित मानस की रचना करते करते गोस्वामी जी ''रामलला नहछू'' तक आते आते सीधे लोक के सागर में उतरने से अपने को रोक नही पाये-

''कोटिन्ह बाजन बाजहि
दशरथ के गृह हो
देवलोक सब देखहि
आनन्द अति हिय हो''
नगर सोहावन लागत बरनि जात हो
कोशल्या के हर्ष हृदय समात हो-''

यह आंचलिकता मैथिल, वुन्देलखंडी, हरियाणवी, पंजावी, राजस्थनी लगभग भारत वर्ष के समस्त प्रान्तों के लोक गीतों में है। पुत्र के जन्म से लेकर नामकरण, अन्नप्राशन, यज्ञोपवित, विद्यारंभ, सगाई, तिलक विवाह, विदा - सभी में पौराणिक गाथायें व्याप्त हैं। रामजन्म, कृष्ण जन्म, राम विवाह व शिव विवाह सभी सन्दर्भ हमारे लोक गीतों में सहेजे गये है।

लोकगीत, लोक 'संगीत', लोकनृत्य, लोक साहित्य, अधिकांशतः मौखिक परम्परा से संबद्ध हैं उत्तर भारत का 'आल्हा' गायन हो या दक्षिण का 'यक्षगान'- सामान्यतः अभिव्यक्ति के माध्यम से ही विकसित हुये। पिछले कुछ वर्षो से संस्कृति मंत्रलय भारत सरकार के सतत् प्रयत्नों से लोक कलाओं को लिपिवद्ध एवं क्रमिक रूप से संरक्षित करने का सफल प्रयत्न चल रहा हैं। भारत के विभिन्न क्षेत्रिय सांस्कृतिक केन्द्रों का योगदान इस क्षेत्र में सराहनीय कहा जा सकता है। उच्च अध्ययन के क्षेत्र में भी लोकगीत, संगीत, साहित्य पर कार्य किये जा रहे हैं। पंडवानी पर शोध प्रबंध लिखे जा रहें है, कजरी पर काव्य लिखे जा रहें है, जो स्वस्थ संकेत है।

गायन परम्परा में लोक के उद्गार को समाहित किया गया हैं। बनारस की 'सोहर' और 'कजरी' पर विस्तृत काम हुआ हैं, तो मध्यप्रदेश की अकादमी ने पंडवानी पर विषद् अध्ययन किया है। अतीत की कथाओं को, गाथाओं को, लोकगायन को, व्यवस्थित करने से ही ज्ञात हुआ कि हमारी हजारों वर्ष प्राचीन विरासत कितनी सम्पन्न रही होगी। आश्चर्य होता हैं कि पश्चिम का अनुकरण करने वाले शायद ही जानते हो कि कथा वाचन की परम्परा हमारे ईसा पूर्व में बुद्ध और मौर्य काल में भी उपस्थित थी जब पश्चिम देश 'नैसर्गिक' रूप में जीवन व्यतीत कर रहे थे भारतीय साहित्य का जो विकास व उन्नयन आज देखने को मिलता हैं वह लोक की नींव पर ही आधारित हैं। रामायण, महाभारत, जैन एवं बौद्ध ग्रन्थ एवं पंचतन्त्र की कथाऐं, त्रिपिटक–यह सभी उदाहरण हैं कि लोक संस्कृति ने हमारी सामाजिक व्यवस्था को कितना सम्पन्न रखा हैं। वर्तमान परिपेक्ष्य

में 'लोक' की उपेक्षा सर्वत्र दिखाई देती है तथा कथित उच्चवर्ग ने इसको प्रभावित किया है और निहायत सतही तौर पर संगीत कार्यक्रमों का क्रियान्वयन हो रहा है।

कई वार देखने को मिलता है कि हमारे विद्यालयों में सिनेमाई अन्दाज में बच्चों को जो 'सांस्कृतिक गतिविधियां' सिखाई जाती है, ''ट्रैक'' पर छोटे-छोटे बच्चों को फिल्मी नृत्य सिखाना हमारी संस्कृति नहीं है। उत्तर और दक्षिण भारत में, पुर्वोत्तर में इतने लोक गीत व लोक नृत्य उपलब्ध है, जिनसे हमारी जागृत संस्कृति का परिचय मिलता हैं। हमारे बच्चों व युवाओं को उनका परिचय दिया जाना अति आवश्यक है। विभिन्न संस्कृतियों को जोड़ने का प्रयास भी किया जाना चाहिए। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भी लोक को आवश्यक रूप से जोड़ने की आवश्यकता है वर्तमान में जबकि पश्चिम में सांस्कृतिक प्रदूषण और क्षरण होने लगा है, वे लोग भी पूर्व की तरफ देख रहे हैं।

लोक संस्कृति का ही अविभाज्य अंग हैं, जनजातीय संस्कृति सशक्त जनजातीय लोक कथा, लोकचित्र, लोकगीत, लोकनृत्य, लोकगाथा अत्यन्त आकर्षक एवं भारतीयता से ओत-प्रोत है जैसा कि हमने आरम्भ में कहा, 'लोक' का अर्थ समूह है और यहीं सामुहिकता भारतीयता की आत्मा हैं, प्राण हैं- आवश्यकता है इसे उचित स्थान देने की।

इन्हीं लोक प्रस्तुतियों के माध्यम से विभिन्न राज्य स्वतन्त्रता या गणतन्त्र दिवस पर जन-जन को अपनी भव्य धरोहर व परम्परा का परिचय देते हैं। हमारी परम्पराओं को समृद्ध करने में विभिन्न पंथ, धर्म और उनकी मान्यताऐं भी भरपुर योगदान देती हैं। बंगाल का ''बाउल'' गायन हो या राजस्थान का ''लंगा'' गायन हो, कश्मीर का ''रूफ'' हो या उत्तर प्रदेश का ''सोहर,'' आपको इसी में धरती की सौंधी गंध प्राप्त होती हैं अर्थात हमारी लोक संस्कृति गाती है, धरती के गान को सहेजना हैं, समुन्नत करना है, विकसित करना है आईये धरती का गान सुने।

जसविंदर नरूला

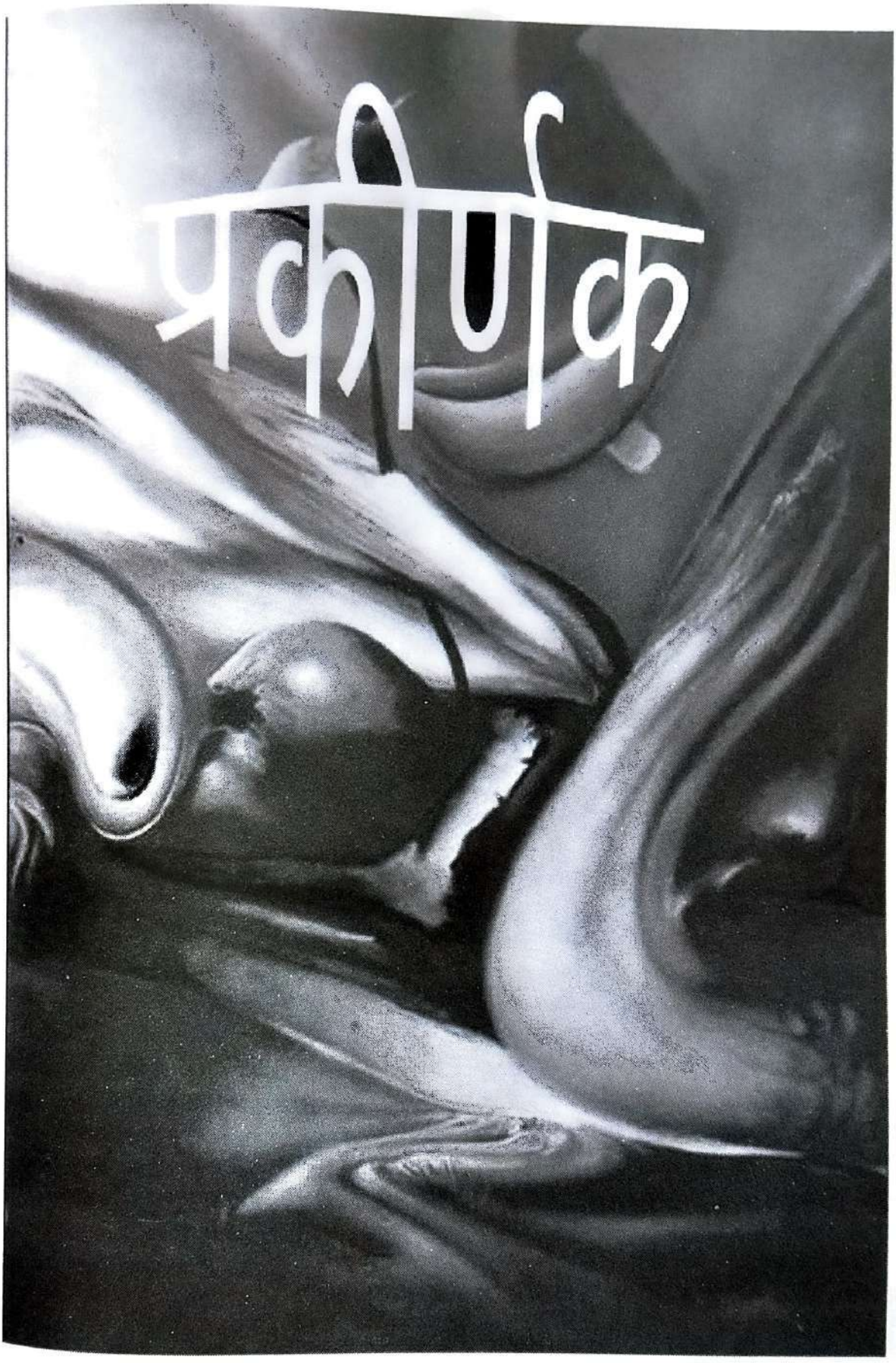
प्रकीर्णक

रवींद्र जैन

Devotional Muaic

Dr. Shanti Mahesh

Assistant professor Dept. of Music,
Queen Mary's College, Chennai

Devotion means 'devoutness' 'devine worship'. According to Indian thought Music is the merging of harmony and rhythm as a preparation for the merging of the human spirit with the divine spirit. It is just not the pleasing of the ear with pleasing sound. According to Indian thought, the manipulation of sound is a very potent instrument in the organization of everything : matter responds to rhythmic sound very sensitively and the mind responds to nuances of sound with equal sensitivity. All living beings- plants, animals respond to music. Although Snakes have no hearing capacity, they dance to the vibration of the Snake Charmer's Music (called 'Magudi' in Tamil Nadu).

Shakespeare speaks of the human being who has no thought for musi as a dangerous person who is fit perhaps for the strategems. He also speaks of "Orion on the dolphin's back". Orion was a musician who went on a tour to admire foreign countries and returned laden with gifts. The wicked crew of the ship decided to rob him and in their vile confidence they gave him an option: he could kill himself by jumping into the sea or let them kill him. Orion begged for a previlege to let him sing for a while and then he would gladly jump into the sea. So they allowed him to sing. The dolphins love music and so they listened to him with rapt attention and when he jumped into the sea, devoutly carried him on their back to the shore. Then Orion was able to complain to the King of the country. The sailors got punished when they reached the shore.

Greek mythology speaks of Orpheus. Greeks of the Classical age venerated Orpheus as the greatest of all poets and musicians; it was said that while Hermes had invented the lyre, Orpheus perfected it. Poets such as Simonides of Ceos said that Orpheus's music and singing could charm the birds, fish and wild beasts, coax the trees and rocks into dance, and divert the course of rivers. He was one of the handful of Greek heroes to visit the Underworld and return; his music and song even had power over Hades.

There are ever so many such references to the poer of music on the human and the animal mind. Mere rhythm can even unbuild and dissolve, modern science recognises, and that is why troops

generally do not march on bridges. In Indian literature there are many references to the impact of music on human beings and animals. Animals, children and the serpent, says a Sanskrit adage, enjoy music.

In Tamil, the word 'Isai' refers to music. The word, as a verb means getting into harmony. God Himself is conceived as the one who is in harmony. One example is Lord Shiva known as ' Isaikku aadum Perumaan' meaning ' dancing to music'. Saints talk of God as the spirit of music. One well-known description of God in Tamil is 'ezhu isaiyaay, isaippayanaay'- meaning the 'core, sequel' . Isai can also mean a Svara. Svara is the essence of music and therefore God is represented as the soul of music- the union of melody and rhythm. Melody and rhytm are initial steps by which many devotees bring the wandering mind to concentrating on something, when that has been achieved, the devotee merges the soul of Jiva with the Almighty. One of the Alvars speaks in a verse of the impact of Lord. Krishna's music on the cattle. Alvars, Alwars or Azhwars (Tamil: Aazhvaarkal - 'those immersed in god') were Tamil poet-saints of South India who espoused bhakti (devotion) to the Hindu god Vishnu or his avatar Krishna in their songs of longing, ecstasy and service.

In Indian parlance the word 'Sangitam' connotes the music of devotion. So, in a way, music in Indian idiom could mean devotional. It should be borne in mind that it could mean devotion, but there are innumerable other features which music shapes the universe.

The earliest Sanskrit literature is goverened by principles of music. The Veda-s may not have a very eveolved system of music, but are very finely organized in word and sound. The realization and effect of the soud organizations within them pervade the mind and atmosphere with spiritual bliss. The idea of the efficacy of Mantra-s on the mind and health is very well recognized. Music, hence is one Yoga enabling one bring the body, mind and soul together. Music helps meditation, contemplation. Any God is influenced by music. Ravana in Ramayana pleasing Lord. Siva with Saama Gaana and also being pardoned for his error by rendering tuneful music and pleasing the Lord.

Music always captures the heart and melts it. Bhakti is very essential in the age not very conducive to Gnana or Karma Yoga. Bhakti based on love, is easily attained and improved by music. Love to the Almighty can be visualizd as between man and woman, parent and child, master and servant and so on.

The easiest way in which one could make one's mind dwell on the Almighty, it is said, is through music. Music charms the mind and makes it capable of an overwhelming and overflowing love. Bhajana is also said to be a very excellent way of praying. So in the various parts of our country, various styles of Bhajanas have developed. The greatness of Bhajans is their ability to bring even the common mind into harmony with the divine.

The Bhakti Movement in Literature, History and also in the Social Life of our country was perhaps a re-action against the convention and ritual ridden approach of the people, emphasizing communal distinctions and division in unity . The yearning and feeling of devotion paved

way to realize God through channelised emotion. It very much suited those without scholarly, intellectual training and helped them to thaw, get relaxed with no rigidity. It served to reunite the society with division of intellectualization. Numerous good singers emerged bringing all together givining the key to experience the Divine. The movement could be illustrated with Vaishnavite cult producing inspired modern poet like Rabindranath Tagore at Bengal Bhajan tradition of Maharashtra travelling to South thruogh Marathas ruling Tanjavur a, Tamil town in the south. The cohesion of the Marathi tradition of Bhajana in Karnataka also can be observed. The merging resulted in evolving many admirable traditions in various parts of our country like the Harikatha convention, Bhajana Sampradaya wherein the people of South became adepts in Maratha Abhangs etc., at the sametime developing traditions specific to the languages there. The greaty Karnataka tradition is a marvel of mosaic styles and languages. The Unity in Diversity concept is well-illustrated in this Southern convention. The Trinity Tyagaraja, Muthu Svami Dikshita of Tanjavur the Tamil Trinity Arunachalakavirayar, Muthuthandavar, Marimuthapillai, other composers in Tamil Nadu, Purandaradasa and other Dasas of Karnataka, Maharaja Svati Tirunal and others in Kerala are prominent in this movement through their compositions.

Beyand the Vindhyas also this movement was strong. After all, Sikhism, Buddhism, Jainsm, Hinduism all have the stamp of devotion.

The Bhajan Tradition is also quite strong.

Kirtan is considered by Sikhs to be the highest form of adoration and praise. Shabads or hymns are at the heart of the Sikh worship service, ceremonies and celebrations. Songs or bhajans are selected from Sikh scripture whose compositions are poetic and written to be sung in to music. In the Sikh tradition, no ceremony, event, or occasion is complete without the hymns of kirtan being sung.

Kabirdas and others brought about a unification of the people of different religious persuasions.

The muslims are an intimate part of the musical tradition of the Hindustani music whose Ati Devta in music is considered to be Hanuman. The Islamic Tradition brought into Indian music rich traditions and the two merged toproduce one of the most beautiful systems of music which perhaps yet follows the Indian Theoretical structure. Hindus and Muslims share Sishya Paramparas with a whole-heartedness whic is undoubledly inspiring and depicting seeking the highest bliss through music with no barrier of culture, religion, language etc.,

The nations that stand divided politically stand as one in their great musical tradition. In a similar fashion, the musical dance traditions and Bhakti traditions of the south have brought together on the concert platform many communities. All the above mentioned unifications had been made possible by the devotional content of the music.

It must also be noted that the Bhakti Tradition permeates the aesthetic life in our country. Even when secular love is

spoken of in music,, the allegorical background always exists. The Jaavali-s and Padam-s of the South which are based on the erotic are still religious in content depicting the relationship between the Jeevatma and Paramatma. The Azhvars, Nayanmars and the like of Tamilnadu brought into Tamil a refined devotional mood which merged an ageless philosophical tradition with the most fluent human emotions. The Dasa tradition of Karnataka did it, too. Every region of our nation has its own devotional emanations of ths kind, unifying the people in spirit.

The outcome in terms of social life of all this cultural merger is a feeling of onenes among the various regions of the country, among the various religious and linguistic groups. India's great tradition of assimilation of new ways is the most concrete manifestation we have of this capacity for merger and unification. From time immemorial, ways of worship and ways of artistic expression have come into this country from all the four corners of the world and have mingled with native traditions to emerge new which still could find their basic grammar in the native tradition.

Bibliography:

The above is more a citaton from

i) the lessons and material I obtained form Late. Professor. V. Sankarasubramanian who was Head of the Department of English, The Madura College (Autonomous), Madurai. He was also a well-known Music lover and Critic at Madurai.

ii) Orpheus - Wikipedia, the free encyclopedia

iii) All About the Sikh Tradition of Gurbani Kirtan - Shabads and ...
sikhism.about.com

भारतीय संगीत का आध्यात्म से संबंध

डॉ. अंजना झा

कत्थक नृत्यांगना

मानव जीवन में संगीत मात्र मनोरंजन ही नहीं बल्कि अंतर्दृष्टि उत्तेजित करने का साधन भी है। संगीत साहित्य और दर्शन हमारी आत्मा के समान है। भाषाविद्व यह मानने लगे हैं कि संस्कृत ही मूल भाषा है और कई भाषाओं की जननी है। संगीत के विद्धान का उद्‌गम भी संस्कृत में ही पाया जाता है।

विश्व का कोई भी भाग संगीत की दिव्यता से इंकार नहीं कर सकता, चाहे पूरब हो या पश्चिम। पहले संगीत आत्मा की भाषा है। दो राष्ट्रों को या दो जातियों को जोड़ने में संगीत से बढ़कर कोई दूसरा साधन नहीं है। संगीत केवल मनुष्य से मनुष्य को ही नहीं अपितु मानव को ईश्वर के साथ जोड़ता है। प्रश्न स्वाभाविक है कि कब और कैसे संगीत मनुष्य को परमात्मा से जोड़ता है? ईश्वर में विश्वास के दो पहलू हैं - भगवान में एक विश्वास यह है कि मनुष्य सोचता है कि 'शायद भगवान हैं। यह विवेक द्वारा ईश्वर को न ही जानता, न ही ईश्वर को सामने देखता है। उसके लिए शायद भगवान स्वर्ग में है। उनका अस्तित्व है कि नहीं, वह नहीं जानता। जिसका ऐसा विश्वास है, थोड़ी सी भी अशांति, निराशा या अन्याय उसे भी समाप्त कर देता है। संगीतज्ञ के लिए संगीत ईश्वर से मिलाने का सबसे अच्छा रास्ता है। संगीतज्ञ जो ईश्वर में विश्वास करता है वह अपनी आत्मा का सौन्दर्य, सुगंध व रंग अपने संगीत के परमात्मा को दे देता है।

आध्यात्मिक दृष्टि से ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है जो निराकार का स्पर्श कर सके, सिवाय संगीत के। क्योंकि यह स्वयं भी अमूर्त है।

एक दृष्टिकोण यह है कि पूरी सृष्टि आंदोलन से हुई है, जिसे हिन्दुओं ने 'नाद' कहा है और बाइबिल ने 'शब्द' कहा है। जिसकी रचना सबसे पहले हुई। इस बिन्दु पर विभिन्न धर्म एक हो जाते हैं। इसलिए मनुष्य अन्य वस्तुओं से अधिक संगीत से प्रेम करता है। संगीत उसका स्वभाव है। संगीत आंदोलन से हुआ है और मनुष्य स्वयं भी आंदोलन (नाद) है।

भारत वर्ष में संगीत की शुरूआत भगवान शिव से हुई जो जोगियों के स्वामी थे। महान् योगी गुरू ने संसार को श्वास विज्ञान सिखाया है। सूफियों के बहुत बड़े संत थे अजमेर के शेख मोइनुद्‌दीन चिश्ती। उनकी मजार पर संगीत होता है। हिन्दू, मुसलमान दोनों वहाँ की यात्रा करते हैं। यहाँ यह दिखलाना है कि सत्य को जानने वालों का धर्म ही ईश्वर का धर्म है। महान भक्तों की प्रार्थना हृदय से उठकर संगीत के साम्राज्य में हो जाती हैं। शांति लाने के विभिन्न तरीके संगीत की सहायता से प्राप्त किए जा सकते हैं।

चार या पाँच सुरों के थाट की उत्पत्ति मनुष्य की स्वाभाविक मूल प्रवृत्ति में हैं जिसे मनुष्य के वाद्यों के आविष्कार करने में दिखाया है। पहला वाद्य

बाँसुरी थी जो कि मनुष्य की आवाज की प्रतीक हैं। यह स्वाभाविक लगता है कि जंगल में से एक बाँस लेकर उसमें चार छेद बनाए जहाँ अपनी ऊँगलियों के पोरों के बिना किसी प्रयत्न के रख सके और एक छेद नीचे बनाया जो कि पाँच स्वरों का राग बना। बाद में ही वैज्ञानिकों को ध्वनि या आंदोलन का ज्ञान हुआ। किन्तु मनुष्य ने जब उस लकड़ी पर हाथ रखा तो यह थाट स्वाभाविक रूप से ही निकला। एक महान मनोवैज्ञानिक शक्ति इससे जुड़ी हुई प्रतीत होती हैं इसका मानव स्वभाव पर बहुत प्रभाव पड़ता है एवं यह दर्शाता है कि प्रकृति से सीधे प्राप्त की हुई शक्ति उससे अधिक महान हैं, जिसमें एक नई कला की शैली की रचना करने के लिए मानव फेर बदल या परिवर्तन करता है।

एक भारतीय के लिए संगीत केवल मनोरंजन ही नहीं है। संगीत उसकी आत्मा की गहनतम माँगों का उत्तर है। मनुष्य केवल संगीत मात्र ही नहीं है, उसका एक मन भी है। शरीर सुख के लिए भोजन चाहता है। होता यह है कि मनुष्य केवल अपनी शारीरिक जरूरतों के लिए ही प्रत्यन करता है और अपने अंतः अस्तित्वों की जरूरत की ओर कोई ध्यान नहीं देता। उसे क्षणिक तृप्ति होती है फिर उसे भूख लगती है यह नहीं जानते हुए कि आत्मा मनुष्य के अस्तित्व का सबसे सूक्ष्म पक्ष है। इसलिए आत्मा की अचेतन इच्छा रह जाती है।

जीवन के दो रास्ते हैं समष्टिगत एवं व्यक्तिगत समानता में शक्ति है तो वैयक्तिकता में सौन्दर्य। संगीत का कलाकार सबसे पहले अपना तानपूरा मिलाता है एक सुर देने के लिए। जब वह तानपूरा या तंबूरा मिलाता है तो उससे वह स्वयं की आत्मा का सुर मिलाता है। इसका प्रभाव श्रोता पर ऐसा पड़ता है कि वह अक्सर बहुत देर तक शांति से प्रतीक्षा करता रहता है। जैसे ही उसे लगता है कि उसका सुर वाद्य-यंत्र के सुर से मिल गया है, उसकी आत्मा, उसका मन और शरीर सभी उस वाद्य के साथ एक हो जाते हैं। संवेदनशील व्यक्ति जब उस संगीत को सुनता है, यहाँ तक कि विदेशी भी समझ सकता है कि वह किस प्रकार से गा रहा है और किस प्रकार से अपनी आत्मा के सुर को सुर में मिला रहा है। उस समय तक वह ध्यानमग्न हो चुका होता है और जो लोग वहाँ उपस्थित हैं उन लोगों के साथ तादात्म्य हो जाता है। वह केवल वाद्य-यंत्र ही नहीं मिलाता अपितु श्रोताओं में से प्रत्येक को आत्मा की जरूरत को एवं उनकी आत्मा की माँग को, कि वे उस समय क्या चाहते हैं इसे अनुभूत करता है। सभी संगीतज्ञ ऐसा नहीं कर सकते। केवल श्रेष्ठ संगीतज्ञ ही ऐसा करने में समर्थ होते हैं जब वह अंशों का समायोजन करके स्वाभाविक रूप से गाना शुरू करता है तो मानो उसके संगीत ने श्रोताओं में प्रत्येक जीवन का स्पर्श किया क्योंकि यह वहाँ बैठी सब आत्माओं का उत्तर हैं।

संगीत का रहस्यवादी पक्ष ही सभी धर्मो का रहस्य रहा है। इस संसार के महान लोग ईसा, बुद्ध आदि समय-समय पर लोगों के सामने उदाहरण के रूप में आए हैं और उस पूर्णता को व्यक्त करते हैं जो आत्मा की वस्तु है। वह रहस्य जो इन महान धर्मो के हैं वे सभी इनके कार्यो में छिपा हुआ था, वह या मानव को उस ऊँचाई तक पहुँचना जिसे पूर्णता कहते हैं और यही सिद्धान्त पहले पाठ के रूप में संगीतज्ञ अपने छात्रों को देते हैं। शिष्य केवल अपने गुरू की नकल मात्र नहीं करता, बल्कि वह अपनी आत्मा को गुरू की आत्मा पर केन्द्रित करता है। वह केवल सीखता ही नहीं अपितु अपने गुरू में उत्तराधिकार भी प्राप्त करता है।

भारतीय संगीत का उद्देश्य मनुष्य की बुद्धि एवं आत्मा को प्रशिक्षित करना है क्योंकि ध्यान लगाने के लिए संगीत ही सबसे अच्छा रास्ता है। जब किसी वस्तु को किसी वस्तु पर ध्यान लगाने के लिए कहा जाए तो केवल ध्यान केन्द्रित करने के प्रयत्न मात्र से उसका चित्त को एकाग्र रखता है।

संगीत में सौन्दर्य के अतिरिक्त कोमलता है जो कि दिल में जान डाल देती है। सहृदय एवं सुंदर विचारों वाले व्यक्ति के लिए संसार में जीवन बहुत कठिन है।

यदि व्यक्ति अपने हृदय को संगीत में केन्द्रित कर ले तो उसका शरीर, आत्मा एवं मन पुनः स्वस्थ

हो जाते हैं और सही तरीके से सुरबद्ध हो जाते हैं। जीवन का आनंद मन और शरीर की सही सुरबद्धता में ही है।

भारतीय विचारधारा के अनुसार सभी कलाऐं अध्यात्मक की ओर उन्मुख है तथा कलाओं का अन्तिम उद्देश्य अध्यात्म तत्व की प्राप्ति तथा आत्मतत्व में लीन होना है।

डॉ. मुंशी राम शर्मा के अनुसार "मानव के सभी प्रयत्न दुख से मुक्ति पाने के लिये हैं। इस मुक्ति का मार्ग एक ही है। यही अध्यात्म पथ है। आध्यात्मिकता आत्मपरायणता है। शारीरिक वैभव अनित्य है। आत्मिक ऐश्वर्य ही नित्य है। उसी का सख्य प्राप्तव्य है, उसी की संगति ध्यातव्य है, उसी का स्वरूप ज्ञातव्य है। एक मात्र वही हमारा गन्तव्य है।

अध्यात्म धन ऐसा है जो जिसको प्राप्त हो गया है, वही दूसरों को देना चाहता है, दूसरों को भी उधर चलने की प्रेरणा देता है। जिसके प्राप्त कर लेने से सब कुछ प्राप्त हो जाता है, वही प्राप्तव्य है, वही आदर्श है।

सभी कलाऐं , विधाएं, शास्त्र उस एक ही तत्व की ओर उन्मुख हैं - जिसे हम सच्चिदानन्द, ब्रह्मा, परब्रह्म, परमात्मा, चैतन्य पुरूष आदि विभिन्न संज्ञाओं से सम्वोधित करते रहते हैं। कलाओ, विधाओं आदि का साधन यह मानव शरीर ही है, जिसमें आत्मा का वास है। वह आत्मा जो परमात्मा का एक अंश है। इसलिये जीवन के किसी पक्ष का अध्ययन अन्त में उसी परम तत्व की ओर अगसर करता है। जब अन्तिम लक्ष्य एक ही रहा तो भौतिक तत्वों की खोज हो या सूक्ष्मतम नाद तत्व की अथवा रस-तत्व की, जीव और ब्रह्मा के शास्वत सम्बन्ध को गुणीजन भूल नहीं सकते। अध्यात्म-परम्परा उनकी चेतना भी इतनी घुली-मिली है कि किसी भी विषय का निरूपण करने में कहीं न कहीं, किसी न किसी रूप में अवश्य व्यक्त होती है।

संगीत को महान कवि-संगीतज्ञ रवीन्द्रनाथ जी ने, वड़े ऊंचे आसन पर प्रतिष्ठित करके देखा है। संगीत को उन्होंने आध्यात्मिक अनुभूति का साधन माना है। उन्होंने यह अनुभव किया है कि संगीत द्वारा ही मुझे यह वोध होता है कि मुक्ति हमारी है, मै उस (मुक्ति) की अनुभूति कर सकता हूँ।

आध्यात्मिक समग्र भारतीय जीवन-दर्शन की मूलभित्ती रही है। परम् तत्व के अनुसन्धान की चेष्टा हमारे सभी प्रयासों को चिरकाल से निरन्तर अनुप्राणित करती रही है। हमारे मनीषी कलाकारों ने विश्व के प्रत्येक रूप में सर्वव्यापी दिव्य सत्ता का साक्षात्कार किया है तथा अति श्रृंगारिक समझी जाने वाली वस्तुओं में भी अध्यात्म तत्व की पृठभूमि को अक्षुण्य रखा है।

अध्यात्म तथा संगीत का गठवन्धन भारतीय परम्परा में दृढमूल रहा है। भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार संगीत श्रान्त मस्तिष्क के लिए केवल मनोविनोद का साधन नहीं, वरन् ईश्वर के अनुसंधान से परम मंगल का विधायक है।

पूर्व के अध्यात्मवादी आज की अपेक्षा पहले कहीं अधिक संगीतज्ञ थे। हिन्दुओं के आध्यात्मिक महापुरूषों मे सवसे महान नारद तथा तुम्वरू भी संगीता थे। इन्होंने श्रुति, स्वर, ताल, राग, वाद्य प्रभृति से देवी-देवताओं के सम्वन्ध स्थापित किये। योगियों के ईश्वर महादेव ने रूद्र-वीणा का आविष्कार भी किया और उसका वादन भी किया। उन्होंने ताण्डव -नृत्य भी किया और लास्य-नृत्य की सृष्टि उनकी अर्धांगिनी पार्वती ने की। श्री कृण ने गोप-गोपी सदृश मानवों को ही नहीं अपितु वृक्षों तथा सरिताओं जैसे जड़ पदार्थो को भी आकर्षित करते हुए वंशी-वादन किया। विद्या की देवी सरस्वती को सदैव वीणा धारण किये हुए चित्रित किया जाता है। ये सब तथ्य प्रमाणित करते हैं कि विगत युगों मं आध्यात्मिक महापुरूषों के जीवन में संगीत का महत्वपूर्ण स्थान था। कवीर, सूरदास, तुलसीदास, जयदेव, रामदास, तुकाराम, बैजूबावरा, हरिदास स्वामी, त्यागराज, श्यामा शास्त्री, मुतू स्वामी तथा मीरा जैसे भक्तगण महान उपासक तथा संगीत निष्णात थे। हज़रत इनायत खां, सूफी फ़रमाते है कि "विशेष घड़ी अथवा दैनिक चक्र के समय किसी विशेष राग का गाना शुद्ध रूप में आध्यात्मिक धारणा पर आधारित है।

निष्कर्षतः प्राचीन स्मृति, पुराणादि काल के प्राप्त उल्लेखों से हम संगीत के आध्यात्मिक और लौकिक ऐसी दो परम्पराओं में बांट सकते हैं। एक है जीवन को पवित्र बनाकर आत्मोन्नति द्वारा मोक्ष-मार्ग पर ले जाने वाला आध्यात्मिक संगीत और दूसरा, जीवन को भ्रष्ट बनाकर आत्मा को अधःपतन की ओर ले जाने वाला भौतिक यानि दुन्यावी संगीत। आध्यात्मिक संगीत में अपरिमेय जीवन का आनन्द है, प्रेम, भक्ति का बहता हुआ अविरल स्त्रोत है, आत्मोन्नति है, सदाचार की वृद्धि है, राष्ट्रीयता व जातीयता की स्फूर्ति है और जीवन का पवित्र मनोरंजन है जबकि भौतिक यानि दुन्यावी संगीत में वासना -पोषक प्रवृत्ति है, अनैतिक मनोरंजन है।

संदर्भ सूची -

1. चौबे डॉ० सुशील कुमार - हमारा आधुनिक संगीत।
2. वर्मा डॉ० राजीव - सूर - साहित्य में संगीत प्रवाह।
3. परांजपे श्री शरद चन्द - लेख 'संगीत कला की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि'।
4. परांजपे शरतश्रीधर - भारतीय संगीत का इतिहास।
5. जैन विजय लक्ष्मी - संगीत दर्शन।

संगीत और योग
(ध्रुपद-गायन-शिक्षण पद्धति के संदर्भ में)

मधुछन्दा दत्त

संगीत सेवी, वाराणसी

योग-साधन भारत की श्रेष्ठतम देन है। जिन सत्यो की उपलब्धियां मानव देह को ही प्रयोगशाला बनाकर 'चित्तवृत्ति निरोध' के माध्यम से योगी को हुई, उनमें से 'नाद और संगीत' की उपलब्धियां महत्त्वपूर्ण हैं। भारतीय योगी ने आज से हजारों वर्ष पूर्व जिन सत्यों को साधन बनाकर 'आत्मसाक्षात्कार' की अपूर्व उपलब्धि से वह जीवनमुक्त हुआ था, आज विज्ञान ने उन सत्यों को जाना और माना है।

शब्द की शक्ति और सार्थकता का विचार कर योग के प्रसंग में 'ध्वनि' शब्द से नादात्मक अर्थ का ग्रहण करना उचित है क्योंकि युगचेतना शब्दों के माध यम से ही मौलिक अभिव्यक्ति प्रकट करती है। वैयाकरणों ने जिसे 'स्फोट' कहा है, साहित्यिकों ने इसे 'ध्वनि' से अभिव्यक्ति किया और योगियों ने 'नाद' कह कर एक नवीन शक्ति एवं दिशा प्रदान की। साध ारण वोलचाल में तथा शास्त्रीयभाषा में भी 'योग' शब्द का अर्थ मेल है। गणितशास्त्र में 'योग' का अर्थ जोड़ना प्रसिद्ध ही है। किंतु पारिभाषिक भाषा में 'योग' शब्द उस दर्शनशास्त्र के लिए रूढ़ हो गया है, जिसका ध ेय चेतन का समष्टिचेतन के साथ संबंध स्थापित करना है। 'योग' वह शक्ति है, जिसका प्रभाव जीवात्मा उस परमात्मा के साथ युक्त है।

हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नाऽन्यः पुरातनः

योगतत्वोपनिषद् में निहित उपर्युक्त श्लोक के अनुसार योग विद्या के आदि आचार्य महर्षि हिरण्यगर्भ हैं। किंतु आज हमें महर्षि पतंजलि का प्रामाणिक शास्त्रीय ग्रंथ 'योगसूत्र' ही उपलब्ध है। इस ग्रंथ में योगविद्या का सूत्रों के माध्यम से दिग्दर्शन कराया गया है। योग के चार विभाग—मंत्रयोग, लययोग, हठयोग तथा राजयोग के उपनषिदों में प्राप्त है।

लोकजीवन में हठयोग ही योग के नाम से रूढ़ है। अतः 'राजयोग' की आधारभूमि तथा मंत्र और लययोग के विलयस्थानरूप 'हठयोग' को ही सामग्री के रूप में ग्रहण किया है। 'राजयोग' का प्रारंभ मन से और 'हठयोग' का सीधा संबंध शरीर से है। संपूर्ण सृष्टि को सूक्ष्मरूप से सहेजे 'नरदेह' का पूर्ण उपयोग तथा दर्शन 'राजयोग' में वैसा नहीं जैसा 'हठयोग' में है।

एवं विधे तु देहे.....प्रसादयन्ति धीमनतो भुक्ति-मुक्तिमुपायतः

भारतीय हठयोगी और संगीतकार दोनों ने ही अपने प्रयोग का क्षेत्र चयन किया वह 'नरशरीर' ही था इस कथन का पुष्अि संगीतरत्नाकर में उल्लिखित उपर्युक्त श्लोक से ही होती है। जो समग्र ब्रह्मांड का ही लघुरूप है। वही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का साधन है। जन्मजन्मांतरों के संचित-संस्कारों के भोग का उपाय भी एक मात्र 'नरदेह' ही है। उसी देह को साधन भूमि बनाकर उसमें 'चेतन' की स्थिति कहां और कैसे है उसकी खोज करते हुए स्वानुभूतियों के आधार पर जिन अपूर्व तथ्यों को पाया, उन्हें ही इन योगियों ने सामाजिक जीवन के पोषण तथा उन्नति के हेतु दे दिया। उन उपलब्धियों में से 'नाद तथा संगीत' महत्त्वपूर्ण हैं। योगियों ने 'नादतत्त्व' की शक्ति तथा उसके स्वरूप का सूक्ष्मातिसूक्ष्म और विशद विवेचन अपने सुदीर्घ आध्यात्मिक अनुभवों से किया है। प्रत्यक्षदर्शन से बढ़कर अन्य किसी साधन

से किसी पदार्थ का पूर्ण ज्ञान नहीं प्राप्त हो सकता। प्रयोगात्मक होने से 'योग' ही एक ऐसा साधन है, जिसके द्वारा 'चक्रभेदन' और 'कुंडलिनी' जागरण की प्रक्रियाओं के मध्य साधक-योगी ने शब्द, ध्वनि तथा स्फॉट के सूक्ष्मभेदक तत्त्व को आकार, वर्ण, रूप-रंग के साथ देखा है, तभी उसे (शब्द को) नाट्यशास्त्र में एक नई संज्ञा 'नाद' प्रदान की। प्रकाश से भी अधिक उपयुक्त पथ-प्रदर्शक, अप्रतिहित गतिमान नादतत्त्व है।

मकरंद पिवन भृङ्गो गन्धान् नापेक्षते यथा।
नादासक्तं सदा चित्तं विषयं न हि कांक्षते॥
नियामनसमर्थोयं निनादो निशिताङ्.कुशः।
नादोऽन्तरङ्.गबंधने वागुरायते॥

नादबिंदुपनिषद् में उल्लिखित उपर्यक्त श्लोक में मन को संयमित करने की अपूर्व शक्ति का नाद में होना बताया गया है।

अक्षरं परमो नादः शब्दब्रह्ममति कथ्यते।
मूलाधारगता शक्तिः स्वधारा बिंदुयपिणी॥
तस्यामुत्पद्यते नादः सूक्ष्मबीजादिवाङ्कुरः।
ताम्पश्यन्तीं विदुर्विश्वं यया पश्यन्ति योगिनः॥

योगशिखोपनिषद् में निहीत उक्त श्लोक में भी नाद के स्वरूप तथा उत्पत्ति का विवरण में बताया गया है कि परब्रह्म की इच्छाशक्ति ही ब्रह्मनाद रूप है। उसे नाद उत्पन्न होता है। उसी को 'पश्यन्ती' के रूप में लोग जानते हैं। नाद की उत्पत्ति के क्रम में 'नाद' ही 'पश्यनती' वाक् है ऐसा कहकर उसकी दर्शन-शक्ति की ओर संकेत किया है। उष्णता का दृश्यरूप 'प्रकाश' है। संगीतरत्नाकर में भी 'प्राणागिनसंयोग' को नादोत्पत्ति का कारण कहा गया है, जैसे—नकारं प्राणनामानं दकारमनलं विदुः।

जातः प्राणाग्निसंयोगात्तेन नादोऽभिधीयते।

नाद अपने श्रव्यरूप के साथ गति का दृश्यरूप भी है। उष्णता, नाद और गति परस्पर सापेक्ष है। नाद के लिए गति आवश्यक है, और गति के होते ही प्रकाश उत्पन्न होता है। नादविंदुपनिषद में उल्लिखित 'ब्रह्मप्रणवसन्धाननादज्योतिर्भयः शिवः' अथवा 'ज्योतिर्मयः शिवो नादः' आदि वचनों से उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि होती है।

प्रारंभिक अवस्था में अभ्यासरत योगी अनेक प्रकार के महान्, गंभीर, घन और तीव्र नाद सुनता है। ज्यों-ज्यों अभ्यास बढ़ता जाता है, तयों-त्यों वह सूक्ष्म-सूक्ष्मतर नादों को भी सुनने लगते हैं। इस कथन से यह स्पष्ट है कि योगी ने स्थूल ध्वनि से लेकर सूक्ष्म-सूक्ष्मतर ध्वनि तक क्रमशः सुना है। योग के प्रभाव से ही मतंग मुनि की बृहद्देशी में 'प्राण' का स्थान ब्रह्मगंथि के मध्य में बताया जब कि वैदिक परंपरा में 'प्राण' की स्थिति 'हृदय' पर कही गई है। इसीलिए मुनि ने 'नाद-पद्धति' की 'उर्द्धगामिता' का संकेत दिया है। पंचविध नाद की चर्चा भी की है। इसे योगियों ने देह में पाया है, किंतु शार्ङ्गदेव ने स्पष्ट बताया है कि केवल इनमें से 'तीन प्रकार' का नाद ही संगीत के व्यवहार में आता है। संगीतरत्नाकर में निहीत गमक का जो लक्षण प्राप्त है उसे आत्मसाथ करने की प्रक्रिया को ही योग कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी क्योंकि इन गमकों का अभ्यास के द्वारा उपलब्धि संभव है। रत्नाकरोक्त गमक के पंद्रह प्रकार के दृष्टि से प्रशिक्षित करने की प्रणाली विशेष रूप से ध्रुपद गायन शैली के डागर परंपरा में आज भी क्रियान्वित है। उक्त 15 प्रकारों में से छः प्रकार के आधार कम्प हैं, शेष छः भेदों का संबंध वक्रता, त्रिस्थान व्याप्ति, कोमलता, एक स्वर पर अन्य स्वर का आधार, स्वरों की ऊपर की ओर गति और नीचे की ओर गति से है। इन भेदों को आत्मसाथ करके स्पष्टरूप से प्रस्तुत करने की अवस्था प्राप्त करना योग सापेक्ष ही है। इसके अतिरिक्त सूक्ष्म-सूक्ष्मतर नादों को भी सुनने की अनुभूति उक्त साधना से संभव है जिससे हम योग का ही पर्यायवाची कह सकते हैं। मुझे अपने गुरुमुख से (पंडित ऋत्विक सान्याल) सूक्ष्म-सूक्ष्मतर नादों को भी सुनने की अनुभूति है एवं नाद-साधना योग ही हे यह प्रयोग में ही प्रमाणित होता है।

संदर्भ ग्रंथ-सूची

नाट्यशास्त्र, अभिनव भारती-व्याख्या सहित
योगशिखोपनिषद, प. ए. महादेव शास्त्री
नादविन्दूपनिषद्, पं. ए. महादेव शास्त्री
भारतीय संगीत-शास्त्र का दर्शनात्मक अनुशीलन, विमला मुसलगांवकर

सांगीतिक रचनाओं में रस की अभिव्यंजना

श्रेया श्रीवास्तव

शोधार्थी, गायन विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

संगीत द्वारा रस की अभिव्यक्ति सहजता से की जा सकती है। संगीत का मुख्य लख्य ही रस परिपाक है। रसात्मकता ही संगीत का प्राण है। संगीत में भाव तथा रस की प्रधानता होती है, क्योंकि मानव मन का सम्बन्ध बुद्धि और भावना दोनों से रहता है। अतः कला की दृष्टि से संगीत में केवल भावना ही नहीं, बल्कि बुद्धि का भी स्थान है। कला प्रदर्शन में गायक-वादक बुद्धि द्वारा चमत्कार का प्रदर्शन करके आनन्द प्रदान करते हैं। वैदिक, पुराण, रामायण और महाभारत इन सभी के समय में नाटक और संगीत द्वारा रस की निष्पत्ति होती रही है।

संगीत के सम्बन्ध में विविध रसों की चर्चा का मूल आधार भरत मुनि के द्वारा वर्णित ''संगीत रस सिद्धान्त है''। उन्होंने संगीत के स्वरों का विविध रसों से सम्बन्ध इस प्रकार बताया है-मध्यम, पंचम स्वर हास्य व श्रृंगार रस के लिए, शड्ज, ऋषभ का प्रयोग वीर, रौंद्र व अद्भुत रस के लिए, गंधार व निषाद का प्रयोग करूण रस के लिए तथा धैवत का प्रयोग वीभत्स व भयानक रसों के लिए करना चाहिए। इसके अतिरिक्त भरत मुनि ने हास्य श्रृंगार रस के लिए विलंबित लय तथा वीर, रौंद्र, अद्भुत, वीभत्स व भयानक रसों के लिए द्रुत लय को उपयुक्त बताया गया है।

संगीत के द्वारा रसाभिव्यक्ति में शास्त्रीय राग गायन का विशेष महत्व है। संगीत के सम्बन्ध में जो भी संगीत द्वारा रस की प्राप्ति होती है वह राग, ताल, स्वर, गीत, शैली, लय, वाद्य और कविता के अर्थ से निर्धारित होती है। मूल रस तो एक ही होता है परन्तु पूरी बंदिष की रचनाओं में तानों, गमकों, लय, मींड, आलाप अर्थात् राग की हर क्रियाओं में भिन्न-भिन्न रसों का तिरोभाव-आविर्भाव हुआ करता है। भरत कृत नाट्यशास्त्र में बताया गया है कि जिस प्रकार भोजन के रस-वेत्ता अनेक पदार्थों से युक्त व्यंजनों का आस्वादन करते हैं, उसी प्रकार अनेक भाव तथा अभिनव से युक्त स्थायी भावों का सहृदय-जन मानस आस्वादन करते भाव के द्वारा ही रस उत्पन्न होता है। हम जिस भाव से राग की बन्दिश गाते हैं रस उसी भाव में दिखता है। जैसे-यदि हमारे गाने में खुशी झलकती है तो वह श्रृंगार रस होगा, यदि रूदन है तो उसमें करूण रस की झलक दिखेगी। जैसे-नाट्यशास्त्र में कहा गया है कि-

''यथा बीजान्द्रवेद् वृक्षो वृक्षात् पुष्पं फलं यथा।
तथा मूलं रसाः सर्वे तेभ्यो भावा व्यवस्थिताः।।

''ना.शा./1/39

अर्थात् जैसे बीज से वृक्ष और फिर क्रमशः उससे पुष्प तथा फल उत्पन्न होते हैं, वैसे ही रस मूल है, उसी पर भावों की स्थिति अवस्थित है।

चार मूल रसों से आठ रसों का उद्गम-

''तदेषां रसानामुत्पत्तिवर्णदैवत-निदर्शनान्याभिव्याख्यास्यामः।
तेशामुत्पत्तिहेत-त्वारो रसाः। तद्यथा-श्रृ-रो रौद्रो वीरो वीभत्स इति।

अत्र शृं-राद्धि भवेद्वास्यो रौद्राश्च करूणो रसः।
वीराच्चैवाद्भुतोत्पत्तिर्वीभत्साच्च भयानकः।।''

ना.शा./1/40

अतएव इन रसों की उत्पत्ति वर्ण, देवता का वर्णन करते हैं। इन रसों की उत्पत्ति हेतु रस चार हैं। यथा-श्रृंगार, रौंद्र, वीर तथा वीभत्स। इनमें श्रृंगार से हास्य की, रौंद्र से करूण की, वीर से अद्भुत की तथा वीभत्स से भयानक रस की उत्पत्ति होती है।

भरतमुनी ने अपने ग्रन्थ 'नाट्शास्त्र' के 6वें अध्याय मे रस एवं भावों का विस्तृत विवेचन किया है। उन्होंने अलग-अलग भावों से भिन्न-भिन्न रसों के निष्पत्ति का वर्णन किया है। भरत जी ने कुल आठ रसों की व्याख्या की है। जैसे-श्रृंगार, करूण, हास्य, रौंद्र, वीर, भयानक विभत्स व अद्भुत रस।3 वैसे शास्त्रीय संगीत मे मुख्यतया श्रृंगार, करूण, वीर वृत्तांत रसों का ही समावेश है। बाद के विद्वानों ने 9 रसों का वर्णन किया है।

हमारे भारतीय संगीत में अनगिनत राग हैं और हर राग की अलग-अलग कई बन्दिशें रची गई हैं, हर बन्दिशों की रचनाओं के भाव व रस भी अलग-अलग हैं। अर्थात् एक ही राग में बन्दिश के द्वारा रस बदलता रहता है।

कुछ मुख्य रचनाओं में रस निष्पत्ति का वर्णन इस प्रकार है-

राग भैरव- वात्सल्य रस
लालन जागो रैन गई अब
इत उत बोले काग दुवारे।
भोरहि आये संग सखा तोरे
'रामरंग' दरस तिहारे।।''

अर्थात् राग भैरव की इस रचना में वात्यल्य रस की अभिव्यंजना की गई है, जिसमें मां अपने बेटे को सुबह बड़े प्यार से जगाती है।

राग यमन, वियोग श्रृंगार-

''अरी एरी आली पिया बिन
सखी कल न परत मोहे हरि दर्शन को।
जबसे पिया परदेश गवन किन्हों
रतियां कटत मोरी तारे गीन-गीन।।''

अर्थात् इस रचना में वियोग श्रृंगार का वर्णन किया गया है, जिसमें नायिका अपने पति के परदेश जाने का वियोग कर रही हैं।

''राग जोग, संयोग श्रृंगार-
साजन मोरे घर आये
मेरो मन सुख पाये।
मंगल गावो चौक पुरावो
प्रेम पिया हम पाये।।''

इस रचना में नायिका द्वारा प्रवासी प्रियतम के घर लौटने पर अपने हृदय से उत्साह और प्रेम को व्यक्त किया गया है। नायिका अपने पति के घर आने से अत्यन्त प्रसन्न है, क्योंकि उसकी चिरकालिक प्रतिक्षा आज पूर्ण हुई है। उसका मन सुख व आनन्द की प्राप्ति कर रहा है और वह उसके स्वागत, अभिनन्दन के लिए अपनी सखियों को प्रेरित कर रही है कि वे मंगल गीत गायें तथा नायक की अगवानी में सुन्दर अल्पनाओं का निर्माण भी करें क्योंकि प्रेम रस से परिपूर्ण उसका प्रिय आज उसके समीप विद्यमान है।

राग कल्याण, भक्ति रस-

गणपति गजानन देवा, जगत वन्दन नन्दन के भवानी के।
सुमिरत विघन विनासत, 'रामरंग' ऐसो सुत षिव भवानी के।।

अर्थात् इस रचना में गणेंश जी की वन्दना की जा रही है अतः यह भक्ति रस है।

राग अहिर भैरव, ध्रुपद, वीर रस-

''प्रथम मान ओंकार, देव मान महादेव
विद्यामान सरस्वती नदिमान गंगा।
गीत को संगीत मान, संगीत को अक्षर लो मान
वाद्यमान मृदंग, नृत्य मान रम्भा।।''

संगीत एवं अध्यात्म का परस्पर अंतर्सम्बन्ध

नेहा त्रिपाठी

शोधार्थी, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

हमारा संगीत एक भावनात्मक एकता भी है और आध्यात्मिक इकाई भी। इतिहास में संगीत को कहीं तो ईश्वर प्राप्ति का मार्ग माना जाता है। तो कहीं उसे ईश्वर का पर्याय, इसी कारण संगीत को आध्यात्मिक अभिव्यक्ति का साधन मानकर उसकी उपासना की गई है।

अध्यात्म शब्द स्वयं में गहन साधना तथा विस्तृत आस्था का प्रतीक है। अध्यात्म शब्द 'अधि' उपसर्ग तथा 'आत्मन्' शब्द से मिलकर बना है। आत्मा व परमात्मा से सम्बन्धित समस्त मान्यताएं, विचार, अनुभूतियां आदि अध्यात्मवाद की विषय-वस्तु है। अध्यात्म उसे कहते हैं जो यह विश्वास दिलाता है कि जगत एक शाश्वत नैतिक व्यवस्था है तथा सभी प्राणी इन नियमों को मानने के लिये बाध्य है।

संगीत ओंकार स्वरूप ईश्वर की नादात्मक अभिव्यक्ति है। इसे मानवीय संवेदनाओं को व्यक्त करने का माध्यम मानते हुये जीवन लक्ष्य को प्रतिपादित करने की विद्या भी कहा गया है।

आध्यात्मिक विकास का संबंध आत्म संतोष से होता है। विशुद्ध वाद्य संगीत हमारी इन्द्रियों को गति प्रदान करता है। इसलिये उसका दर्शन से घनिष्ठ संबंध है। दार्शनिक चिन्तन का भी अन्तिम लक्ष्य ''आत्मानं विधि'' अर्थात् आत्मा को जानने का प्रयास है। दर्शन का प्रारम्भ ब्रह्मा जिज्ञासा से होता है। अध्यात्म का अर्थ है आत्मा में अर्थात् स्वयं में लीन रहना। संगीत का एक पक्ष सदैव आध्यात्मवादी रहा है। भारत में उसे मार्गी संगीत कहते हैं जो मोक्ष मार्ग की ओर प्रेरित करता था। जन साधारण के मनोरंजनार्थ प्रयुक्त होने वाले संगीत को देशी संगीत की संज्ञा दी जाती थी। आज मार्गी संगीत के अंतर्गत शास्त्रीय संगीत को और देशी संगीत के अंतर्गत लोक संगीत को रखा जा सकता है। तब मार्गी संगीत के अंतर्गत वैदिक ऋचाओं का गायन किया जाता था। इसे समगान भी कहा जाता था।

संगीत साक्षात ईश्वर-स्वरूप है भारतीय दर्शन में सृष्टि की जो स्पन्दनात्मक कल्पना की गई है वह इस जटिल समस्या को संगीत की भाषा में समझने और अनुभव करने का सरल प्रयास है। सभी ग्रंथ-भरतमुनि-कृत ''नाट्यशास्त्र'' विष्णुधर्मोत्तर पुराण, 'बृद्देशी' तथा 'संगीत रत्नाकर' आदि उसी चिंतन धारा के क्रमिक सोपान करे जा सकते है।

Indian Culture has its roots in a great pre-historic civilization. the antiquity of Indian culture is Proverable. Music in India was deeply associated with religious and social life of people. It is still hand maid of religion.

भारतीय संस्कृति के विकास का इतिहास ही भारतीय संगीत का इतिहास है। संस्कृति में विभिन्न मानव धर्मों, अध्यात्म तथा दर्शन का मिला-जुला स्वरूप पाया जाता है। विभिन्न विद्वानों का मत है कि सृष्टि की रचना किसी अदृश्य शक्ति ने की है

यह ध्रुपद की रचना है, जिसमें ईश्वर के प्रति प्रेम का वर्णन है और इस रचना में वीर रस की अभिव्यंजना की गई है।

बन्दिशों के साथ-साथ रागों का स्वरूप, रस वस्तुतः काकुभेद, स्वरों के उतार-चढ़ाव गायक के द्वारा ही उभरता है। कलाकार अपने चातुर्य और कुशलता से ही सृष्टि करता है। उदाहरण- राग अड़ाना, आभोगी, आसावरी, काफी, गौड़ मल्हार, चन्द्रकौंश, जौनपुरी, दरबारी कान्हड़ा, बागेश्री, भीमपलासी, मालकंस आदि रागों में कोमल गान्धार और निषाद का प्रयोग होता है परन्तु इन सभी रागों का अपना अलग-अलग रस है, क्योंकि कलाकार अपनी कलात्मकता व प्रतिभा से इन्हीं दो स्वरों को प्रत्येक राग में अलग-अलग ढंग से इस प्रकार प्रस्तुत करता है कि उनका भाव रंग ही बदल जाता है। जिस प्रकार राग भूपाली-देशकार के स्वरों में समानता है, परन्तु प्रस्तुतीकरण व स्वर लगाव से दोनों रागों का रस रूप अलग हो जाता है, उसी प्रकार एक ही राग में विभिन्न शब्दों के द्वारा उस एक ही राग में भिन्न-भिन्न रसों की अभिव्यक्ति होती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. संगीत रत्नावली, अशोक कुमार यमन, अभिषेक पब्लिकेशन्स चण्डीगढ़, प्रथम संस्करण-2008, पृ.सं. -265
2. भारतीय संगीत का सौन्दर्य विधान, डॉ. मधुर लता भटनागर, पृ.सं.-213
3. सौन्दर्य,रस और संगीत, डॉ. स्वतंत्र शर्मा, पृ.सं.-101
4. श्री भरतमुनिप्रणीतं सचित्रम्, नाट्यशास्त्रम्, श्री बाबूलाल, शुक्ल शास्त्री, , चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी, पृ.सं.- 287
5. श्री भरतमुनिप्रणीतं सचित्रम्, नाट्यशास्त्रम्, श्री बाबूलाल, शुक्ल शास्त्री, पृ.सं.-293
6. वही पृ.सं.-294
7. सौन्दर्य,रस और संगीत, डॉ. स्वतंत्र शर्मा, पृ.सं.-218
8. अभिनव गीतांजलि भाग 4, पं. रामाश्रय झा, पृ.सं. -15
9. संगीत में नाद रूप व ध्वनिपक्ष के विभिन्न आयाम, डॉ. नीता मिश्रा, पृ0-63
10. अभिनव गीतांजलि भाग 4, पं. रामाश्रय झा 'रामरंग', संगीत सदन प्रकाशन इलाहाबाद, पृ.सं.-185
11. सौन्दर्य, रस एवं संगीत, डॉ. स्वतंत्र शर्मा, पृ0सं0-106

तथा वह शक्ति ही संपूर्ण जगत की सुचारू व्यवस्था का कारण है। उस अदृश्य शक्ति परमात्मा से साक्षात्कार करना, उसे प्राप्त करना व मुक्ति प्राप्त करना आदि मनुष्य जीवन के चरम लक्ष्य माने गये हैं। संगीत को धार्मिक रूप देने का गौरव इसी युग के लोगों को प्राप्त है। ये लोग संगीत को ईश्वरी तोहफा मानते थे उनका ऐसा विश्वास था कि संगीत के द्वारा हम ईश्वर को प्राप्त कर सकते हैं इस प्रकार हड़प्पा कालीन संस्कृति के संबंध में विचार व्यक्त करते हुये कि उस समय के लोगों ने संगीत के नैतिक स्वर को ऊपर उठाया उसमें आध्यात्मिक पृठ को उभारा गया। जिससे उनका संगीत नैतिक रूप से सुन्दर और पवित्र हो गया उनके संगीत में कोई भी श्रंगारिक भावना की मुद्रा नही पनपी। संगीत के आध्यात्मिक रूप में प्रयोग होने के अनेक प्रमाण वेद काल में भी प्राप्त होते है।

प्रकृति तथा चर अचर जगत के प्रत्येक तत्व के आंतरिक अवयवों में संगीत की सूक्ष्मति-सूक्ष्म अक्षुण्ण व अखण्ड धारा निरंतर प्रवाहित होती रही है। अतः सम्पूर्ण जगत ही अदृश्य रूप में संगीतमय है तथा अव्यक्त रूप से स्वर लहरियों की लयात्मकता गत्यात्मकता से परिपूर्ण हे। संगीत में प्रयुक्त होने वाले सात स्वर सा, रे, ग, म, प, ध, नि तथा इनके पाँच उप-स्वर एवं बाईस श्रुतियाँ अपना अलग-अलग अस्तित्व, प्रकृति, रंग, रस तथा प्रभाव रखती है। जिनके अलग-अलग सामंजस्य से विभिन्न प्रकार की इमारतें खड़ी की जाती है जिन्हें राग की संज्ञा दी गई हैं। सहज रूप से राग का अर्थ है लगाव। हमारे शरीर में सात चक्र है जिनके माध्यम से हम परमात्मा से एकाकार करते है सातो चक्रों पर 7 स्वर विद्यमान हैं, जैसे मूलाधार चक्र पर सा, स्वाधिष्ठान चक्र पर रे, नाभि चक्र पर ग, हृदय चक्र पर म, विशुद्धि चक्र पर प, आज्ञा चक्र पर ध, सहस्वार पर नि का वास है। इस चक्रों को स्वर के माध्यम से शुद्ध करके परमात्मा से एकाकार करते है।

ब्रह्मरूपी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रणव को साधन वनाया गया है। ''योगा शिखोपनिषद्'' में नादानुसंधान को सबसे बड़ी पूजा कहा गया है :

''नास्ति नादात्परो मन्त्रों न देवः स्वात्मतः परः।
नादानुसंध परः पूजा, नहि तृप्तः परं सुखम्।।''

अर्थात नाम से बड़ा कोई मंत्र नही है, अपनी आत्मा से बड़ा कोई देवता नही है, नादानुसंधान से बड़ी कोई पूजा नही है, और तृप्ति से बड़ा कोई सुख नही है। भारतीय मनीषियों ने संगीत को अध्यात्मिक लक्ष्यों को प्राप्ति का सबल माध्यम माना। नादोपासना में निहित मुक्ति दायिनी शक्ति की महिमा अनेक भारतीय ऋषियों द्वारा वर्णित है। आहत नाद की उपासना अर्थात संगीत के अभ्यास से अनहत नाद की प्राप्ति स्वतः ही हो जाती है। ऐसा भारत के संतों-सद्गरूओं व ऋषियों ने माना है। संगीत एवं अध्यात्म के बीच अंतर्सम्बन्ध का विवेचन करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि अध्यात्म का सम्बन्ध ध्यान से है और ध्यान साधना में संगीत का मार्ग सर्वोत्तम है।

''मोक्ष का यह है साधन अनेकों में नेक,
संगीत शिक्षा का उद्देश्य नही है एक।''

मुख्यतः भारतीय संगीत, विज्ञान और अध्यात्म के बीच की वह कड़ी है जो एक दूसरे से परस्पर जुड़ी हुई है क्योंकि प्रारम्भ से लेकर आज तक संगीत का विकास और विस्तार उसकी शोधात्मक क्रिया, प्रक्रियाओं से हुआ है। संगीत का नाद, ऐसी सीढ़ी है जिस पर चढ़कर व्यक्ति मोक्ष प्राप्त करता है। श्रीमद्भगवद गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि ''हे नारद्! जहाँ भक्त-जन गायन करते है वही मेरा निवास-स्थान है। संगीत की यही दिव्य शक्ति सभी जीव-जन्तु, चर-अचर और जनसमुदाय को प्रभावित करती है। इस शक्ति को किसी भी आवश्यकता नही। अन्ततः यदि हमें अपना सामाजिक, कलासम्पन्न और आध्यात्मिक जीवन एक साथ समृद्ध करना है तो नाट्य संगीत और योग की ओर अपना ध्यान अग्रसित करना होगा और दोनों में सुसंगति बनानी होगी। ऐसी सुसंगति बना सकने वाला साधक ही जागरूक, कुशल और उत्तम साधक कहा जा सकता है। योगियों और संगीतकारों को इस दृष्टि से सार्थक प्रयास अवश्य करना चाहिए।

प्राचीन कालीन ग्रन्थों में संगीत को धार्मिक-आध्यात्मिक महत्व दर्शाते हुए ऋषियों-मुनियों ने मोक्ष प्राप्ति का प्रमुख माध्यम माना है :

''वीणा वादनतत्त्वज्ञः श्रुति जाति विशारदः।
तालाज्ञश्चाप्रयासेन मोक्ष मार्ग निगच्छति।।''

-याज्ञवलक्य स्मृति

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारतीय संगीत का इतिहास, (आध्यात्मिक एवं दार्शनिक) डॉ. सुनीता शर्मा
2. संगीत का योगदान मानव जीवन के विकास में - डॉ. उमाकान्त शर्मा
3. भारतीय संगीत का इतिहास : डॉ. उमेश जोशी
4. संगीत संजीवनी-लावण्य कीर्ति सिंह, ''काव्या''
5. संगीत शिक्षण के विविध आयाम : डॉ. कुमार ऋषितोष

पत्रिका :

1. संगीत कला विहार, मार्च 2011
2. संगीत कला विहार, दिसम्बर 2012

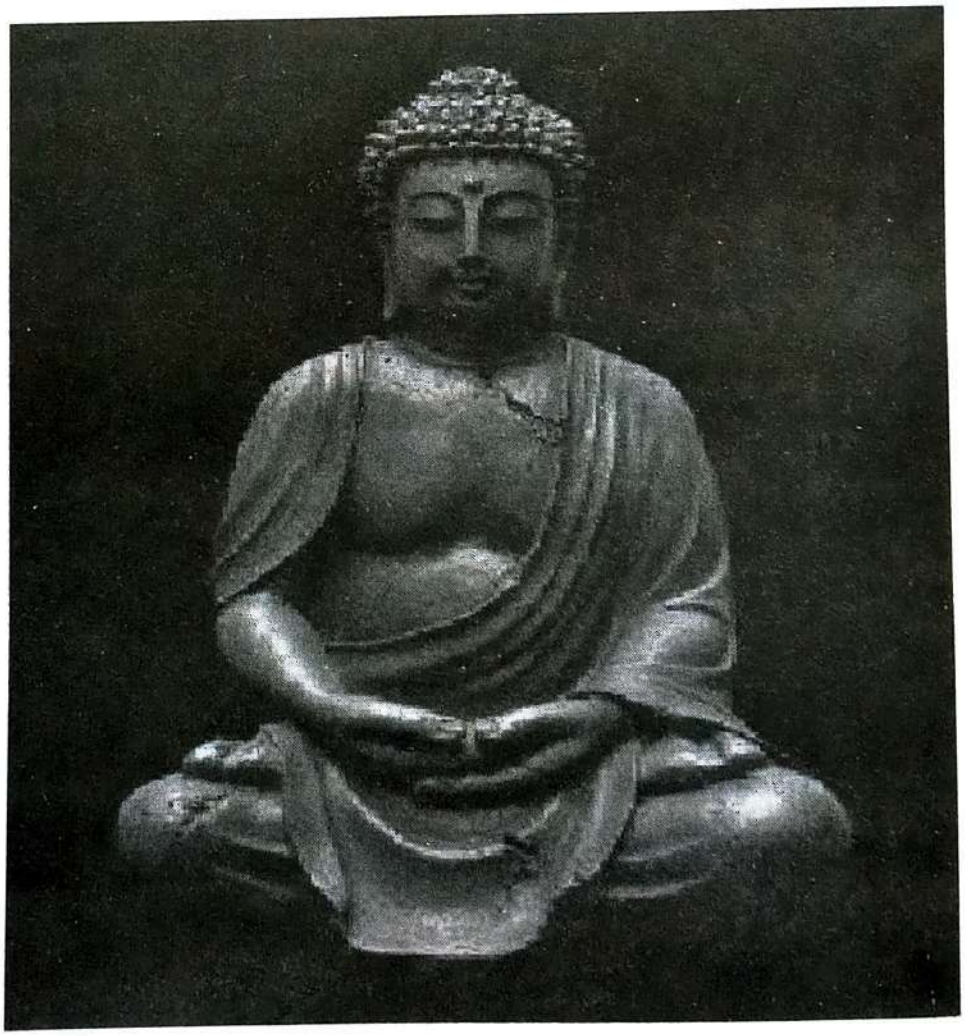

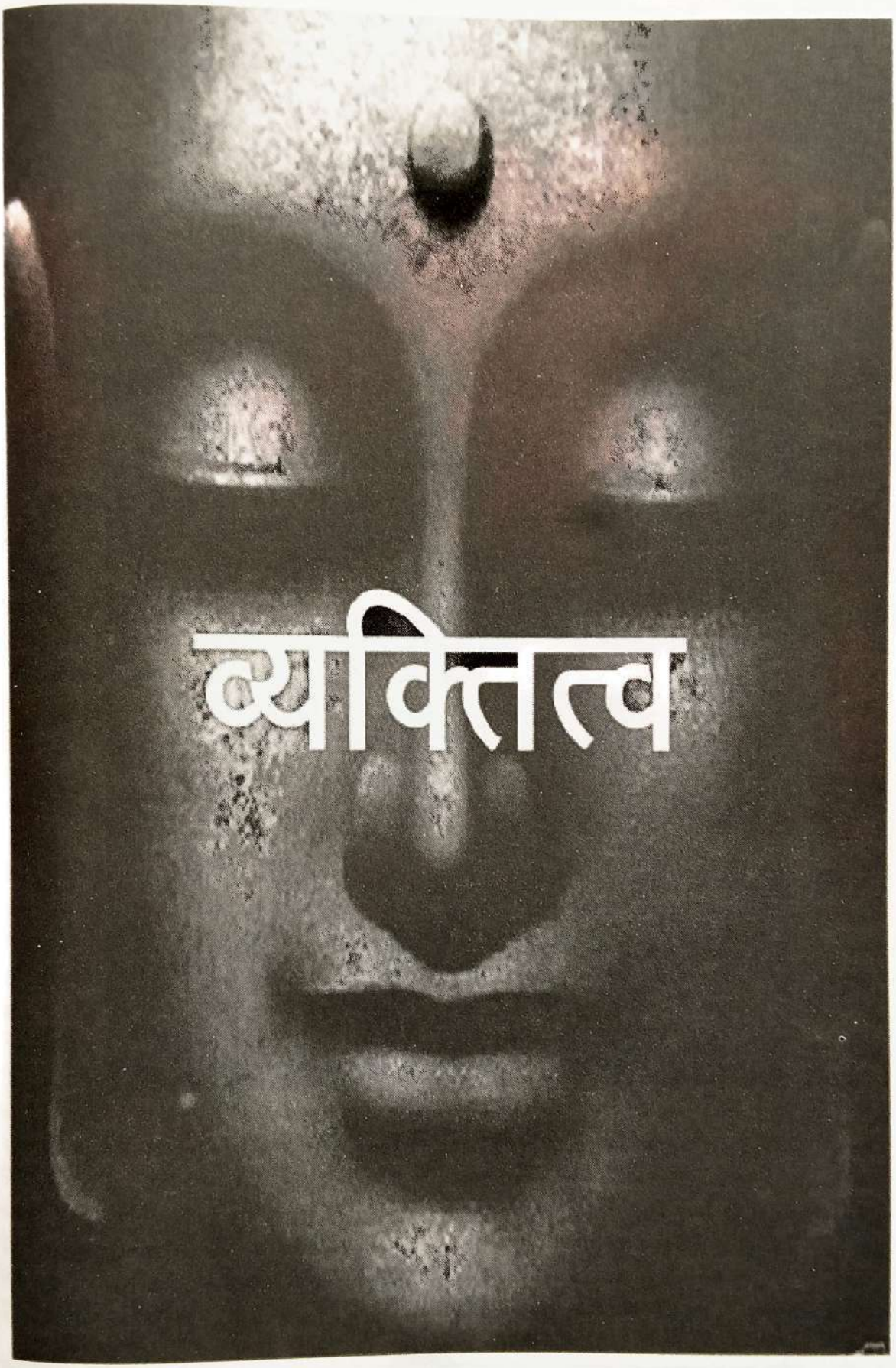
व्यक्तित्व

कविता कृष्णमूर्ति

Saint Arunagirinathar and Thiruppugazh

Dr. T.V. Manikandan

Professor in Karnatik Music, Dept. of Music, University of Delhi

Luminaries and great personalities always incarnate in this world with a holy mission to fulfil or by obeying orders from the supreme power. The span of their life will be very short as they have to incarnate in another form for some other mission. This concept is evident from the biography of great personalities ever we come across in the history or legend. Cast, religion, nationalism, genre and other sectarian concepts will not affect this order. Whether it is **Swamy Vivekananda**, **Adisankara**, **Sree Narayana Guru** and others, their contribution will be eternal and worthy enough to research for the ages to come and posterity will always cherish their genius through these contributions. **Saint Arunagiri Nathar**, an ardent devotee of **Lord Subrahmanya**, and the propagator of **'Kaumara cult'** lived around 15th century at **Thiruvannamalai**, when the Vijayanagara empire was flourishing in South India and **Prabudha Devaraya** was ruling the principality from **Thiruvannamalai**, is one such luminary, who presented a new musical form called **Thiruppugazh**.

Arunagirinathar was born at **Thiruvannamalai** to **Muttammal**, who died shortly after his birth. He was brought up by his sister **Thilakkavathi**. His child age was miserable as he was haunted by poverty and related problems, due to which he finally decided to end his life by jumping from the main tower of Arunachaleshwara temple, **Thiruvannamalai**. And the legend is that surprisingly he was rescued by **Lord Muruga** from falling to the floor. He was astonished to see **Lord Shanmukha** with his consort, in front of him and said to have inscribed **'Shadakshara'**, with his spear on **Arunagirinathar's** tongue. Out of sheer devotion and happiness, he was said to have sang the first hymn, **'Mutthaithuru'**, ending with **'Ena ootlu'** as **'Thongal'**. Mesmerized with the divine vision and command, **Arunagirinathar**, who did not receive any training in music or literature; started composing hymns one after the other in very difficult talas and ragas, praising **Lord Velayudha**.

Arunagirinathar visited all the shrines of **Lord Muruga** in South India and once, **Lord Poyya Ganapathy** of

Vayalur, came in his dream and bestowed him to sing in praise of **Lord Muruga's** peacock, **Kadamba** flower garland worn by him, his holy feet and twelve shoulders. The word **'Thiruppugazh'** was perhaps mentioned in this song **'Pakkarai Vichitramani'** for the first time.

In yet another instance, **Nathar** refers about his Lord's blessings as he bestows his feet on the three things; Peacocks, **Devas** and leaves on which the **Thiruppugazh** was written in his **'Skandar Alankaram'**. In his forty years of age **Arunagirinathar** left his world leaving the immense contribution of **Thiruppugazh** with us.

Thiruppugazh

The literal meaning of **Thiruppugazh** is the glorious praise of God or Divine glory. There were thousands of compositions which we lost due to lack of preservation and some of the **Thiruppugazh** lives virtually through the oral tradition of **Othuvars** – the singing community in Tamilnadu. Some of the **Thiruppugazh** are very popular for their difficult rhythmic patterns and they itself are grouped as **Thiruppugazh talas**. Significant to his ability to compose effortlessly in difficult **Cchandas** – metre, he was called **'Cchandapaavalaperumaan'**.

The theme of **Arunagirinathar's** works generally revolve around the glory of **Lord Subrahmanya** as the son of **Siva**, and how he rescued **Devas** and three world from the clutches of Demons and finally how he marries **Valli** and **Devayaani**.

In regards to the content of the theme, **Thiruppugazh** is divided into two parts. The first generally varies in its purpose of descriptions; some of them are full of gratitude to the lord for his infinite compassion. Some describe the various agony and misfortunes that a person experiences in his life, especially in old age etc. But a majority of them cover vehement criticism and severe condemnation of social injustices like robbery, prostitution etc. The latter half of **Thiruppugazh** extols the glory of **Lord Muruga** and appeals for divine grace. One of his other works - **Bhootavethaalavakuppu**, has historical importance as it deals with so many historical facts during the time of Vijayanagara Kingdom. In the same work, he mentioned about several difficult **Cchandas** associated with the 108 talas and several Tamil pans and Sanskrit ragas.

The unique and inspiring feature of **Arunagirinathar's** works is that he composed only in Tamil; the hymns abound in Sanskrit expression, showing that he was equally proficient in both the languages. No other poetical works in Tamil, Sanskrit words and expressions are found in predominance as found in the works of **Arunagirinathar**.

Thiruppugazh does not have sections like **pallavi**, **anu pallavi** and **charanam**. Like **Jayadeva's Ashtapadi**. **Thiruppugazh** also have eight stanzas consisting 2, 3, 6 or 9 lines. Each hymn is set to a **Cchandas** or metrical pattern. It will be noted on top of each hymn employing the metrical syllables like **Thanththa – Thanththa – thayya** etc.

The structure of the metrical pattern of the first line of the hymn is found to follow in all the succeeding lines.

It will be seen in the structure of **Thiruppugazh**, that in most of the song, a particular **Cchandam** is repeated thrice and ends with an interesting special structure called **'Thongal'** or **'Thanicol'**. This employment of **thongal** had not been composed by the composer but an improvisational addition of the singer himself. This **Thongal** could be employed at the end of every stanza. According to the tradition, the music of **Thongal** should be extended over the whole **avartana** by the method of singing **Niraval**.

According to **lakshana**, it is the general rule to have number of **avartanas**. Odd number of **avartanas** are not accepted. Only **Cchandas** will be ascribed to every **Thiruppugazh** but not the **raga** or **tala**. The singer has the liberty to choose an appropriate **tala**, according to the **Cchandas** mentioned. They thus stand as **lakshana** for most of the **talas**, which does not even have a name. There are many songs which do not fall under any of the **tala** classification. They are collectively termed as **'Thiruppugazh talas'**. Just like the **Tevara** hymns of the **sivite** saints represent a repository of the ancient **Tamil Pans**, the **Thiruppugazh** hymns are considered as a treasure house of **talas**.

In the same way, more than on **tala** can be applied to a **Thiruppugazh**, provided the metrical structure is not spoiled. Eg : **Thamarumamarum**. The two rhythms suggested for this hymn are **Chatusra roopakam** and **Tisra natai adi**. In this connection it is worth mentioning that some of the **Syama Shastri krithis** also have the same kind of structure of multiple rhythms.

Like **Jayadeva's Ashtapadi**, the original music of the **Thiruppugazh** hymns has irretrievably lost to the posterity and it has been the practice among the **Oduvars** to sing them in improvised tunes. From the various references to ragas and **Panns** contained in the **Thiruppugazh** texts, it is evident that **Arunagirinathar** composed his songs in the **Ragas** current during his time. But due to the lack of proper notation system and a continuous tradition in singing them, the tunes have been lost to us invariably.

अवधू बेगम देस हमारा
कबीर की कविता में घर और देस

प्रो. सदानन्द शाही

एच0 ओ0 डी0, भोजपुरी विभाग, का0 वि0 वि0, वाराणसी

कबीर की कविता में घर एक महत्वपूर्ण प्रतीक के रूप में हमारे सामने आता है। आम तौर पर कबीर के जिस घर से हमारा परिचय है वह है जिसे वे जला देना चाहते हैं। याकि जला देते हैं। वे अपना घर तो जलाते ही हैं, उसका घर भी जला देना चाहते हैं, जो उनके साथ चलना चाहता है। घर को जला देना कबीर के साथ चलने की पूर्व शर्त है। यदि आप कबीर के साथ चलना चाहते हैं तो पहले अपना घर जला दें। कबीर के साथ चलने का न्योता सिर्फ उसे ही मिलेगा, जिसने अपना घर जला दिया है।

कबिरा खड़ा बाजार में लिए मुराठा हाथ।
जो घर जारे आपना चले हमारे साथ।।

इसे सिर्फ न्यौता ही न समझा जाय। यह इजाजत और अनुज्ञा का भी मामला है। कुछ लोग बिना न्यौते के भी चले आते हैं। माया और राम दोनों को एक साथ साध लेना चाहते हैं। अपना घर भी जोड़ लें और कबीर के साथ कुछ दूर चल कर देख भी लें कि वहाँ क्या मिल रहा हैघ् कबीर ऐसे लोगों को न्योता भी देते हैं और चेताते भी हैं

हम घर जारा आपना, लिया मुराड़ा हाथ।
अब घर जारौं तासु का, जो चलै हमारे साथ।।

कबीर के घर की यह आम छवि है। वे अपना घर जलाकर आ गये हैं। वे हर उस व्यक्ति का घर जला देने के लिए तत्पर हैं, जो उनके साथ चलने वाला है या चलना चाहता है। मजे की बात यह कि वे अकेले जाना भी नहीं चाहते। वे अपने साथ सबको ले जाना चाहते हैं। चेताते चलते हैं कि अगर घर नहीं जला पा रहे हो, तो कोई बात नहीं। देख लो! मेरे हाथ में लुआठा है। मेरे साथ चलोगे तो पहले तुम्हारा घर जलायेंगे, फिर आगे बढ़ेंगे। अपना घर जलाओ और मेरे साथ चलो। हम इसी कबीर को जानते हैं।

अब जो घर जोड़ने की माया में जुटे हैं, वे भला क्यों कबीर के पास आने लगे। घर कितनी मुश्किल से बनता है। उसे जलाना कहाँ की समझदारी है। इसीलिए जिनके पास घर है, वे प्रायः कबीर से परहेज करते हैं। कबीर की कविता से परहेज करते हैं। रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं 'उनका यकबीर काद्ध कोई साहित्यिक लक्ष्य नहीं था, वे पढ़े लिखे लोगों से दूर ही दूर अपना उपदेश सुनाया करते थे।'

कबीर के समय में पढ़े लिखे लोग कौन थे। या कि जिन्हें पढ़ने लिखने की इजाजत थी वे कौन लोग थे। प्रायः वही लोग थे जो घर जोड़ने की माया में जुटे हुए थे। वे भला कबीर की सुनते ही क्यों। और कबीर उन्हें सुनाने भी क्यों जाते—घर जोड़ने की माया से बँधे हुए पढ़े लिखे लोगों के पास झख मारने कबीर क्यों जाते। और इसका उलटा भी उतना ही सच है—ऐसे लोग घर जलाने की बात करने वाले कबीर के पास क्यों जाते।

लेकिन कबीर के साथ चलने के लिए बहुत से लोग तैयार रहते हैं। अपना घर जलाने और कबीर के साथ चल पड़ने वाले लोगों की कमी नहीं हैं। प्रेमचन्द के घीसू और माधव को हम जानते है।

माया जब मुहँ बिराती है, वे कबीर के पास जाते हैं। घीसू माधव का पता प्रेमचन्द देते हैं। ऐसे लाखों लोग हैं जो कबीर के साथ चलते हैं, जिनका पता हम्मे से बहुतों को न हो। अमरीका के एक कवि है राबर्ट ब्लाई। उनकी कबीर से भेट रवीन्द्र नाथ टैगोर के अनुवाद के माध्यम से हुई। उन्हें टैगोर का विक्टोरियन अंग्रेजी में किया अनुवाद पुराना लगा। राबर्ट ब्लाई ने स्वयं कबीर के पचास पदों का अनुवाद किया। अब वे अपनी कविताएँ नहीं सुनाते। जहाँ जाना होता है वे कबीर की कविताएँ ही सुनाते हैं। इस तरह देखें तो घीसू माधव से लेकर राबर्ट ब्लाई तक कबीर के साथ चलने को तैयार लोगों का रेंज बहुत व्यापक है। ऐसे लोगों को कबीर कहाँ ले जाना चाहते हैं, कहाँ ले जाते है। इसी के साथ सवाल यह भी है कि कबीर के साथ जाने के लिए लोग क्यों तैयार हैं। आखिर कबीर कहाँ ले जा रहे हैंघ् वह कौन सी जगह है, जहाँ जाने के लिए लोग अपना घर बार जलाने पर आमादा हैं। इसकी चर्चा हम आगे करेंगे।

कबीर के यहाँ घर के और भी रूप हैं। थोड़ा उसे भी देख लें। एक तरफ तो घर में 'झगरा भारी' है। वे इस झगरे को सुलझाते हैं। इस भारी झगरे से मुक्ति दिलाने की बात करते हैं। 'मैं कहता आँखिन की देखी तू कहता कागज भी लेखी। मैं कहता सुरझावन हारी तू राखे अरुझाई रे।'

घर से आदमी का बड़ा पुराना नाता है। घर के बिना आदमी का काम नहीं चलने वाला। घर जलाने वाले के रूप में मशहूर कबीर का भी। वे केवल घर जलाते नहीं है, घर बनाते भी हैं। 'अवधू गगन मंडल घर कीजै, अमृत झरै सदा सुख उपजै, बंकनालि रस पीजै।' इत्यादि इत्यादि।यानी घर से अमृत बरसे और सुख मिलता रहे तो कबीर को घर करने में एतराज नहीं है। घर की प्रकृति भिन्न है। घर का स्वरूप भिन्न है। अमृत बरसता हो, निरन्तर सुख उपजता हो तो कबीर घर की रखवाली के लिए भी प्रस्तुत हैं। वे केवल घर जलाने के लिए हाका नहीं लगाते वे घर की रक्षा के लिए भी आवाज लगाते हैं–

मन रे जागत रहिए भाई।
गाफिल होई वस्तु मति खोवैए चोर मुसै घर जाई।।

घर जलाने के लिए प्रसिद्ध कबीर इसके लिए सचेत कर रहे हैं कि कहीं घर में चोर न घुस जाये, इसलिए जागत रहिए भाई।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की एक कविता है
मैंने जब जब सिर उठाया अपने ही चौकठ से टकराया
सिर झुका आओ बोली भीतर की दीवारे
सिर झुका आओ बोला बाहर का आसमान
दोनों ने मुझे छोटा करना चाहा।
बुरा किया मैंने जो ये घर बनाया।

घर का एक रूप जो आदमी को छोटा करना चाहता है। आदमी को छोटा कर देता है। कबीर दास उसे जलाने की बात करते हैं। वह इसी तरह का घर है। जो आदमी को छोटा कर दे, ऐसा घर कबीर को कुबूल नहीं है।

घर जलाकर और जलवाकर कबीर हमें कहाँ ले जाना चाहते हैंघ् इस घर जलाने वाले संत के प्रति सैकड़ों वर्षों से लोगों के मन में इतना आकर्षण क्यों हैंघ् वह कौन सी जगह है, जहाँ जाने के लोभ में लोग घर जलाने को तैयार हो जाते हैं।

इसका उत्तर मुझे रैदास को पढ़ते हुए मिला। रैदास का प्रसिद्ध पद है, सबने पढ़ा होगा। बेगमपुरा शहर को नाऊँ। इस पद में रैदास कहते हैं–हमें खूब अच्छा वतन/घर मिल गया है। अब हम खूब वतन घर पाया। वे आगे कहते हैं मेरे शहर का नाम बेगमपुर है। जहाँ दुःख और अन्देशे के लिए कोई जगह नहीं है। वहाँ न तो माल है न लगान देने की चिन्ता। किसी तरह का खौफ नहीं है, भूल या गलती नहीं है, पतन का डर नहीं है। मेरे भाई, मैंने ऐसा खूबसूरत वतन पा लिया है जहाँ सदैव खैरियत ही रहती है। वहाँ की बादशाहत/शासन व्यवस्था दृढ़ और स्थायी है। वहाँ दूसरा या तीसरा कोई नहीं है। यह शहर दाना पानी, रोजी रोजगार के लिए मशहूर है। धनी मानी और सज्जन लोगों से यह शहर भरा है। जिसको जहाँ भावे वहाँ आ जा सकता है। कहीं कोई रोक टोक नहीं करता। हर तरह के बंधनों से

मुक्त रैदास चमार कहते हैं जो मेरे इस शहर में रहने वाला है, वही मेरा मित्र है। यह अद्भुत शहर कहाँ है।कबीर और रैदास दोनों बनारस के हैं। दोनों समकालीन हैं। दोनों मिलकर एक नया शहर बसा रहे हैं। रैदास के भक्तों की संख्या पंजाब में बहुत है। पंजाब से बनारस आने वाली एक ट्रेन का नाम है बेगमपुरा एक्सप्रेस। एक बार मुझ से किसी ने पूछा था बेगमपुर कहाँ है। सहसा तो मुझे पूछने वाले पर हँसी आयी। लेकिन भोलेपन से पूछा गया वह प्रश्न मन में कहीं अटक गया। मुझे लगा कि इस बेगमपुर का पता लगाना चाहिए। यह बेगमपुर और कहीं नहीं कबीर और रैदास की कविता में है। यह कबीर और रैदास की कल्पना का शहर है।

कबीर कहते हैं 'अवधू बेगम देस हमारा।' कबीर राजा रंक फकीर बादशाह सबसे पुकार पुकार कर कहते हैं कि अगर तुम्हें परम पद चाहिए तो हमारे इस देश में बसो। इस देश में सत्त धर्म की महता हैं। केवल संत धर्म है।

यही बेगम देश है, जिसे कबीर अमरपुर भी कहते हैं। वे सजना से अमरपुर ले चलने के लिए कहते हैं। अमरपुर में बाजार लगी हुई है। वहाँ सौदा करना है। उसी अमरपुर में संत रहते हैं। संत समाज सभा जहँ बैठी वहीं पुरुष है अपना।

कबीर क्या कह रहे हैं। इसे ध्यान पूर्वक कर सुनने की जरूरत हैं। संत समाज सभा जहँ बैठी वहीं पुरुष है अपना। यह संतों का समाज संतों की सभा अमरपुर में है। यानी संतों की सभा जहाँ है वहीं अमरपुरी है। वही बेगमपुर है। इसी के साथ कबीर दास का एक और पद पढ़ लीजिए।

चलन चलन सब कोई कहत है, ना जानौं बैकुण्ठ कहाँ है। जोजन एक प्रमिति नहीं जाने/बातन ही बैकुण्ठ बखाने। एक जोजन आगे का हाल जिन्हें नहीं मालूम वे बैकुण्ठ का बखान करते रहते हैं। जब तक आप स्वयं वहाँ नहीं जाते/स्वयं नहीं देख पाते—तब तक बैकुण्ठ पर भरोसा नहीं किया जा सकता। अन्त में कबीर कहते हैं कि और कुछ नहीं साधु की संगति ही बैकुण्ठ है। यह साधु कौन है। जो अमरपुर में रहता है वही साधु है, वही संत है। वही बेगमपुरा का नागरिक है। इस वेगमपुर की नागरिकता की क्या शर्तें हैंघ् यह किस भूगोल में पाया जाता है। इसकी क्या विशेषता हैघ् कवीर इसकी विशेषताएँ बताते हैं

जहवां से आयो अमर वह देसवा।
पानी न पौन न धरती अकसवा,
चाँद सूर न रैन दिवसवा।
ब्राह्मन, छत्री न सूद्र वैसवा,
मुगलि पठान न सैयद सेखवा।
आदि जोति नहिं गौर गनेसवा,
ब्रह्मा विस्नु महेस न सेसवा।
जोगी न जंगम मुनि दरवेसवा,
आदि न अंत न काल कलेसवा।
दास कबीर ले आये संदेसवा,
सार सब्द गहि चलै वहि देसवा।

रैदास के पद के साथ एक बार इस पद को साथ साथ पढ़ कर देखें। नागरिकता की शर्त एक ही है। भेद बुद्धि का अभाव। किसी तरह की कोई भेदबुद्धि नहीं है। ऊँचनीच की भावना नहीं है। यह बेगमपुर ऐसा वतन घर है जहाँ मनुष्य को छोटा करने वाली हर तरह की भेद बुद्धि का अभाव है। हर वो चीज जो मनुष्य को मनुष्य से बाँटती है, भिन्न होने का, 'द अदर' होने का भाव पैदा करती है अमरपुर में उसकी समायी नहीं है। भेद बुद्धि रखने वाले को बेगमपुर का वीजा पासपोर्ट नहीं मिलेगा। कबीर का एक और प्रसिद्ध दोहा याद आ रहा है

कबीरा यह घर प्रेम का खाला का घर नाहिं।
सीस उतारे भुँई धरे तब पइसे घर माँहि।।

अहंकार का, भेद बुद्धि का सिर उतारकर बाहर रख देना है, तब प्रेम के घर में प्रवेश हो पायेगा। प्रेम का घर ऐसा है जिसमें अपना सब कुछ देकर सबकुछ को दाँव पर लगाकर ही प्रवेश हो सकता है। कुछ भी पाने के लिए कुछ खोना पड़ता है। फिर प्रेम तो सर्वोत्तम है। सर्वोत्तम पाने के लिए सर्वोत्तम देना होगा। सबसे कठिन है सर्वोत्तम को देना। हमारी मुश्किल है कि हम पाना तो चाहते हैं सब कुछ

लेकिन उसके लिए कुछ भी छोड़ने को तैयार नहीं हैं। इसी पर तंज कसते हुए कबीर कहते हैं

जन कबीर का सिषर घर, बाट सिलैली गैल।
पाँव ने टिकै पिपीलिका, लोगन लादै बैल।।

कबीर हमें प्रेम के घर में लाना चाहते है। यह प्रेम का घर ही रैदास का बेगमपुर है। बेगम देस का नागरिक बनने के लिए हमें बहुत कुछ छोड़ कर आना होगा। इसीलिए कभी कभी मुझे लगता है कि कबीर की कविता हमें बहुत कुछ छोड़ने के लिए कहती है, बहुत कुछ अनसीखा करने के लिए कहती है। बहुतेरे अवरोध हैं, जिन्हें दूर करने के लिए कहती है।बेगमदेस पर विचार करते हुए हमारा ध्यान तुलसीदास के राम राज्य की ओर चला जाता है। बेगमदेस और रामराज्य में बड़ी समानताएँ हैं। तुलसी के रामराज्य की कल्पना की हिन्दी में बहुत सराहना हुई है। रामराज्य की यूटोपिया के नाते तुलसीदास हिन्दी के श्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। लेकिन बेगमपुर और अमरपुर की यूटोपिया रचने वाले रैदास और कबीर को सिर्फ खण्डन मण्डन करने वाला मान कर अवमानित किया जाता रहा है। बहस होती है कि वे कवि हैं भी या नहीं।

कबीर और रैदास दोनों ही तुलसी से कम से कम सौ वर्ष पहले हुए हैं। उनका बेगमपुर या बेगम देस तुलसी के रामराज्य की कल्पना से कम से कम सौ वर्ष पहले की कल्पना है। तुलसीदास ने थोड़े हेर फेर के साथ बेगमपुर की कल्पना को रामराज्य के रूप में प्रस्तुत कर दिया है। तुलसी के रामराज्य और बेगम देस को आमने सामने रख कर देखिए। दोनों में ज्यादा भेद नहीं है। रामराज्य की कल्पना में तुलसीदास ने वर्णाश्रम धर्म को 'एडजस्ट' कर दिया है। 'सत्त धर्म' की जगह तुलसीदास ने 'निज निज धरम' की भेद बुद्धि के लिए जगह बना दी है। रामचन्द्र शुक्ल तुलसीदास की जिस प्रतिभा के सबसे बड़े कायल हैं, वह यही है। शुक्ल जी लिखते हैं 'सगुण धारा के भारतीय पद्धति के भक्तों में कबीर, दादू आदि के लोकधर्म विरोधी स्वरूप को यदि किसी ने पहचाना तो तुलसीदास ने।' शुक्ल जी कह चुके हैं कि कबीर, रैदास, दादू आदि का प्रवेश पढ़े लिखे लोगों में नहीं, बल्कि वे पढ़ी लिखी जनता में था। विडंबना देखि, कि जिनका प्रवेश वे पढ़े लिखे लोगों में था वे ही कवि लोक धर्म विरोधी हो गये। अस्ल में वर्ण व्यवस्था और आश्रम पद्धति ही रामचन्द्र शुक्ल के लोकधर्म की बुनियाद है। इसीलिए वर्ण व्यवस्था और आश्रम धर्म का विरोध करने के वाले कबीर आदि संत लोकधर्म विरोधी हो जाते हैं। वर्णाश्रम धर्म को फिर से स्थापित करने के कारण तुलसी दास लोकवादी हो जाते हैं, हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि हो जाते हैंण् और वर्णाश्रम रहित लोकधर्म के प्रवर्तक कबीर और रैदास कवि भी हैं या नहीं इस पर बहस हो रही है। यह भी हिन्दी साहित्य की अनेक उलटवासियों में से एक है। बहरहाल यह एक दूसरा पहलू हैण्जिसकी चर्चा फिर कभी ण

अभी तो मुझे इतना ही कहना है कि यह बेगम देस एक यूटोपिया है ण्उलटवांसियों से भरे जटिल संसार के बरक्स एक प्रति संसार ण्एक मानवीय और समुन्नत संसार–जिसमे सत्त की संगति है एसाधु समाज है एउन्नत मनुष्य हैं ण्प्रेम ही जिसका नियम है ण्विन्द्रनाथ ने जिस मानव धर्म की कल्पना की है वह इसी बेगान देस से निकलता है ण्उसके पख्रवार्तक और प्रतिष्ठाता कबीर हैं रैदास हैं। ऐसी उदात्त यूटोपिया की रचना करने वाले कबीर को विश्वकवि रवीन्द्रनाथ कवि मानते हैं और ''भ्नदकतमक चवमउे वि झंइपत'नाम से कबीर की सौ कविताओं का अंग्रेजी में अनुवाद करके दुनिया के सामने प्रस्तुत करते हैं। और इधर हिन्दी के विद्वान आचार्य और आलोचक बहस कर रहे हैं कि कबीर कवि हैं या नहीं। शायद ऐसी ही बहसों के लिए कबीर ने कहा था बोलना का कहिए रे भाई, बोलत बोलत तत्त नसाई।

(महात्मा गाँधी अन्तरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा, के कोलकाता केन्द्र के निदेशक श्री कृपाशंकर चौबे ने तथा केन्द्रीय विश्वविद्यालय हैदराबाद के हिन्दी विभाग के प्रोफ़ेसर आलोक पाण्डेय अपने अपने केंद्र पर यह व्याख्यान आयोजित किया था। दोनों के प्रति आभार)

The Walking God: - Pt. Panchakshari Gawai

Monika Soni

Research Scholar

Dr. Chetna Banawat

Associate Professor, University of Mumbai, Mumbai, Maharashtra

"The moment I have realized God sitting in the temple of every human being, the moment I stand in reverence with every human being and I see God in him – that moment I am free from bondage, everything that binds vanishes and I am free." – ***Swami Vivekananda***

To help the needy, the poor, the orphans, the blinds and the ignored ones is the true form of worship as preached by all the Indian as well as the foreign philosophers and saints. India is a land where the monks who led their life on the above said theory are found too common. Swami Dayanand, Swami Vivekanand, Guru Nanak Dev, Mahaveer, Buddha, Sant Tukaram and thousands others came on this earth like the divine incarnations. One such 'singing monk' of the last century was none other than Pt. Panchakshari Gawai who is worshipped by the kannadigas as the 'नड़ेदाड़व देव' (the *walking God*).[1]

It is said that if God gives someone some disability on one hand, He also gives the strength and courage to overcome from it on the other hand. This saying is seen true in the life story Pt. Panchakshari Gawai. Pt. Panchakshari Gawai was a Veershaiva Saint, a Carnatik vocalist, a Hindustani vocalist, an accomplished player of flute, tabla, harmonium, sarangi, pakhawaj, karadi and sambhaal; and above all, he was a human being of godly virtues.

Early Life and Family Background:

Panchakshari Gawai was born on 2nd February 1892 at Kadshettihalli, a village in Hangal taluk in Haveri district. At his birth, father Shri Gurupadeyya and mother Neelamma who were overwhelmed with joy till then, stood astound as they come to know that their dear son is born blind. Their elder son Gurubasava was also born blind. All the joy flowed out with the tears. It is too difficult to lead a successful life even for a person with no disability, but their son had not even the light of his own eyes to go through the jaggy path of life. But what could be done...! Parents named the boy Gadigeyya.

Gadigeyya had born with special talents which gave him the courage to kick off the inferior feel regarding the eyes. He was a born singer and highly intelligent. He along with his elder brother started singing bhajans, folk songs and other songs. At a tender age of playing with the fellow kids, these boys took the musical instruments to play. These brothers earned kudos from not only the whole village but also from the surrounding areas for their sincerity towards music and the sweet voice.

Karnataka has a huge mass of the followers of the '*Veershaiva Dharma*'. There is still found the classification of *Shaivaits* and *Lingayats;* the monks of both these streams preach their teachings to show the path of Dharma and universal harmony along with their special set of rituals, rules and traditions. One such monk in the Veershaiva Dharma was Shri Hangal Kumarswamiji. He used to spread awareness by addressing the masses by preaching the lessons of Veershaiv Dharma 'धर्म दिन्दले विश्वक्के शांति, मानव धर्म जयवागली' which means religion is the source to bring peace to the world and humanity is the best religion. Shri Hangal Kumarswamiji was a noble-hearted social activist. Swamiji used to help the needy by every possible means. In his monastery, he made the arrangement of Sanskrit, Astrology and Ayurvedic School, where children of the poorest class of society used to get the light of knowledge and education.

Once Hangal Kumarswamiji visited Gadigeyya's village Kadshetti for a local fair called 'Hakkala Basaveshwar Fair'. At the event, Gadigeyya and his brother Gurubasava were asked to sing Bhakti-geet. It is said that, that day, the blind brothers put their hearts out in the song. Everyone sitting there was carried away; undoubtedly, including Swamiji. Who knew, that day became a turning point in Gadigeyya's life. Swamiji, with tears in his eyes, asked their parents to send the boys with him. He told them that these brothers would become the shining stars in the field of music and now onwards, they will stay in his ashram, and that he would take the responsibility of making the arrangement for them to learn classical music. However, it was not all easy for Gadigeyya's parents to leave their blind sons. But as they were assured that their children would be groomed with a bright future if Kumar Swamiji keeps them under his wings. Keeping in mind Kumar Swamiji's generous nature for the poor and disabled people, they agreed to send both their sons with Swamiji to his Ashram. Gurubasav had been married at a tender age, so it was decided that after the completion of studies and education in music, he would be sent back to his house to look after the parents and his wife, but Gadigeyya will have to spend his whole life without marriage and will have to serve the society following the rigid rules of Brahmacharya! Gadigeyya needed nothing, but proper Taaleem in music. So he agreed at once for whatever the Guru asked him to do.

Beginning of the Musical Journey:

During those days, Carnatic Music reigned supreme in almost all parts of Karnataka. So, Hangal Kumarswamiji invited Sh. Bheemarayyappa from Harapanhalli, Dawangere, to teach Carnatic Music to both the blind brothers.

In a very short time, Gadigeyya learnt many ragas, kritis and keertana from Guruji. His grasping power was mesmerizing. As he was blind right from birth, he practiced identifying people with odour and movement. Exceptionally brilliant and extraordinarily intelligent Gadigeyya had to listen only once and the *Cheez* would be imitated as it is without a single mistake. Also, it would get printed in his mind and could be recalled years later. But the training stopped after two years; Bheemarayyappa's health broke up due to the unsuitable climate of Hangal. But Kumarswamiji left no stone unturned to bring them up in music. So he sent the boys to Emmiganur Gadigayya, who resided in Shiralkoppa. There, Gadigeyya and his brother learnt for eight years and became well-versed in Carnatic Music. Meanwhile Kumarswamiji had decided to establish the 'Shivyog Mandir' and he used to wander from place to place to meet its finances. He had made an arrangement for these brothers to stay at Nelivigi, a small village near Bangalore, in his absence. But before Swamiji was back, Gurubasava passed away due to some illness supposed to have infected by eating mangoes. Gurubasava was the only possession that Gadigeyya had in the times of need; both were inseparable like the two eyes. The sudden death of such a helping hand left a remarkable impact on Gadigeyya. He could not recover himself from the unbearable loss. In such a difficult time, Swamiji consoled him like a father or guardian. He told his little son about the illusionary mortal world and told that all that which gets birth has to meet the death which is actually the end of just one cycle. The immortal soul of a person disrobes the body and changes it as a person dies. It then gets a new birth in the form of a new creature according to the results of one's good or bad deeds. Therefore, instead of worrying over one's death, we should pray for the divine soul to rest in peace and taking it as a lesson we must start doing good deeds and selfless service to humankind. These divine words from Guruji's mouth comforted Gadigeyya and with this spirituality in the soul and singing proficiency in the heart, he started a new journey, all alone, but with Hangal Kumarswamiji's graceful hand over the head.

A doyen of Carnatic Music:

Kumarswamiji didn't want to make him an average musician; his dream was to see him as a giant of Classical music, an ocean of knowledge and a noble hearted generous social server. So the next destination was chosen as Mysore's renowned violinist Venkatramayya's school. There, Gadigeyya learnt for 3-4 years and apart from learning, he succeeded in getting acquainted with the local musicians that helped him to learn new things as well as to manifest whatever he had learnt till then. He gave a number of successful concerts here and there and earned acclaim from audience and musicians. Veena Sheshanna was very much fond of his singing and he also suggested Gadigeyya to meet the Maharaj of Mysore.

Gadigeyya's lust for music was incomparable. Since Swamiji had only arranged for his studies and not about the food or shelter, but it was his urge for

music that he survived on the alms food. He would wake up early and after going through the riyaz and pooja, he would wander singing from door to door in Mysore. People stood mesmerized at such a melodious voice and would offer him food, clothes, money and other things of daily need. His wish to meet the Maharaj of Mysore could not be fulfilled as then only Kumarswamiji called him for the All India Veershaiva Convention at Bagalkot. This convention was one of the significant sessions organized for social awareness and the decision of establishing Shivyogmandir was taken on this day. It was also a memorable day in Gadigeyya's life. He was assigned to give a recital on that day. Amidst a gathering of thousands of knowledgeable Kannadigas, 18 year old Gadigeyya won the hearts of the crowd by his melodious singing. That day onwards, he got a new name- **'Panchakshari Gawai'**[3]*. Some other sources say that during Gadigeyya's stay at Gourishankar Math in Mysore, Gourishankar Swamiji asked him to change his name to Panchakshari; and Hangal Kumar Swamiji conferred the title 'Gawai' in the All India Veershaiv Convention. These sources being based at Gadag and surrounding area, which is swamiji's workplace, seem more authentic to rely upon. 'Gaanayogi Pt. Panchakshari Gawai' a biography written by Pro. B.V. Hiremath and translated to hindi by Pro. Mallikarjun Yammiyavar also indicates towards the same.

After the convention, an exam was conducted at Kumarswamiji's Ashram where Panchakshari Gawai had to give a recital and the judgement was to be done by the eminent musicians. But instead of getting comments or suggestions about his Gayaki, he got the title **'Pandit'**! Gradually, Pandit Panchakshari Gawai's fame began to spread all over Karnataka and its adjacent regions. He began to reside in the Shivyog Mandir. His beautiful recitals of Bhajans, Keertans and Swamiji's spiritual preachings combined together to take the audience to the divine world of salvation. It helped to raise funds for the development of Shivyogmandir.

Switching Over to Hindustani Music:

After coming from Mysore, Panchaksahri Gawai's musical training came to a halt. It was because whatever he could learn from maestros of Carnatis music, he learnt it whole-heartedly. But during those days, the winds of Hindustani Music were blowing all over the Northern Karnataka. Panchakshari wanted to quench his thirst of learning Hindustani Music under a reputed Guru.

A musician can very well understand the difficulty that must arise when a Carnatic vocalist decides to adopt a totally different style of singing. But to the fact, Panchakshari Gawai was not a common person. He would never step back from something which seemed difficult. His determination meant nothing but hard work. So in the beginning, he used to listen to the gramophone records of Hindustani vocalists. After that, he found a way in the Marathi drama troupes where Natya Geetas were set to the Hindustani compositions. He started copying these songs and would learn them by singing along with dises. As he got to listen to the reputed artists like Abdul Karim Khan, Wahid Khan, Natthan Khan, Rehmat

Khan, Vilayat Hussain Khan, Vishnu Digambar Paluskar, Bhaskarbua Bakhale, Ramkrishnabua Vaze, Balkrishnabua Ichalkaranjikar, Neelkanthabua Mirajkar and many others, his wish to learn Hindustani Music began to rise high. He told Kumarswamiji about his wish and requested to grant him the permission. Kumarswamiji was very much pleased on seeing his disciple's hunger for nothing but music and knowledge. Without the delay of a single minute, Swamiji arranged to call Ustad Wahid Khan from Lahore to stay at Shivyogmandir and teach Hindustani Music to Panchakshari Gawai on a high salary of Rs.150/- per month. The training lasted for four years from 1917 to 1921, but Wahid Khan Sahib had to travel back to Lahore because the climate did not suit his health and he felt it hard to stay there anymore. What next? To satiate his thirst for Hindustani Music, Swamiji called Neelkanthabua Mirajkar. Under his tutelage for three years, Panchakshari Gawai learnt hundreds of cheezs in different taals, and collected the nicest jewels of Hindustani Music from his '*Paramdnyani Guru*'. The series of his concerts began to increase, leading his fame to touch the sky heights. Gawai was now an exponent of both streams of Indian Classical Music-Hindustani as well as Carnatic. He was conferred the title 'Ubhayagayanacharya' and Ubhay Gayanvisharad. In fact, after learning the Kirana Gharana style from Ustad Wahid Khan and Gwalior Gharana from Neelkanthabua, Panchakshari decided to observe the styles of other eminent vocalists as well. So he arranged informal sittings in his house and requested Vinayakrao Patwardhan, Narayanrao Vyas, Master Deenanath, Omkarnath Thakur, Master Vasant, Manji khan, Bhurji Khan, Kesarbai Kerkar, Mogubai kurdikar and many others to give recitals. This was why his Gayaki was an excellent blend of all gharanas and he could sing Khayal, Thumri, Gazal and Tappa with equal efficiency. Apart from singing, he was also good at playing flute, tabla, dilruba and sarangi. He was the first to set the Vachanas of Shivasharanas to classical tunes. Being such a talented and an all-rounder musician, people from all parts of the country began to come under his tutelage.

Contribution towards the Music:

Later with Swamiji's permission, a formal music school was opened in the Ashram premises. But after a short period, this school was shifted to village Nirgundappa in Dharwad because of the objection laid by some jealous Ashram members. It was on 3-3-1914. There were 25 students in the beginning. And this school was known as a branch of Shivyogmandir. It was a mobile school which shifted from one place to another like from Nirgundikoppa to Belgaum, then to Shahapur, Navalgund, Bankapur and many other places in the region spending approximately 3 years at one place. But at Gajendragarh, it settled for 8 years, giving it a new shape- Malleshwar Natak Company. But after 3-4 successful shows only, the company fell flat as it could not compete with the already established famous troupe. Even their musical instruments were mortgaged. It was a tough situation to feed 50-60 students of the music school in such financial conditions.

Gawai decided to make two branches of the school - one being permanent at a place and the other one being mobile. He also wrote a letter to the Mysore Maharaj for financial support, but his sudden death left it undone. Gawai worked hard to run the schools uninterruptedly. He appointed teachers who could teach music and Kannada and Sanskrit to the students in his absence. His sincere efforts won kudos from the notable personalities like D.R. Bendre, Shri F.G. Halkatti, Garud Sadashivray and many others. The number of disciples kept on growing and his family now had 50-60 members. Gawaiji now had huge debts.

Once again the only way left was the establishment of a Natak troop. It was a huge risk. But this time it was done under the supervision of Gawaiji's beloved disciple Puttaraj. In fact, it was Puttaraj who insisted for the same. God always helps those who work for nothing but the good of mankind. The first drama was a big hit! It earned Rs.15000/- on the first day itself. They organized many successful shows at Nargund, Ronn, Mallapur, Banshankari, Talikota, Mela, etc. Later, with the financial assistance of the localites, it got strength and came to be known as **Shri Kumareshwar Kripaposhit Pt. Panchakshari Gawai Natya Mandal.**[4]

Again difficult time came when the whole country suffered from famine during 1942. At that time, the school housed 120-130 boys who were all the way dependent on Gawaiji for their livelihood. People told him to send off the boys to their homes and to re-open the school after this problem comes to an end. But Panchakshari replied at once, "Did you turn your children out of your homes because of famine? I will look after my boys even if I am required to sell off the strings of my tanpura!"[5] Gawai kept his promise and arranged the daily bread for his children with the help of villagers. He settled down to Gadag. The owner of Mahalaxmi Motors, Sh. Basarigidad Veerappa was a keen disciple of Panchahshari Gawaiji. He gifted one acre land to make permanent music school for the blind and the poor students. This school was named 'Veereshwar Punyashram' which is still a place of pilgrimage for the music lovers. This ashram has produced some of the greatest devotees of music. A few of them are **Pt. Puttaraj Gawai, Basavraj Rajguru, Panchakshari Swami Mattigatti, Siddharam Jambaldinni, Sheshadri Gawai, Chittargi Gangadhar Shashtri, Shri Chandrashekhar Puranikmath, Arjunsaa Naakod, Dr. Kumar Das, Ganpati Bhatt Hasanagi, Sh.M. Venkatesh Kumar,** etc.

For the lifelong selfless service of Panchakshari Gawai, he got the following titles-**Ganayogi, Ubhay Gayanvisharad, Sangeet Samrat, lalit kala pitamaha, Bhoo Gandharva Chandra, Gaan kala Nidhi, Sangeet Sagar, Sangeet Sudha Nidhi, Gayanacharya**. Music and linga-pooja are the only two possessions of his life. Through the immense spiritual thinking, he had got the divinity of the soul. People called him 'The Walking God'.

During the late years of his life, he had started leading life of a saint. His health broke down. He refused for a major surgery, which the doctors told him to undergo to cure his illness. He handed

over all the responsibilities of the Ashram to Puttaraj Gawai and left the mortal world on June11, 1944. His disciples took the tradition to new heights and paid tribute to their honourable Guru with their pure and pious swaras.

The Immortal Contribution:-
Veereshwar Punyashram, Gadag.

After the demise of Pt. Panchakshari Gawai, the new pontiff appointed for the Ashram was Pt. Puttaraj Gawai. Puttaraj Gawai, affectionately called 'Ajja' (meaning grandfather in kannada) was the most able disciple of Gawaiji in every sense and he took the Ashram to the new heights marvelously along with the vision with which it was started. It is a common belief among the devotees that Panchakshari Gawai's elder brother Gurubasava who had died at a tender age, had promised to come back in the next birth to fulfill his duty towards the society that gave him as much as the respected life of a musician. So it is popularly believed that Puttaraj was the re birth of Gurubasava and that's why their affection was strong like that of two brothers.

Puttaraj Gawai was a born musician. He was groomed by Panchakshari Gawai as an exponent in both Hindustani as well as Carnatik vocal. Not only in vocal, but he was also an accomplished player of veena, sarangi, violin, sitar, harmonium, mandolin, santoor, sarod and tabla. It is a matter of great surprise that how a blind person could play all these instruments with point blank perfection. People stood mesmerized at his solo recitals be it harmonium, sarangi, sarod, vocal, sitar, violin or any other instrument. He was also a noted literary figure who compiled as many as 80 books in Kannada, Sanskrit and Hindi which include poems, puranas (devotional prose), musical works etc. He wrote about 19 dramas. He had a strict rule that all the roles of female characters would also be enacted by male artists only. This rule is followed till date.

Gawaiji is a recipient of countless prestigious awards. To name a few, Padmashri, Padmabhushan, Kalidaas Samman, Kanak Purandar Prashasti, T. Chawdiah National Award, Nadoj Prashasti and the Doctorate Degree from Karnataka University, Dharwad.

Under the auspicious guidance of Pt.Puttaraj Gawai, the Veereshwar Punyashram developed as an **education hub**. Not only music, but Kannada, Sanskrit, Hindi other subjects also began to be taught. Today there are about 12 institutes named after Pt. Panchakshari Gawaiji. The names of these institutes are:-

1. Pt. Panchakshari Gawai Pre Primary School, Gadag
2. P.P.G. Primary School, Gadag
3. P.P.G. High School, Gadag
4. P.P.G. Residential Music School for Blind, Gadag
5. P.P.G. Residential Braille School, Gadag
6. P.P.G. Arts College, Gadag
7. P.P.G. Music College, Gadag
8. P.P.G. B.Ed College, Gadag
9. P.P.G. D.Ed College, Gadag
10. Shri Kumareshwar Kripaposhit Sangeet Paathshala, Gadag
11. Music School, Shri Veereshwar Punyashram, Gadag
12. Pt. Puttaraj Gawai Sanskrit Paathshala, Gadag.

Since its establishment on 3-3-1914[6]*, coincidently the day when Puttaraj Gawai was born, the Ashram has been doing a fabulous job of feeding and educating the blind, orphan, poor, down trodden and physically challenged children totally free of cost. Till the recently taken decision by the Govt.of Karnataka of considering it as a special case for sanctioning the aid and grants, all the financial ends of all the above said institutes were met by the voluntary donations given by the devotees. People of Karnataka and surrounding areas practice a ritual known as *Tulabhara* in which they use to weigh a reputed personality with silver, gold, coins etc. Puttaraj Gawai has so far received these reverential offerings 2110 times which has set an all time record[7]. And to mark his dedication for the Ashram, all that which he received through these tulabharas and as an honorarium from the concerts, he used to donate it to the Ashram.

The Journey of Veereshwar Punyashram through odds and evens:-

The golden history of Ashram has been glorified by a number of able scholars. The Ashram has produced countless talented vocalists, instrumentalists, keertankars, drama artists, and Sanskrit and kannada scholars. However in its journey of about hundred years, sea changes have been occurred from time to time. I talked to Pt. M Venkatesh Kumar, an eminent vocalist who was a scholar of Ashram under the tutelage of Puttaraj Gawai. He told-

"*During my childhood, there were very strict rules of the Ashram which were to be followed by everyone compulsorily. Any male student could get admission by signing a bond of staying there for minimum 6 and maximum 12 years. Once admitted, the student had to wake up at 4 in the morning. After the morning practice session, they were to do their daily routine including the 'ling pooja'. After the class with Guruji they were provided direct lunch and dinner, no breakfast or evening snacks!" Venkatesh Kumarji jocularly told me that seeing this rigorous 'army training' I attempted to run out a number of times, but unfortunately caught every time*"[8].

Who knew, to become one of the most fortunate scholars of the Indian Classical Music world! This hard core training carved out a number of sparkling stars. Among them are:-Pt. M Venkatesh Kumar, Pt. Ganapati Bhatt Hasangi, D Kumar Dass, Somnath Mardur, Hanumanthrao Hangal etc.

But as I talked to Shri Kiran Hangal, a young disciple of Pt. Puttaraj Gawai and a lecturer at Arts College, Gadag, he was seen unsatisfied with the tendency of the present generation of students. He honestly told that there was a time when 500 out of 500 students of the Ashram used to be good singers but now 10-15 out of 500 can be found. The dedication towards music has lessened. But with the beginning of degree college which provides degree along with the practical knowledge has changed this tendency to a great extent. With Guruji's graceful blessings, and with the availability of good faculty here, things are going to be changed soon.However, all these things are quite natural as we see in almost all fields. We cannot compare two

generations because sea changes have been occurred with the changing times. The natural tendency of the people in those days was 'contented types' but in the day today's competitive world, they have to take care of all directions. Moreover the divine tutelage of Puttaraj and Panchakshari Gawai succeeded in throwing their spiritual impact over the psychology of their disciples.

Param Poojya Shri Kalayya Swamiji is the present pontiff of the Veereshwar Punyashram after the demise of Puttaraj Gawai. He is the administrator of the Ashram as appointed by Puttarajji. However no one can be compared with Panchakshari and Puttaraj Gawai for both of them being divine incarnations and possessed the godly virtues. Shri Nagayya Shirol Gawai is the tutor for the schoolars.

Since everybody who has undergone training under Gawaiji, feels it his moral duty to return whatever he has received from the Ashram and is bound to contribute their part to run the Ashram with the vision with which it was started. The devotees have made the temple of Pt. Panchakshari Gawai, Shri Hangal Kumarswamiji and Puttaraj Gawai amidst the premises to allow a spiritual aura to flow through the devotees as well as the Ashram. As I visited the place personally, I didn't feel that I have come to some institution but it seemed that I have come to a holy place for pilgrimage. Every music student has Gawaiji's image in their *pooja ghar* and they worship it reverentially like the God. This Guru-Shishya duo has dedicated their lives for the good of others; and recognizing their efforts, their disciples are also trying hard to keep the tradition alive and also to give new dimensions to it. With Gawaiji's graceful hand over the head, the passed out scholars who have earned a name in the field of music are also coming forward to give a new push to the Ashram and this can be seen in the annual events and festivals of the Ashram. Ashram administration holds music festivals on the special occasions in the memory of Shri Kumarswamiji, Pt.Panchakshari Gawai and Pt.Puttaraj Gawai. The artists of Karnataka take it as an opportunity to perform there, leave aside the demand of payment. The Ashram is not just a musical institute for the devotees, it has become as a subject of their veneration and faith. People of all castes, creeds, communities, religion and status come to pay homage to the Ashram.

Conclusion:-

This sacred place will retain its prestige and will impart the positive aura to the natives in the same way as it has been giving since the times of Panchakshari and Puttaraj 'Ajja'. May the divine blessings of the Gawai Guru Shishya duo and Kumarswamiji be showered on each and every aspirant of music who is residing there or may come to reside.

References:-

1) The people of Karnataka used to call Gawaiji with this name
2) Told by a localite Veershaiv practitioner
3) Pro. Kanavalli Sadanand, Karnataka's Hindustani Musicians
4) Pro. Yammiyavar Mallikarjun, Gaanyogi Pt. Panchakshari Gawai
5) Pro. Kanavalli Sadanand. Karnataka's Hindustani Musicians
6) Interview by researcher Monika Soni
7) Interviewed by researcher Monika Soni
8) Interviewed by researcher Monika Soni
9) Interviewed by researcher Monika Soni

धूमिल : जन संवेदना का कवि

डा. संध्या कुमारी सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर ए हिंदी विभाग, दार्जिलिंग गवर्नमेंट कॉलेज, दार्जिलिंग

आज़ादी के बाद हिन्दी कविता को विभिन्न काव्य-आंदोलनों ने समृद्ध किया है जिसमें साठोत्तरी काव्य आंदोलन की भूमिका बड़ी बढ़-चढ़ कर रही थी। कारण यह था कि इस आंदोलन में एक साथ तीन पीढ़ी के कवि अलग-अलग मिज़ाजों के साथ अपने समय की सच्चाई से रूबरू हो रहे थें। राहें अलग थीं पर परिस्थितियों का सांचा ऐसा था कि सन् साठ के बाद की हिन्दी कविता का मूल स्वर प्रायः एक - सा था। और वह मूल स्वर था—'जीवन की आलोचना' जैसा कि मैथ्यू आर्नोल्ड मानते हैं कि कविता जीवन की आलोचना है। ठीक इसी तर्ज पर साठोत्तरी कविता जीवन की आलोचना में सबसे आगे खड़ी दिखाई देती है। और यह जीवन 'समकालीनता' या 'वर्तमानता' से जुड़ा हुआ है—यानी यहाँ अतीत का भूत नहीं है बल्कि जो है वह 'वर्त्तमान' है। 'आज' पर निगाह रखने की वजह से 'समकालीनता' को नारा बनाकर साठोत्तरी कविता ने अपनी केंद्रीय धुरी में 'वर्तमान' को रखा है। और जैसा कि हम जानते हैं कि सन् साठ के बाद का 'वर्तमान' बहुत ज्यादा सुखद नहीं था बल्कि वह भारत की आम जनता की उम्मीदों पर पानी फेरता था। इसलिए इस दौरान हिन्दी कविता की आँख 'समकालीन चुनौतियों' पर टिकी थी। समकालीनता पर बात करना अपने-आप में कोई गैर-महत्व की चीज़ नहीं है। बल्कि समकालीनता भी अपने-आप में कविता के लिए एक ज़रूरी मूल्य है। इसी को मद्देनज़र रखते हुए कवि उदयप्रकाश अपनी एक कविता 'बचाओ' में लिखते हैं—"इधर मैं एक बार फिर करता हूँ प्रयत्न / कि बच सके तो बच जाए/ हिन्दी में समकालीन कविता।" हिन्दी में समकालीन कविता को बचाए रखने की कोशिश हमें अंततरू उन कवियों की तरफ ले जाती है जिन्होंने अपनी कविताओं के ज़रिए समकालीन कविता को एक आंदोलन के रूप में एक मुक्कमल ज़मीन दी तथा कविता को एक सार्थक वक्तव्य मानते हुए उसे जन पक्षधरता का सबसे बड़ा औजार माना। ऐसे ही कवियों में धूमिल का ज़िक्र किया जाता है। धूमिल के रूप में हिन्दी को एक ऐसा युवा कवि मिला जिसने जन पक्षधरता को कविता के लिए एक अनिवार्य शर्त घोषित किया और वह स्वयं इस शर्त को जिंदगी भर निभाता रहा।

नई व ताज़ी शब्दावलियों और मुहावरों से लैस अपनी बेबाक कविताओं से वह हिन्दी जगत को चौंकाता हुआ धूमकेतु की तरह उदित हुआ था और उसने मजबूर किया कि हिन्दी आलोचना उस पर बात करे। हिंदी आलोचना और हिंदी के पाठक पहले-पहल तो थोडा सकुचाए परन्तु उसकी कविता के आंच से बहुत दिनों दिनों तक अपने-आप को बचा नहीं पाए। अंततः हिंदी आलोचना की नींद खुली और धूमिल उसके लिए एक विचारणीय विषय बने। धूमिल विचारणीय इसलिए बने कि उनकी कविता उसके लिए लिखी जा रही थी जो कविता के सबसे बड़े सरोकारों में से एक था। यानी उस आम आदमी के लिए। उस आम आदमी के जद्दोजहद में

ही धूमिल अपनी कविता की भूमिका तय कर रहे थें। सो जाहिर है उन्हें नज़रंदाज़ करना हिंदी आलोचना के लिए शुभ साबित नहीं होता।

देश में सन् साठ के बाद सबसे मज़लूम स्थिति में जो खड़ा था वह था आम आदमी। साठोत्तरी पीढ़ी के कवियों में धूमिल के यहाँ इस आम आदमी की विविध छवियाँ सबसे ज़्यादा उपलब्ध होती हैं। यह आम आदमी अपनी पूरी विवशता और संघर्ष के साथ उनकी कविताओं में जहाँ-तहाँ खड़ा मिल जाता है और साथ ही पूरी शिद्दत के साथ धूमिल भी उसी के बगल में खड़े दिखाई पड़ते हैं। इस आम आदमी के बारे में डा. विश्वनाथ प्रसाद का कहना है—"यह आम आदमी भोजपुरी अंचल का है। इसमें होरी से अधिक आँचलिकता है लेकिन पूरे हिन्दुस्तान के नक्शे पर होरी की तरह जूझता हुआ दिखाई पड़ता है। होरी टूट जाता है लेकिन यह सिर्फ़ जूझता है और जूझता है।" 1. प्रेमचंद के यहाँ यह आम आदमी गाँव में बसा हुआ था पर धूमिल तक आते आते यह आम आदमी गाँव से बेघर होता हुआ, निर्वासित होता हुआ शहर की चौहद्दी में दाखिल हो जाता है। अतः धूमिल के पास इस आम आदमी के गाँव और शहर दोनों की जिंदगी के टुकड़े बिखरे हुए मिल जाते हैं।

धूमिल के यहाँ कविता और आम आदमी के बीच का जो रिश्ता है, वह बड़ा प्रगाढ़ है। जब धूमिल इस आम आदमी के गाँव और शहर की जिंदगी के ताने-बाने को अपनी कविता में पकड़ते हैं तो साठोत्तर भारत भी अपनी तमाम विसंगतियों के साथ उनकी कविता की पटकथा कि संरचना में शामिल हो जाता है। उनकी कविता में निहित संवेदना के विविध धरातलों से गुजरते हुए हम हिन्दुस्तान की एक ऐसी दुनिया में दाखिल होते हैं जहाँ जनतंत्र के सूर्योदय में बीस साल बाद भी बसंत के इंतज़ार में अकाल-दर्शन और पतझड़ पर पटकथा लिखी जाती है, जहाँ शहर का व्याकरण ठीक करने के लिए मोचीराम भाषा की रात में किस्सा जनतंत्र पर दस्तक देते हुए रोटी पर संसद से सवाल पूछता है ए जहाँ सुदामा पांडे खेवली में गाँव का कीर्तन सुनते हुए दूसरे प्रजातंत्र की तलाश में कल सुनना मुझे की ललकार देता है।

धूमिल आज़ाद भारत के उस दौर के कवि हैं जिस दौर में समुचा देश मोहभंग की प्रक्रिया से गुज़र रहा था। मोहभंग से गुजरते हुए भारतीय जन की पीड़ा को धूमिल ने जिस अंदाज़ में अपनी कविताओं में पेश किया है वह उन्हें एक अलहदा मिज़ाज के कवि के रूप में पहचान देता है। अलहदा मिज़ाज इस अर्थ में कि धूमिल आते तो हैं बिल्कुल गँवई पृष्ठभूमि से, परंतु अपनी खरी और आलोचकीय अंतर्दृष्टि द्वारा समकालीन भारत के उन चेहरों को टटोलते हैं, उन चेहरों को उकेरते हैं, उन चेहरों को पहचानते हैं, जो चाहे शहर में रह रहा हो या गाँव में, लगातार सड़न की तरफ बढ़ रहा था। इस सड़न को धूमिल एक ऐसे ठेठ अंदाज़ में दिखाते हैं कि कभी-कभी वह सुरुचिभंजक भी हो जाता है। दरअसल धूमिल के पास अभिजात्यपन की झांकियाँ नहीं हैं। इस मायने में वे अपने समकालीनों में सबसे अधिक प्रखर और मूर्तिभंजक दिखते हैं। उनके यहाँ यथार्थ मखमली लिबास में लिपटा हुआ नहीं आता है बल्कि तमतमा देनेवाले तेवर के साथ आता है। वजह स्पष्ट है आजाद भारत में आम आदमी के मोहभंग और व्यथा की कथा को मखमली अंदाज में पेश नहीं किया जा सकता था। धूमिल इस तथ्य से परिचित थे। इसलिए उनकी कविता के कैनवास पर जो है वह खरा है, मलंग है, साबूत है। कहीं कोई काट-छांट नहीं।

धूमिल की कविता जिस दौर में संस्कारित हो रही थी उस दौर में एक तरफ नयी कविता ढलान पर थी तो दूसरी तरफ अकविता का फैशन जोर पकड़ रहा था। जाहिर है धूमिल की कविता पर इस संक्रमण का प्रभाव पड़ना ही था और पड़ा भी है। पर जैसा कि हम जानते हैं कि धूमिल बड़ी जल्दी अकविता के प्रभाव से मुक्त हो गए। अपने समय के तमाम काव्यान्दोलनों से गुजरते हुए उनकी कविता अब उस राह की ओर बढ़ चली थी जहाँ 'अक्षरों के बीच गिरे हुए / आदमी को पढो' की शर्त अनिवार्य थी। आदमी को पढ़ना कविता लिखने की कसौटी

बनी। इस कसौटी पर धूमिल ताउम्र अपने-आप को और अपनी कविता को कसते रहें।

धूमिल की काव्य-चेतना के विकास का चरण उनके तीन काव्य-संग्रहों के जरिए देखा जा सकता है–संसद से सड़क तक (1972 ई.), कल सुनना मुझे (1977 ई.) और सुदामा पांडे का प्रजातंत्र (1984 ई.)। इन तीनों काव्य-संकलनों के नाम से ही यह पता चल जाता है कि धूमिल की काव्य-चेतना आम-जन की पक्षधरता के लिए संसद से सड़क तक की यात्रा करती है और जरूरत पड़ने पर केवल अपनी कविताओं के लिए ही नहीं बल्कि आम आदमी के लिए भी दूसरे प्रजातंत्र के तलाश की संभावना जगाती है। संभावना की तलाश करनेवाली कविता ही कालजयी बनती है।

धूमिल का पहला काव्य-संग्रह 'संसद से सड़क तक' सन 1972 ई. में आया। इस संग्रह के साथ ही हिंदी कविता में उनकी सशक्त उपस्थिति दर्ज होती है। नागार्जुन, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, मुक्तिबोध, रघुवीर सहाय की बिरादरी में धूमिल भी जा विराजते हैं। इस संग्रह से उनकी पहचान एक जागरूक कवि के रूप में बनती है। उनकी जागरूकता राजनीतिक और सामाजिक चेतना–दोनों के सन्दर्भ में दिखलाई पड़ती है। इस संग्रह की कविताएँ धूमिल को खास तौर पर राजनीतिक चेतना के कवि के रूप में चिन्हित करवाती हैं। इन कविताओं में उनकी राजनीतिक समझ के विविध आयाम देखने को मिलते हैं। भले ही उनकी राजनीतिक समझ पर कुछ आलोचकों ने टीका-टिप्पणी कीं हैं। यह सही है कि उनकी राजनीतिक समझदारी कहीं-कहीं पूर्वाग्रह से ग्रस्त दिखलाई पड़ती है पर यह पूर्वाग्रह ही उन्हें जन-संवेदनाओं के करीब ले जाता है। आम आदमी और उसका भविष्य तय करने वाली राजनीति को धूमिल जिस रूप में देखते हैं उससे यह तय होता है कि वे प्रतिबद्ध ही नहीं हैं बल्कि आम आदमी के प्रति सजग और चौकन्ने भी हैं। वे स्वयं यह मानते हैं कि " 'कोई चीज़ कहाँ है और कैसे है।' का बोध ही मेरी रचना का धर्म है।"[2]

सही और संतुलित बोध के साथ ही धूमिल समकालीन समय के विरूप यथार्थ से आमना-सामना करते हैं। इस आपसी मुठभेड़ में एक तरफ राजनीतिक परिदृश्य का खोखलापन उजागर होता है तो दूसरी तरफ जन-संवेदनाओं को किस तरीके से भोथरा बनाया गया ए इस षड्यंत्र का भी पर्दाफाश होता है। उनकी कविता समकालीन परिवेश को परत-दर-परत खोलती चली जाती है। और चीजें जैसे-जैसे साफ होती जाती हैं, धूमिल की कविता की भूमिका भी स्पष्ट होती चली जाती है।

धूमिल राजनीतिक चेतना के साथ जन-संवेदना को समझने का प्रयास करते हैं इसीलिए उनकी कविताओं में प्रवेश करने पर यह साफ पता चलता है कि उनमें व्यवस्था के प्रति विद्रोह है, आक्रोश है, असहमति है, प्रतिवाद है। पर यह भी सच है कि विद्रोह, आक्रोश, असहमति, प्रतिवाद–प्रकट करते वक्त धूमिल कहीं भी पूर्ण रूप से नकारात्मक नहीं होते हैं और यही उनकी कविता की ताकत है। दरअसल उस समय देश का सामाजिक व राजनीतिक माहौल इस कदर विसंगतियों के मकडजाल में उलझा था कि उससे केवल असहमत या विक्षुब्ध हुआ जा सकता था।

आजादी के बाद हमारे यहाँ जिस व्यवस्था को पाला-पोसा गया, उसमें आम आदमी के लिए आशा की कोई किरण नहीं थी। उसे भारी-भरकम शब्दों का झुनझुना थमा दिया गया था। उस आम आदमी को यह अहसास दिला दिया गया था कि तुम्हें आजादी मिल गई है पर धूमिल इस बात को गहराई से महसूस करते हैं कि जिस आज़ादी के सपने देखे और दिखाए गए थे वह 'आज़ादी सिर्फ तीन थके हुए रंगों का नाम है। जिन्हें एक पहिया ढोता है।' यह आज़ादी मुठ्ठी भर लोगों के हिस्से आई थी, आम जन तो हाशिये पर बैठा उस आज़ादी का इंतजार करता रह गया जिससे उसके हिस्से भी कुछ रोशनी आती। आज़ादी का मतलब केवल सत्ता का परिवर्तन तो नहीं था। गोरे महाप्रभुओं के बदले काले महाप्रभुओं के अधीन होना तो आज़ादी नहीं थी। पर

ऐसा ही हुआ था। धूमिल व्यवस्था और सत्ता के इस तिलिस्मी परिवर्तन से भली-भांति परिचित हैं। महज़ टोपियाँ बदलने से जनतंत्र नहीं आता। केवल पावर का ट्रांसफर होता है। धूमिल टोपियों के बदलने को आज़ादी की संज्ञा नहीं देते। वे उस मुहावरे की पहचान कर लेते हैं जिसकी आड़ में आम आदमी को खूब छला और ठगा गया है और आज भी वह छला जाता रहा है–

'उस मुहावरे को समझ गया हूँ
जो आज़ादी और गाँधी के नाम पर चल रहा है
जिससे न भूख मिटी है ए न मौसम
बदल रहा है।'[3]

इस मुहावरे को भुनाने वाले लोगों की नीयत पर चोट करते हुए धूमिल गजब के निजी मुहावरे गढ़ते हैं–

''मगर चालक 'सुराजिये'
आज़ादी के बाद के अँधेरे में
अपने पुरखों का रंगीन बलगम
और गलत इरादों का मौसम जी रहे थे
अपने अपने दराजों की भाषा में बैठकर
गर्म कुत्ता खा रहे थे
सफ़ेद घोडा पी रहे थे।'[4]

इन नए गढ़े हुए मुहावरों में देश के राजनीतिक सरमायेदारों के चरित्र का खुलासा होता है। धूमिल अपनी राजनीतिक चेतना के राडारों से भारतीय राजनीति में आये विस्खलन और विचलन को इस रूप में देखते हैं–

"लाल हरी झंडियाँ
जो कल तक शिखरों पर फहरा रही थीं
वक्त की निचली सतहों में उतरकर
स्याह हो गई हैं और चरित्रहीनता
मंत्रियों की कुर्सियों में तब्दील हो चुकी हैं।'[5]

धूमिल की राजनितिक चेतना पर विचार करते हुए यह साफ़ पता चलता है कि जनतंत्र, आज़ादी, संसद, क्रांति जैसे शब्दों से वे अपना मोह तोड़ चुके थे। उन्हें यह भली-भांति अंदाज़ा हो गया था कि इस समय और इस देशकाल में ये सारे शब्द वेमानी होते जा रहे हैं। इन शब्दों के मुल्लमे छुट गए हैं। अर्थहीन शब्दों से दुनिया नहीं बदलती। और न अर्थच्युत शब्दों से आशा या भरोसा बंधता है। इन मुल्लमे छुटे शब्दों की निरर्थकता के समय में आम आदमी को धूमिल आगाह करते हैं–

"तुम खुद सोचो कि डबरे में
डूबता हुआ सूरज
खेत की मेड पर खड़े आदमी को
एक लम्बी परछाई के सिवा और क्या दे
सकता है।'[6]

धूमिल आम आदमी को सावधान करने के साथ-साथ चेताते भी हैं–

"इसीलिए मैं फिर कहता हूँ कि हर हाथ में
गीली मिट्टी की तरह–हाँ-हाँ मत करो
तनो
अकडो
अमरबेलि की तरह मत जियो।'[7]

वास्तव में धूमिल जनता के पक्ष में अपनी कविता के साथ खड़े होते हैं। वे चाहते हैं कि आम जन कि जड़ता टूटे और इसके लिए वे अपनी कविताओं को औजार कि अरह इस्तेमाल करते हैं। जिस जनतंत्र में गैर-बराबरी और अन्याय कि फसल ही तैयार हुई हो ए उस जनतंत्र को धूमिल एक चमकदार शब्द के अलावा कुछ नहीं मानते–

"और हवा में एक चमकदार गोल शब्द
फ़ेंक दिया है–'जनतंत्र'
जिसकी रोज सैकड़ों बार हत्या होती है
और हर बार
वह भेड़ियों की जुबान पर जिन्दा है।'[8]

ऐसा नहीं है कि धूमिल भारतीय जनतंत्र की केवल आलोचना करते हैं बल्कि यह भी सच है कि वे इसके विकल्प को तलाशने की दिशा में भी पहल करते हैं।

धूमिल यह परिलक्षित करते हैं कि इस लोकतंत्र में राजनीतिक व्यवस्था ने ऐसी घेराबंदी करके रखी

है जहाँ आम जन की हालत भेड़ों की तरह हो गई है। इस लुभावने जनतंत्र में जनता ''एक भेड़ है। जो दूसरों की ठण्ड के लिए। अपनी पीठ पर ऊन की फसल ढो रही है।''[9] भारतीय लोकतंत्र में लोक की नियति का इससे बड़ा उदाहरण और क्या हो सकता है।

देश के राजनीतिक कर्णधार तय करते हैं कि लोक को क्या करना है—''उन्होंने सुरक्षित कर दिए हैं। तुम्हारे संतोष के लिए। पड़ोसी देशों की भुखमरी के किस्से। तुम्हारे गुस्से के लिए। अखबार का आठवां कालम। और तुम्हारी ऊब के लिए। 'वैष्णव जण तो तेणे कहिये' की। नमकीन धुन।''[10] और लोक अपनी त्रासदी पर चुप है, मौन है। यह चुप्पी, यह मौन-धूमिल को अखरती है। वे चाहते हैं कि यह चुप्पी टूटे—"चीख ए अपने होने की पीड़ा से चीख।"[11] सही मायने में धूमिल की कविता 'अपने होने की पीड़ा' का अहसास करवाना चाहती है। यहाँ भी एक विमर्श की सुगबुगाहट है और वह है—'अपने वजूद के होने' का विमर्श। अपनी अस्मिता को महसूस करने का विमर्श। इसीलिए धूमिल प्रेरित करते हैं—''अब वक्त आ गया है कि तुम उठो। और अपनी ऊब को आकार दो।''[12] गौरतलब है जब तक आम जन अपनी ऊब से नहीं उबरेगा तब तक जनतंत्र के नुमाइंदे राजनीतिक व्यवस्था की आड़ में जनतंत्र को लुभावने नारे में बदलते रहेंगे। और लोक-लुभावन नारों से आम जन को कुछ हासिल नहीं होने वाला है। बल्कि इन लुभावने नारों से जनतंत्र कमजोर होगा।

धूमिल अपने समय के परिवेश पर लगातार नज़र रखे हुए थे। वे जानते थे कि समकालीन परिवेश से टकराए बिना कविता लिखना बेमानी है। कुछ आलोचक उनकी कविता में आये हुए समकालीन परिवेश को देखकर उन्हें 'परिवेश का कवि' की संज्ञा से नवाज़ते हैं पर इस प्रसंग में ब्रह्मदेव मिश्र का विचार है कि "धूमिल परिवेश के कवि इसीलिए हैं कि परिवेश में व्याप्त विसंगतियों का पर्दाफाश कर उन्हें दूर करने की पहल कर सकें, इसलिए नहीं कि परिवेश की पड़ताल उनकी हॉबी है और उसकी सहायता से काव्य-रचना करना उनके लिए सुभीते की चीज़ है।... धूमिल को अपने परिवेश और उसमें व्याप्त गतिविधियों से गहरा लगाव है। इसी से उनकी कविता को खुराक मिलती है और वह भाषा भी जिसके बल पर उन्होंने हिंदी कविता का व्याकरण ही बदल डाला।''[13]

इस परिवेश पर नज़र रखने के कारण ही धूमिल की राजनीतिक और सामाजिक चेतना में एक समझ दिखलाई पड़ती है। वह मात्र आक्रोश की अभिव्यक्ति नहीं है बल्कि उसमें एक गहरी सम्पृक्ति और अंतर्दृष्टि काम करती है। उसमें मात्र विद्रोह नहीं है बल्कि करुणा भी है ए आम आदमी के दुःख-दर्द ए अभाव व संघर्ष के साथ खड़ा होने की एक प्रतिबद्धता भी है। इसी वज़ह से धूमिल की कविता अपने आप में एक सार्थक वक्तव्य होती है। वह नारों और जुमलों से होती हुई संवेदना से जुड़ती है। संवेदना से जुड़ना ही आदमियत को बचाने की कोशिश से जुड़ना है।

धूमिल की कविता राजनीतिक चेतना के साथ सफ़र करती हुई उस आम आदमी के सरोकारों से जुड़ती है जो गाँव में रहता है तथा शहर में भी बसता है। धूमिल की अपनी जड़ें भी गाँव से गहराई से जुडी हुईं थीं। इसीलिए उनके यहाँ गाँव अपनी पूरी गंवई संस्कारों के साथ उपस्थित है। यहाँ सुमित्रानंदन पन्त का 'अहा ग्राम' नहीं है बल्कि उत्तर प्रदेश और बिहार के सामंती रुढियों में आबद्ध गरीबी, अशिक्षा, कुसंस्कार, पिछड़ापन, अभावग्रस्तता आदि से जूझते हुए 'गाँव' हैं। गंवई जिंदगी की जितनी प्रामाणिक अभिव्यक्ति यहाँ हुई है वह अन्यत्र देखने को नहीं मिलती। धूमिल ने अपने 'गाँव', 'खेवली' पर कविता लिखी है जो उत्तर भारत के अधिकत्तर गांवों की तस्वीर बयां करती है। गाँव, जो अपने मूलभूत चरित्र से दिन पर दिन कटते जा रहे हैं, वहां न सुगबुगाहटें हैं और न सपने। जड़ता से ग्रस्त गाँव जड़ बन गए हैं। गाँव की त्रासद विडम्बना को धूमिल शब्दों का जामा यूँ पहनाते हैं—"वहां न जंगल है न जनतंत्र / भाषा और गूंगेपन के बीच कोई / दूरी नहीं है... / सोच में डूबे हुए चेहरों और / वहां दरकी हुई जमीन में कोई फर्क नहीं है।''[14]

'गाँव' अब अभाव के केंद्र हैं। वहां नफरत और आपसी ईर्ष्या-द्वेष चरम पर पहुंचे हुए हैं। गाँव का यथार्थ अब सहज नहीं रह गया है बल्कि सोचने पर विवश करता है कि गाँव में इतना बदलाव आया कैसे—गाँव की सहज रंगत कहाँ चली गई। धूमिल की चिंता में गाँव के ये सारे बदलाव शामिल हैं—

"मेरे गाँव में हर रोज ऐसा ही होता है
नफरत की आड़ में
चीजें अपना चेहरा उतारकर रख देती हैं
...नलकूपों की नालियाँ झरना हो गई हैं
उनमें अब लाठियां बहती हैं और पानी की जगह
आदमी का खून रिसता है।"[15]

धूमिल गाँव के साथ-साथ शहर को भी याद करते हैं। 'शहर में सूर्यास्त', 'शहर का व्याकरण' और 'शहर, शाम और एक बूढा : मैं' कवितायें इसका प्रमाण हैं। गाँव से शहर की ओर यात्रा करते हुए उनकी काव्य-चेतना उस आम आदमी पर टिकती है जो अपनी आम जरूरतों को पूरा करने में अपनी पूरी ज़िन्दगी खपा देता है। उसकी सबसे बड़ी जरुरत उसके भूख से जुडी है यानी रोटी। धूमिल बार-बार रोटी की समस्या को उठाते हैं। वे जानते हैं कि भूख दुनिया का सबसे बड़ा सच है। भूख से लड़ाई लड़ते हुए एक आम आदमी शहर में कैसी जिंदगी बसर करता है, इसका बेहतरीन उदाहरण 'किस्सा जनतंत्र' कविता में दिखलाई पड़ता है। भूख से दो-चार करने की मुद्रा में जूझता आदमी धूमिल की कविता के अलावा और कहाँ मिलेगा...

"तभी मुँह दुब्बर/दरबे में आता है—खाना तैयार है।
उसके आगे थाली आती है / कुल रोटी तीन
खाने से पहले मुँह दुब्बर / पेट भर
पानी पीता है और लजाता है
कुल रोटी तीन / पहले उसे थाली खाती है
फिर वह रोटी खाता है /"[16]

कवि धूमिल इस तथ्य से भली-भांति वाकिफ हैं कि 'भूखे आदमी का सबसे बड़ा तर्क / रोटी है।' पर यह रोटी आम आदमी को आसानी से नसीब कहाँ हो पाती है। वह रोटी के लिए एक ऐसी दुनिया में शामिल हो जाता है जहाँ पत्नी को चूमने तक का ख्याल टीस पैदा कर जाता है—

"वक्त घडी से निकलकर / अँगुली पर आ जाता है / और जूता / पैरों में, एक दंतटूटी कंघी / बालों में गाने लगती है /... एक फटेहाल कलफ कालर / टांगों में अकड़ भरता है। और खटर-पटर एक ढढ्ढा साइकिल/ लगभग भागते हुए चेहरे के साथ / दफ्तर जाने लगती है / सहसा चौरास्ते पर जली लाल बत्ती जब / एक दर्द हौले से हिरदै को हूल गया / "ऐसी क्या हड़बड़ी कि जल्दी में पत्नी को / चूमना / देखो ए फिर भूल गया /"[17]

इस तस्वीर का एक और पहलू है। धूमिल उस पहलू को भी अपनी पैनी निगाह से देखते हैं। इसी हिनुस्तान में एक वर्ग ऐसा है जिसके लिए रोटी चिंता का विषय नहीं है। रोटी, उसके लिए खेलने का सबब है। यह वर्ग रोटी से खेलता है। धूमिल इस वर्ग की तहकीकात करते हैं। वे सीधे-सीधे देश की सर्वोच्च लोकतांत्रिक संस्था संसद से सवाल करते हैं पर संसद की इस मामले में चुप्पी बहुत कुछ सोचने पर मजबूर कर देती है। संसद की चुप्पी पर विचार करते हुए धूमिल उसे यूँ परिभाषित करते हैं—*"यह सच है कि / अपने यहाँ संसद-/ तेली की वह घानी है / जिसमें आधा तेल है / और आधा पानी है/"*[18]

धूमिल समकालीन यथार्थ को केवल चिन्हित नहीं करते हैं बल्कि उस कटु और पीड़क यथार्थ के बिच से गुजरते हुए एक ख्वाब अपनी आँखों से देखते हैं—*"अब कोई बच्चा / भूखा रहकर स्कूल नहीं जाएगा। अब कोई चाट बारिश में / नहीं टपकेगी / अब कोई आदमी कपड़ों कि लाचारी में / अपना नंगा चेहरा नहीं पहनेगा /"*[19]

प्रतिवादी कवि का प्रतिवाद तभी सार्थक होता है जब वह आने वाले कल में रोशनी की तलाश करता है। धूमिल व्यवस्था के सामने केवल प्रश्न खड़े नहीं करते हैं बल्कि विकल्प की तलाश में लड़ते हुए आने वाले कल के बेहतरी के लिए एक रास्ता भी तैयार करते हैं—

"कल सुनना मुझे / जब दूध के पौधे झर रहे
हों सफ़ेद फूल / निःशब्द पीते हुए बच्चे की जुबान

पर / और रोटी खायी जा रही हो चौके में। गोश्त के साथ।...कल सुनना मुझे। आज मैं लड़ रहा हूँ।''[20]

आत्म संघषी धूमिल की काव्य-संवेदना को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि उनकी कविता जिंदगी की सही समझ से संचालित आम जन के प्रति रचनात्मक जिम्मेदारी का नाम है। दरअसल धूमिल जीवन से बाहर जाकर कविता का ताना-बाना नहीं रचते बल्कि जीवन में रमकर, जूझकर कविता से रूबरू होते हैं ए एकमेव होते हैं।

सन्दर्भ :

1. प्रसाद, विश्वनाथ, साहित्यिक निबंध, धूमिल की कविता, पृष्ठ - 189-190
2. नया प्रतीक-फरवरी, 1978, पृष्ठ -4
3. धूमिल, संसद से सड़क तक, पृष्ठ - 16
4. वही, पृष्ठ - 46
5. वही, पृष्ठ - 43
6. वही, पृष्ठ - 48
7. वही, पृष्ठ - 48
8. वही, पृष्ठ - 44
9. वही, पृष्ठ - 104
10. वही, पृष्ठ - 91
11. वही, पृष्ठ - 97
12. वही, पृष्ठ - 113
13. मिश्र, ब्रह्मदेव, धूमिल की श्रेष्ठ कविताएँ, पृष्ठ - 32
14. वही, पृष्ठ - 71
15. धूमिल, कल सुनना मुझे, पृष्ठ - 45
16. मिश्र, ब्रह्मदेव, धूमिल की श्रेष्ठ कविताएँ, पृष्ठ - 67
17. वही, पृष्ठ 68
18. धूमिल, संसद से सड़क तक, पृष्ठ - 127
19. वही, पृष्ठ - 100 - 101
20. मिश्र, ब्रह्मदेव, धूमिल की श्रेष्ठ कविताएँ, पृष्ठ - 70

सिद्धेश्वरी देवी की सांगीतिक यात्रा

चित्रा चौरसिया

शोधार्थी, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

काशी विश्वनाथ की पावन भूमि में 8 अगस्त 1908 में जन्मीं ठुमरी गायन की सुप्रसिद्ध गायिका सिद्धेश्वरी देवी जी की गायन शिक्षा का सिलसिला 7-10 वर्ष की अल्पायु से आरम्भ हुआ। आपने अनेक उस्तादों से शिक्षा अर्जन सुचारू रखा और संगीत के क्षेत्र में सफलता प्राप्त करती गयीं। गुरू सिया जी महाराज जानते थे कि सिद्धेश्वरी देवी अपने हम उम्र में सबसे श्रेष्ठ व उत्तम है, वो हमेशा चाहते थे कि सिद्धेश्वरी जी केवल प्रतिष्ठित शाही समारोह राजा या किसी धनी व्यापारियों के यहाँ गायन करे और अपनी श्रेष्ठता या उत्तमता प्रभावित करें। इस प्रकार सिद्धेश्वरी देवी जी का प्रथम सार्वजनिक प्रदर्शन पड़ोस के विवाह समारोहों एवं शिशु के जन्मोत्सव पर आरम्भ हुआ। वो जन्माष्टमी, शिवरात्रि और नई मन्दिरों के भूमिपूजन, अन्नप्रासन, धार्मिक उत्सवों आदि समारोहों में, भजन गाती थीं। जल्दी ही सिद्धेश्वरी जी का नाम पारिवारिक समारोहों में स्थापित हो गया और उनके प्रशंसकों की संख्या बढ़ती रही। सिद्धेश्वरी देवी जी के प्रत्येक निमंत्रण को स्वीकारना या अस्वीकारना इसका फैसला वो (सियाजी महाराज) स्वयं करते थे। वो निरन्तर अपनी सारंगी के साथ आपके एक तरफ हर कार्यक्रम में उपस्थित रहते थे और मामा अमरनाथ जी उसके दूसरी तरफ अपने तबले के साथ संगत के लिये बैठते थे।

आपने अपने गाने की सम्पूर्ण जीवन-चर्या को सतर्कता से तालिका बद्ध करके रखा था। राजेश्वरी जी का घर छोड़ने के पश्चात् उनका पहला सार्वजनिक कार्यक्रम प्रस्तुत करने से पूर्व वो इस प्रकार बोलीं, ''मेरे पास कार्यक्रम में पहनकर जाने के लिए ढंग के कपड़े नहीं थे। हमारे परिवार की वरिष्ठ एवं प्रसिद्ध गायिका विधाधरी थीं जिन्होने अपने कपड़े मुझे पहनकर जाने के लिये दिये। उन्होने मुझे आशीर्वाद दिया और बोलीं, ''शायद ये तुम्हारे लिये अच्छा संयोग लेकर आये।''[1]

और उनके जीते जी उन्होने ये देखा कि उनकी कामना पूरी हुई। ये ईश्वरी कृपा ही थी। सिद्धेश्वरी देवी जी एक बार अपने सांगीतिक जीवन की चर्चा बयान कर रहीं थीं, ''तुम जानना चाहती होगी कि मैने केसे आरम्भ किया? मैने सात साल की उम्र से गाना सीखना प्रारम्भ किया और आज बीस वर्ष की उम्र तक लगातार सीखती चली आ रही हूँ। मेरी पहली प्रस्तुति 1925 में रून्का में हुई, जो मध्यप्रदेश के सरगोजा राज्य में था, जब मैं 17 वर्ष की थी। वो एक विवाह समारोह था। वहाँ श्रोतागण ज्यादा नहीं थे आस-पास के गाँव वाले, राजा के परिवार वाले और अट्ठारह शासन करने वाले प्रमुख मौजूद थे। मैंने ख्याल, ठुमरी, टप्पा, दादरा भजन आदि चीजें गाईं। उस समय मैने मन मोहन मुरारी, सुध शाम लो हमारी, अब होत हूँ उगहारी, यूँ द्रौपदी पुकारी (एक भक्ति गीत

महाभारत पर आधारित, इसमें द्रौपदी भगवान कृष्ण को कौरवों से अपनी लाज बचाने के लिये पुकारती है) और शिव के मन शरण हो तब प्राण तन से निकले (भगवान शिव, उस क्षण मेरी मौत हो,

जिस समय आपकी शरण में रहूँ)। ये भजन मैने पूरे दिल से गाया था और क्या बात है। महान केसरबाई वहाँ मुझे सुन रही थीं।'' उन्हें लोकप्रियता इतनी जल्दी प्राप्त हुई इसके बारे में वो कहना चाहती थीं कि, ''ये सब कुछ भगवान की कृपा से ही हुआ। लोगों के बीच भारतीय शास्त्रीय संगीत के प्रति बढ़ती रूचि का विकसित रूप दिखने लगा था, भजन, ख्याल, ठुमरी और ये सारी चीजे मुझमें स्वाभाविक रूप से आ गयी थी।''[2]

सिद्धेश्वरी जी ने पूरी शिष्टाचार के साथ अपना प्रदर्शन आरम्भ किया और दिन प्रतिदिन उनकी कार्यक्रमों की संख्या बढ़ती गई धीरे-धीरे वो अपने आस-पास की सीमा लांघ गई और उन्हें बनारस के अनेक परिवारों तथा संगीत संरक्षकों द्वारा निमंत्रण मिलने लगा, धीरे-धीरे वो उन सभी के लिये कार्यक्रम करने लगीं।

सिद्धेश्वरी जी क्रमशः किन्तु निःसन्देह प्रसिद्धि या शोहरत की राह में आगे बढ़ रही थीं। उनके उज्जवल भविष्य का संकेत पहले से दिख रहा था उस समय जब 20-22 वर्ष की थीं, सिद्धेश्वरी जी को बनारस शहर में ख्याति मिलने लगी थीं। सियाजी महाराज के शिक्षा के फलस्वरूप गाने में संतुलन और सुन्दरता सिद्धेश्वरी जी की गायकी में सुनाई पड़ती थी। उन्नीस साल के उम्र तक पहुँचने से पूर्व ही सिद्धेश्वरी को पंच गछिया प्रदेश में गाने का निमन्त्रण मिला। यह प्रदेश संगीत बैठेकी के लिये जाना जाता था, जहाँ पूरे भारतवर्ष से बहुत सारे गायक एवं संगीतकार आते थे। जब सिद्धेश्वरी जी वहाँ गाने पहुँची, वो वहाँ उपस्थित कलाकारों में सबसे छोटी उम्र की कलाकार थीं। वहाँ ज्यादा तर श्रेष्ठ लोग थे, जैसे चंदाबाई और सोनी बाबू, वो गया के प्रसिद्ध हारमोनियम वादक थे, वो भी वहाँ पर थे। यहीं पर पहली बार उस्ताद फैयाज खाँ साहब ने सिद्धेश्वरी जी को गाते सुना। उन्हें यह प्रदर्शन बहुत सालों तक याद था।

सिद्धेश्वरी जी धीरे-धीरे इलाहाबाद के पास मांडा प्रदेश की नियमित कलाकार होने लगीं, जहाँ उन्होंने कई स्मरणीय प्रदर्शन दिया। जब वह पहली बार गाने के लिये गईं तो उन्हे जनसमूह के मध्य जो दिवाने-ए-आम के नाम से जाना जाता था, गाने को कहा गया। जैसा कि यह बैठकी नाम से भी प्रस्तावित था। वहाँ पर एक साथ करीब 2000 श्रोतागण सुनने बैठ सकते थे।

योजना के अनुसार सिद्धेश्वरी जी ने अपना प्रदर्शन माण्डा के दिवान-ए-खास में विशाल श्रोतागण के समक्ष प्रस्तुति दी। वहाँ माइक्रोफोन नहीं था। किन्तु उनकी शक्तिशाली और भावपूर्ण आवाज जनसाधारण तक पहुँच रही थी। लोग उनके आवाज की गुणों को सुनकर आश्चर्य थे, आपकी आवाज बिल्कुल अलग थी। वहाँ सभी चकित थे कि इस युवा उम्र में आपने किस सीमा तक गाने की प्रशिक्षण लिया था। दरबार में सभी मंत्रमुग्ध होकर सिद्धेश्वरी जी का गाना सुन रहे थे। माण्डा के राजा उनकी गायकी से अत्यन्त प्रभावित हुए। सिद्धेश्वरी जी के गाने से मोहित होकर वो उन्हें सुनने के लिए उत्साहित हो उठे। जल्द ही सिद्धेश्वरी जी को मान-सम्मान के साथ दिवान-ए-खास में प्रदर्शन के लिये आमन्त्रित किया गया। उनकी आवाज से वो तेज धार बह रही थी, ऐसा लग रहा था कि पानी के झरने से स्वरों का मेल, मन के भाव, लय सब कुछ भिगो दे रहा हो, सिद्धेश्वरी जी के कार्यक्रम समाप्त होने से पहले ही उन्होने एक झोला भरकर चाँदी के सिक्कों की बौछार उनके लिए कर दी। यहीं से सिद्धेश्वरी जी के सांगीतिक जीवन की शुरूआत हुई, उन्होनें भारत के अनेक राज्यों में प्रदर्शन किया।

इसके अतिरिक्त आप दरभंगा के राज्य दरबार की नियमित कलाकार भी थीं, दरभंगा में होने वाले प्रत्येक उत्सवों, बुढ़वा मंगल तथा अन्य त्योहारों में आपके गायन की प्रस्तुति प्रत्येक वर्ष होती थी। वहाँ के राजा और उनके संरक्षकों की महफिलें वहाँ आपके गायकी सुनने के लिए सजती थी।

इस तरह आपका नाम देश के विभिन्न भागों में फैलने लगा, कश्मीर से लेकर मुम्बई, दिल्ली, कलकत्ता जैसे शहरों में आपका सामाजिक पद एक असाधारण विलक्षण प्रतिभा के रूप में स्थापित होने लगा।

आपके सुर ताल की लहर मुम्बई चलचित्रों तक पहुँच गयी।

सिद्धेश्वरी जी को तीस वर्ष की कम उम्र में ही मुम्बई के एक चलचित्र निर्माता द्वारा प्रस्ताव मिला उन्होंने सिद्धेश्वरी जी के मामूली घर में बैठकर ही अपनी फिल्मों में से एक फिल्म में काम करने का प्रस्ताव दिया। उन दिनों हिन्दी चलचित्रों में भारतीय शास्त्रीय संगीत और लोक संगीत का प्रयोग दोनों ही लोकप्रिय था।

सिद्धेश्वरी जी ने हिन्दी फिल्मों में अपनी शुरूआत उस समय की जब आर.सी. बोराल और सरस्वती देवी जैसे संगीतकार अपने चरम सीमा पर थे। उमा शशि, के.एल. सहगल, अमीर बाई और जोहरा बाई आदि जाने माने नाम थे, सिद्धेश्वरी जी ने ऊषा सिनेटोन फिल्म कम्पनी बैनर तले कुछ फिल्म में काम किया तथा अपनी आवाज में कुछ गाने भी रिकार्ड किये गये थे।

फिल्म जगत और मुम्बई को ज्यादा समय न लेकर आप वापस बनारस लौट आयीं और अपनी लोकप्रिय गायकी से देश भर में कार्यक्रम की प्रस्तुति दी। आपने कश्मीर के महाराज के सम्मुख एक अविस्मर्णीय संगीत की प्रस्तुति दी। जिसमें महाराज ने उत्कृष्ट गायकी के लिए आपको एक कार भेंट में दी और तत्पश्चात् आपने बनारस में कबीर चौरा में अपना निजी मकान खरीद लिया। कबीर चौरा नृर्तकों और संगीतज्ञों का प्रसिद्ध मोहल्ला था, सिद्धेश्वरी जी के अनुसार बनारस में इससे अच्छा स्थान कलाकारों के लिए कोई दूसरा नहीं था, ऐसा वो अक्सर कहती थीं। कबीर चौरा की हवा कभी शान्त नहीं होती, सुर और ताल की लहर हमेशा गूँजती रहती। यहीं पर पहली बार मैने प्रतिभाशाली कलाकार बड़े रामदास जी की और अन्य कलाकारों की आवाज़ सुनी।[3]

जल्द ही 1930 में उन्हे लाहौर में कार्यक्रम हेतु आमंत्रित किया गया जहाँ के.एल. सहगल मुख्य कलाकार थे। वहाँ उपस्थिति सभी श्रोता सहगल जी को ही सुनना चाहते थे अन्य को नहीं, किन्तु सहगल जी ने श्रोतागण से सिद्धेश्वरी जी का गायन सुनने का निवेदन किया और सिद्धेश्वरी जी की गायकी की भरपूर प्रशंसा कर आपका कार्यक्रम आरम्भ किया। सिद्धेश्वरी जी ने ख्याल, ठुमरी, दादरा, होरी, भजन आदि की प्रस्तुति देकर दर्शकों को आनन्द विभोर कर सभी दर्शकों को मंत्र मुग्ध कर दिया।

सिद्धेश्वरी जी को कलकत्ता में कार्यक्रम प्रस्तुत करने में अत्यन्त आनन्द मिलता था क्योंकि आपके अनुसार कलकत्ता गायकों का घर था, जो उनके प्रारम्भिक वर्षो में उनके प्रेरणा का स्रोत था। कलकत्ता में आपके द्वारा की गयी प्रस्तुति का अनुभव स्मरण करते हुए आप बोलीं" जैसे ही मैने ठुमरी की पहली पंक्ति आरम्भ किया- पिया परदेस मोरा मन हारा "दर्शकों से वाह-वाह का सामान्य अभिनन्द ने मुझे रोमांचित कर दिया और पंडित ओंकारनाथ जी ने मेरे लिए एक पदक की घोषणा कर दी।"[4]

शनैः - शनैः आपको प्रमुख राष्ट्रीय सम्मेलनों में आमंत्रित किया जाने लगा, सात दिवसीय चलने वाली मुम्बई संगीत सम्मेलन के आयोजकों ने आपको आमंत्रित किया वहाँ आपके द्वारा हृदय को छू लेने वाली प्रस्तुति सुनकर उस्ताद फैयाज खान ने भावुक होकर उस कार्यक्रम में गाने से इन्कार कर दिया। तत्पश्चात् कार्यक्रम के समापन पर उस्ताद फैयाज खान ने सिद्धेश्वरी जी के लिए कहा "गौहर जान और मलिकाजान का ये सेहरा तेरे ही सिर है, तू ठुमरी की रानी है।"[5]

आपको ऐसी पाठ पीठिका पर बैठा दिया जहाँ से जीवन के अन्त तक आप नहीं उतरी। आपने भारतीय संगीत प्रेमी एवं पारखी श्रोताओं की अपार प्रशंसा प्राप्त की, साधारण संगीत रसिकों एवं अनेक संगीत विद्वानों जैसे पं. कंठे महाराज, गंगूबाई हंगल, हीराबाई बड़ोदकर, उ. अहमद जान थिरकवा, बड़े गुलाम अली खान, उ. विलायत खान, लता मंगेश्कर, अंजनीबाई केरकर, पटवर्धन जी और भी कई वरिष्ठ कलाकार आपकी गायकी के घोर प्रशंसक रहे। आपने गायकों को भी अपनी गायकी सिखायी थी। एम.एस. सुब्बुलक्ष्मी जी को दो महीनों तक मद्रास में निवास कर उनको बनारस की ठुमरी गायकी का प्रशिक्षण दिया और एम.एस. सुब्बुलक्ष्मी जी से भी दक्षिण भारतीय संगीत की बारीकियों को सीखा,

आप और सुब्बुलक्ष्मी जी एक घनिष्ठ मित्र थी आप उन्हें प्यार से शुभम के नाम से पुकारतीं, आप अक्सर बोलती ''शुभम में वो विशेष गुणवत्ता है जो उसकी शान्ति का अनुभव करने के लिए दूसरों को सक्षम बनाता है, वो उसमें है।''[6]

आपके और सुब्बुलक्ष्मी जी के बीच गहरा सम्बन्ध रहा जिससे, आप दोनों की अभिव्यक्ति के तरीके अलग-अलग होने के बावजूद आप दोनों के संगीत का भण्डार अनुभव के कारण समृद्ध था।

सिद्धेश्वरी जी ने बनारस में रहकर संगीत की भरपूर सेवी की, बनारस घराने की गायकी को आपने देश नहीं वरन् विदेशों जैसे नेपाल, इंग्लैण्ड, अफगानिस्तान आदि देशों में प्रस्तुति देकर इस घराने को समृद्ध किया। किन्तु गुरू सिया जी महाराज तथा कई सगे सम्बन्धियों के निधन के पश्चात् आप अकेली हो गयीं और आपने काशी को सन् 1965 में छोड़ दिया और दिल्ली में वस गयीं लेकिन कवीर चौरा में स्थित मकान को आपने नहीं छोड़ा। आज भी वह मकान कबीर चौरा में है।

देश के प्रमुखतम उद्योगपति परिवार, दिल्ली क्लाथ मिल्टन समूह द्वारा स्थापित संस्था ''भारतीय कला केन्द्र (दिल्ली) में बनारस शैली की टप्पा, ठुमरी, आदि की मौलिक शिक्षा प्रदान करने हेतु आपको दिल्ली आमंत्रित किया गया, आपने वहाँ शिक्षिका पद पर रहकर अनेक प्रतिभावान शिष्य-शिष्याओं को सही मार्ग दर्शन दिया, दिल्ली में रहकर आप एक राष्ट्रीय कलाकार वन गई, ।सस प्दकपं ल्कपव में अपना संगीत रिकार्ड करना आपके लिए आसान हो गया, दिन प्रतिदिन राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय कार्यक्रमों, सम्मेलनों में आपकी प्रसिद्धि बढ़ती गयी।

विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं, लेखों तथा अखवारों द्वारा आपकी गायकी की महक चारो ओर बिखरने लगी, सिद्धेश्वरी जी ने संगीत आलोचकों की प्रशंसा ज्यादा अर्जित करने लगीं, आपके द्वारा प्रस्तुत कजरी, होरी और दादरा से आलोचकों को एक बनारस का रंग और मुहावरों का अहसास होता था जिसकी प्रशंसा वो लेख लिखकर करते थे। सिद्धेश्वरी जी ने सदैव अविस्मरर्णीय प्रदर्शन दिया, वाद के वर्षो में आपकी आवाज थोड़ी मोटी होने के वावजूद अपनी अनुकरणीय प्रस्तुति के साथ आप अपने श्रोताओं को सम्मोहित करने में कामयाव रहीं।

संदर्भ

[1] Of her first Public performance after leaving Rejeshwari Devi's house, She spoke this, "I did not have a proper dress to wear for the Performance. It was Vidyadhari the Senior and famous signer from my family who gave me her dress to wear. She bleassed me and said, "May this bring good luck to you, " She lived to see her wish come true. That too is the mercy of God." माँ सिद्धेवरी देवी (सविता देवी) प. ठ सं0 44

2. Siddheshwari Once described the beginning of her musical career thus, "you want to know how I began? I started learning music at the age of seven and continued untill I was twenty. My first performance was in 1925 at Ranka in Sargaja state in Madhya pradesh when I was seventeen. It was on the occasion of a marriage. The audience was not large; Villagers from nearby uge Raya's family, and eighteen rulling chiefs. I sang Khayal, Thumari, Tappa, Dadra, Bhajan. At that time I often seng Man Mohane Murari/ Sudha Shyam lo hamari/ Ab Hot Hoom Ughari/ Yoon Draupadi Pukari (a devotional song based on the Mahabharata; in this Draupadi Calls out to Lord Krishna to save her honour from the Kauravas) and Shiv Shiv Ke man Sharan to tab Pran tan sa nikle (Lord Shiva, I Surendra to you at the moment of my death). I song these with all my heart, And, Oh yes, the great Kesarbai was there listenning to me' Abut the quick popularity she gained, She would say, "by the grace of

god. people seemed to have develolped a greater liking for Indian Classical music for bhajans, Khayals, thumaris. and these came naturally to me."

माँ सिद्धेवरी देवी (सविता देवी) प. ठ सं0 45

3. There is no better place for artistes in Banares,' she used to say, 'Never is the air of Kabir Chaura quiet. It always echoes with sur and taal. It was here that I first heard the voice of the talented artiste Bade Ram Das Ji and others.

माँ सिद्धेवरी देवी (सविता देवी) प. ठ सं0 69

4. She went on, 'was the general acclamation of wah, wah from the audience as soon as I started the first line of the thumari- Piya pardes mora man hara (My beloved has left after stealing my heart). Pandit Omkarnath was good enough to announce a medal for me.

माँ सिद्धेवरी देवी (सविता देवी) प. ठ सं0 74

5. He ended the session with the announcement: Baad Gauharjaan aour Malikajaan ke ye sehara tere hee sir hai— tu thumri ki rani hai (after Gauharjaan and Malikajaan, this crown is yours — you are the queen of thumri).

माँ–सिद्धेवरी देवी (सविता देवी) पृष्ठ सं0 75

6. She has the same purity of character that her music has. The identification, betwen her and her music is complete, she often said. 'Shubham has that special quality that enables others to experience the peace that she carries within her.

माँ सिद्धेवरी देवी (सविता देवी) पृष्ठ सं0 85

संवाद

पं0 भजन सोपरी

पं0 बिरजू महाराज

अलका यागनिक

पेन्टिंग और सरोद

सुश्री मीनू रानी दुबे

कलाविद्, इलाहाबाद

देश में ही नहीं, विदेशों में भी अपना नृत्य को देखने को सूखद अवसर जिसे मिला हो वह निश्चत ही सौभाग्यशाली होगा। कत्थक नृत्य के बेताज बादशाह बिरजू महाराज जी के नृत्य में पारंपरिकता; मौलिकता श्रृंगारिकत के साथ-साथ भावाभिव्यक्ति का चमत्कारपूर्ण प्रदर्शन मन को मरम आनंद देता है। मंच पर उनका आना तालियों की गड़गड़ाहट से उनका भव्य स्वागत करके दर्शन अपने मन के उद्‌गार व्यक्त करते है। प्रस्तुत है उनसे की गई बातचीत के प्रमुख अंश–

(मैं आपके पारिवारिक परिवेश एवं गुरु के बारे में जानना चाहती हूँ।

मेरा जन्म लखनऊ के विख्यात कालका बिन्दादीन कथक घराने में हुआ। मेरे पूर्वज प्रयाग के हड़िया तहसील के रहने वाले थे जो मूलतः कथावाचक थे। इस घराने की नृत्य हमारे पूर्वज 5 पुश्तों से लखनऊ में रह रहे हैं। लखनऊ में अवध कें अंतिम नवाब वाजिद अली शाह के पूर्व आसफउद्दौला के जमाने से हमारे पूर्वजों ने कत्थक पद्धति को पुष्पित एवं पल्लवित किया। मेरे बाबा कालका बिन्दादीन महाराज जी ने कत्थक को बहुत कुछ दिया। उन्होंने ठुमरी, दादरा की लगभग 5000 रचनाएँ की। मैंने अपने पिता श्री अच्छन महाराज जी से तथा अपने दोनों चाचा प लच्छू महाराज जी से तथा अपने दोनों चाचा पं. लच्छू महाराज जी एव पं. शंभू महाराज जी से कत्थक की बारीकियों को ग्रहण किया। मेरे पिता एवं चाचा जी नृत्य के बेजोड़ कलाकार रहे हैं। मेरे पिता जी लय के बादशाह माने जाते रहे हैं और दोनों चाचा में अभिनय पक्ष सशक्त रहा। मैंने अपने पिता-चाचा एव माता जी से नृत्य सीखा। यदि आप कत्थक नृत्य के सिरमौर नर्तक न नबे होते तो क्या बनते? मेरे घर चौबीसों घंटे नृत्य का ही माहौल बना रहा। माँ श्रीमती महादेवी जी ने हमारे पूरे बचपन को सीचा है ऐसी अच्छी बातें से और ऐसे अच्दे वातावरण से सींचा कि क्या बताऊ। वे हमारे बुजुर्गो के बारे में हमें बताती रही। तमाम शार्गिदों का आना जाना हमारे घर में था इसलिए हमारा संतुलन केवल संगीत औरत बबलै की गूंज ताथेई थेई थेई त तू ता। मैं कम उम्र से ही लय के लिए तबला बजाता था। हमारे बाबू जी इस बात से बहुत खुश होते किवो .....तालिम मुझे देते में आसानी से ग्रहण करके फौरन तनके सम्मुख प्रस्तुत कर देता। बल्कि यू कहिए कि मुश्किल से मुश्किल जो चीज लग की होती वे सूझे समझ में आ जाती। .....बाबू जी और चाचा खुश होकर कहते कैसे इस लड़के के अचानक सब चीजें याद हो जाती बहुत अल्पायु में ही बड़ी परने सीख ली मेरे बाबू जी कलकत्ता देहरादून कानपुर आदि स्थानों पर मुझे ले जाते और अपने नृत्य के पहले मुझसे मंच पर नृत्य कराते। मैंने अपने पिता जी से 9=1/2 वर्ष की उम्र तक ही सीखा। जब मैं साढ़े नौ वर्ष का था तभी मेरे पिता जी का देहान्त हो गया। मेरे पिता जी नवाब रामपुर के यहाँ मुलाजिम थे मैं भी उनके साथ वहा रहा। मैंने वहाँ नृत्य भी किया।

यदि में नर्तक न बना होता तो शायद मोटर मैकेनिक बनता बहुत बचपन से ही मुझे मोटर मैकेनिक बनने का शौक था—आज भी बतौर हॉबी कई मशीनी चीजों को खोलकर ठीक करता रहता हूँ। मेरे पास स्क्रू एवं तार वगैरा रखा रहता है।

अपकी दृष्टि में कत्थक नृत्य विशेषतः लखनऊ घराने की कौन सी खास विशेषता है जिससे आप इस ओर आकृष्ट हुए?

एक वक्त था जब घराने के नाम से सिवाय लखनऊ धराने के अलावा कोई नाम जोर से नहीं लिया जाता था। लखनऊ घराने का जिक्र किए बिना नृत्य के संबंध में कोई भी बात पूरी नहीं मानी जाती थी। यहाँतक की जयपुर घराने के गुरु सुन्दर प्रसाद जीने तथा कुछ अन्य लोगों ने लखनऊ आकर मेरे बाबा से इस नृत्य की तालीम ली। प्रवृति शहर भाषा, परिवेश एवं वातावरण रहन-सहन खानपन ये तमाम चीजें आदमी पर अपना प्रभाव डालती हैं। राजस्थान का इलाका वीर रस से ओतप्रोत है। इसलिए वहाँ लास्य का अभाव है। लखनऊ घराने में लास्य का अभाव है। लखनऊ घराने में लास्य नजाकत नफासत एव सुकून है वो इसलिए कि यहाँ के साहित्य और संस्कृति में नजाकत, नफासत शान्ति मिठास है।

हमारे बाबूजी और चाचा जी के नृत्य को 'परियों का नाच' कहा जाता है हमारी काल्पनिक उड़ान स्वर्गिक है। हमारे लोहबान का धुआ स्वर्ग तक तक जाता है।

क्या आप ये स्वीकार करते हैं कि कत्थक नृत्य भरतनाट्यम की अपेक्षा कम शास्त्र सम्मत नृत्य है?

नहीं नहीं बिल्कूल नहीं कत्थक नृत्य जाति भेद रखता ही नहीं। कत्थक उस गंगा के समान है जिसमें जिसने अवगाहन किया उसे सुकून मिला। कत्थक के गुरु में ग्राह्य और इकट्ठा करने की शक्ति बहुत होती है। इसमें शास्त्रीयता को कम आंकना इसके साथ न्यायपूर्ण नहीं होगा। परम्परागत शैलियों की सीमाओं से अलग हर नर्तन की कुछ विशिष्टता होती है। क्या आपने अपने नृत्य में परम्परा हो हटकर कुछ मौलिक प्रयोग किए?

मैंने अपने पिताजी और चाचा जी के नृत्य की बारिकियों यानी भाव प्रवण नृत्यों एवं उंगलियों के अदभुत समन्वय उसको प्रस्तुत करने की खूबसुरत कला को ग्रहण किय मैं जब अपने पिता जी और चाचा जी का नृत्य देखता और देखते समय मेर मुँह से जिस भाव या लय पर वाह निकलता उनको एकरूप में पिरोकर एक स्टाइल बनाई।

आज पुरने समय की तरह गुरु परम्परा तो वची नहीं है। मैंने एक टीचिंग मैथड एक फार्मूला नृत्य में डिग्री और डिप्लौमा लेने वालों के लिए बनाया। व्याकरण एवं शास्त्रीयता पर खास बल दिया। वच्चे को खेल-खेल में लय समझाकर नृत्य की शिक्षा की तरनीक विकसित की-इसके अतिरक्त विषयों पर न1तय नाटिकाए तैयार की जिसमें 'कुमार संभव' एवं पार्वती परिणय जैसी 'नाटिकाए' लोकप्रिय एव काफी चर्चित हुई।

महान कलाविद एवं नृत्य सम्राट महाराज कालका विन्दादीन घराने की आप, आपके देश- विदेश में फैले हजारों शिष्यों एवं हमारी सरकार द्वारा क्या कुछ किय जा रहा है कृपया प्रकाश डाले?

कला औ संस्कृति के विकास प्रचार-प्रचार के लिए भारत सरकार की ओर से विभिन्न देशों में किया गया भारत महोत्सव कार्यक्रम सराहनीय रहा। मैं हर वेश में गया आई.सी.सी.आर. भी कला के संवर्द्धन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। इसके द्वारा विभिन्न देशों के साथ सांस्कृतिक आदान-प्रदान हेतु तथा मेत्री को बढ़ावा देने के लिए मंच प्रदर्शन एवं सिखाने के लिए भारत से कलाकार भेजे जाते हैं। विदेशी लोग हमारे नृत्य के प्रचार प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका शिष्य नृत्य के प्रचार प्रसार में महत्त्पूर्ण भूमिका निभा रह है।

आप इससे कहाँ तक सहमत है कि कत्थक एकल नृत्य में अब बाह्य एवं ताल पर उतना अधिक बल न देकर नृत्य कथाओं एवं नृत्य नाटिकाओं पर जोर दिया जाता है जिसके फलस्वरूप नृत्य का शास्त्रीय पक्ष उतना उजागर नहीं हो पाता जितना उसे होना चाहिए अथवा यूँ कहिए कि जितनी एक

विशुद्ध कत्थक नृत्य प्रेमी अपेक्षा करता है। इस संबंध में में आपके विचार जानना चाहती हूं?

में तो यही कहूँगा एवं भाव पक्ष कमजोर हो गया था। उसमें तीव्र पद संचालन चक्करदार तथा चमत्कार पूर्ण प्रदर्शन ही ज्यादा हो गया था। जब दक्षिण भारतीय लोग उत्तर भारत में आकर गतिशीलता की जगह अभिनय वर्णनस शब्दस या उड़ीसा के लोगों अपने जयदेव की रचना पर नृत्य करते रहते थे। तब मुझे मेरे घर के साहित्य के बारे में बाबा के बारे में सूर के पर के बारे में याद आया। कत्थक वाले न जाने किस लालच में गति एवं चमत्कार की ओर मागने लगे इसी को संतुलित करने के लिए नृत्य नाटिकाओं की संरचना की जिससमें लय अभिनय तथा ताल पर महाराज जी आज की युवा पीढ़ी कुछ अपवादों को छोड़कर शास्त्रीय नृत्यों की अपेक्षा कैबरे व अन्य हल्के नाचों की ओर आकृष्ट हुई हैं इसे आप बदल हुई मानसिकता कहेंगे सभ्यता के विकास का स्वरूप कहेंगे शास्त्रीय नृत्य के सुयोग्य गुरुओं की संख्या में कभी या जो थोड़े उपलब्ध हैं उनकी शिष्य एवं शिष्याओं की नृत्य सीखने में उदासीनता या सहकार द्वारा सीखने में उदासीनता या सरकार द्वारा इस कला की पुरानी विधा को उचित संरक्षण न दिए जाने का प्रतिफल कहेंगे?

हमारे राग हमारी शास्त्रीयता अटल है। विदेशी नृत्य में केवल तवियत द बदलाव की प्रवृत्ति है 10 वर्ष के अन्दर न जाने कितनी नृत्य शैलियाँ आई और चली गई। विदेशी नृत्य के प्रति यदि युवा पीढ़ी आकर्षित होती है तो भी हमें कोई भय नहीं है। अगर अप जिम्मेदारी की बात पूछ रही हैं तो यही कहूँगा कि भारतीय परिवेश में विदेशी संस्कृति का प्रभाव रहन सहन खान-पान बोली सभी में घातक प्रभाव डालता है और यदि इसे समाज स्वीकार रहा है तो सारी जिम्मेदारी मैं समाज को दूंगा।

प्रायः ये कहा जाता है कि जब कोई पुरुष नृत्य कला की साधना करता है, तो उसकी भावभंगिमा प्रवृत्तियाँ स्त्रेण सी हो जाती है। ऐसा कहना कहाँ तक उचित है?

हमारे पिता एवं चाचा जी ने कहाकि चज मंच पर आप नृत्य करें तो नृत्यांगना के भाव से भी ज्यादा सशक्त भाव एवं अभिनय प्रदर्शित करें पर जब आप कहीं जा रहे हों ये पता न चले कि आप नर्तक हैं

कत्थक नृत्य में लय को बनाये रखने तथ उसमें प्रभावोत्पादकता लाने के लिए तबला वाद्य का प्रयोग होता है पर संगीत सम्मेलनों में प्रायः यह देखा गया है कि नृत्य के कार्यक्रम में तबलिया दर्शकों को नर्तक कलाकार की अपेक्षा अपना क्लैपिंग लेने के लिए अधीर एवं चंचल हो उठता है, इस प्रकार की मानसिकता से क्या नृत्य का शास्त्रीय स्वरूप विकृत नहीं होता? इस विषय पर कृपया अपनी राय बताए?

कत्थक में तबले वाले को अपनी कला के प्रदर्शन के लिए अवसर तो दिया ही जाता है पर इन दिनों जो तबलिया भिडंत की प्रवृति रखते है उससे निश्चित ही क्षति पहुँचती है भिड़ंत इस स्तर तक हो जो खूबसूरत लगे तभी तक अच्छा है।

क्या एकल नृत्य की अपेक्षा युगल नृत्य में अभिव्यक्ति की संभावना अधिक रहती है अथवा इसमें कलाकार को उतना श्रम नहीं करना पड़ता जितना एकल नृत्य में?

एकल नृत्य तो प्रमुख है हीजो युगल नृत्य या सामूहिक नृत्य उसमें एक बात का फायदा ये है कि मंच पर एक उसमें एक बात का फायदा ये है कि मंच पर एक विराट स्वरूप दिखता है जैसे 1 हाथ उठाया और 10 हाथ उठे तो निश्चित ही 10 हाथ का प्रभाव ज्यादा दूर तक पड़ता है ये दोनों ही पेड़ की दो टहनी है।

आज के परिप्रेक्ष्य में आपको कत्थक नृत्य का भविष्य कैसा लग रहा है। कत्थक का भविष्य कैसा लग रहा है। कत्थक का मौलिक स्वरूप बरकरार रहे इसके लिए आप क्या सुझाव देंगे?

जो लोग मुझसे सीखते है और आधा अधुरा सीखकर अपने प्रयोग करने लगते है वे हानिकारक अपनी प्रयाग करने लगते है वे हानिकारक है। दोषपूर्ण नृत्य प्रस्तुत करने वाले नर्तक य नृत्यागनाओं

की संख्या में जो वृद्धि हुई है वो भी दुर्भाग्यपूर्ण है। मीडिया की बहुत बड़ी जिम्मेदारी होती है वो सही चीज की सही सराहना करे तो बात बनती है। नृत्य तो शुद्ध हृदय कविता है ये सुकून देने वाली है इसलिए तो ये मानता हूँ कि कत्थक नृत्य का भविष्य उज्ज्वल है। क्या कलाकारों को जो पुरस्कार एवं सम्मान मिलता है उसे देने में किसी तरह की राजनीति होती है?

राजनीति तो अवश्य होती है। में कैसे इंकार कर दूँ।

आपने देश-विदेश में असंख्या कार्यक्रम प्रस्तुत किए हैं भारतीय एवं विदेशी दर्शकों में आप क्या अन्तर पाते हैं?

अपना देश घर है। और विदेश ससुराल। घर और ससुराल में जो अन्दर होता है वही अन्तर में महसूस करता हूँ घर में अनौपचारिकता होता है। और ससुराल में औपचारिकता। विदेशों में जाकर अपनी भाषा, अपनी संस्कृति अपने देवी देवता के बारे में तथा ऐतिहासिक एवं पौराणिक कथाओं को बताना पड़ता है। उनका नृत्य क्लब एवं होटलों में बंटा हुआ है उनकी जिन्दगी में मनोरंजन होटल क्लब और हमारी जिन्दगी में घर परिवार।

क्या आपके बच्चे भी नृत्य से जुड़े हैं?

जयकिशन और दीपक मेरे दो बेटे हैं दोनों नृत्यों से तो जुड़े ही हैं जयकिशन संगीत संरचना करते है और दीपक अच्छा गाते है। हमारे घर में लड़कियों के नृत्य की तालीम नहीं दी जाती थी। पर मैंने अपनी बेटियों को नृत्य सिखाया अब उनकी पति पर ये निर्भर करता है कि वे कितना बढ़ावा देते हैं।

महाराज जी आपकी अन्य रूचियाँ क्या-क्या हैं?

मेरी नई हॉबी है पेन्टिंग करना, आजकल में वायलिन एवं सरोद बजाता हूँ, गाता हूँ, कविताएँ लिखता हूँ, ठुमरी, दादरा लिखना। मेरी एक रचना है आनम्य (लोहे का टुकड़ा)।

साम्प्रदायिक विभीषिका के इस दौर में राष्ट्रीय एकता के लिए नृत्य एवं संगीत कला को क्या भूमिका हो सकती है?

सच पूछिए तो हमारे नृत्य संगीत में ही सही एकता है। शुक्र यही है कि तीन ताल को किसी मजहब वाले ने नहीं झपटा। लय और स्वर का कोई मजहब नहीं सब एक ही दिल से जपते हैं। हम सब साम्प्रदायिक सद्भाव के लिए समर्पित है। हम सब साम्प्रदायिक सद्भाव के लिए समर्पित कलाकार हैं। सारा झमेला मूर्ति मन्दिर और मस्जिद के लिए होता है पर सबको कोई और क्या कहेगा?

दुरदर्शन की भूमिका नृत्य के प्रचार प्रसार में सार्थक स्वीकारते है। मैंने सालों से दूरदर्शन में काई कार्यक्रम नहीं दिया। वहाँ के अधिकारी कलाकर का चयन या तो दबाव में करते है या किसी प्रलोभव में। सही कलाकार को जब अवसर नहीं मिलता तो निश्चित ही आक्रोश उभरता हैं वैसे दूरदर्शन की बहुत प्रभावी भूमिका है। इससे मैं इन्कार नहीं कर सकता।

वो युवा पीढ़ी को जो नृत्य के क्षेत्र में आना चाहता है आप क्या संदेश देगे?

अपने उस्ताद से जो भी सीखें उसकी पारंपरिकता, शास्त्रीय, सभी को एकाग्रता से ग्रहण करे। प्रलोभनों से बचे नृत्य के प्रति गुरूतर दायित्व का बोझ बना रहे अपनी मौलिकता को नष्ट न करें और प्रयोग करनेके पूर्व अपने उस्ताद से सलाह जरूर ले।

Pt. Bhajan Sopori

Asmita Mishra

Music critic, New Delhi

1. You are an acclaimed artist in classical music , even after that why you felt the need to go to America & learn western music style.

· Bhajan ji responds to it by saying when I decided to take music further as my carrier I also decided that I should not only have musical & teaching ability but also should have a degree, therefore with English literature I also did masters of arts in santoor & sitara. Second decision was to learn western music through a procedure so that at times both art forms can be combined together for my compositions. I memorize in 1973 when I went to St. Louis, there I experienced that native people didn't know anything about Indian musicians & Indian music culture. In Chicago when I played santoor they saw & experienced it. People learnt santoor from me & this became a source of earning to me as well. I taught several renowned western musicians one of them was Dr. Peter, department Head in Brooke university who not only learnt north Indian music but also involved the same in the syllabus.

When with the grace of Indian council for cultural relations I went to yugoslovakia, Czechoslovakia, Bulgaria, Egypt & many others . I was left aghast to see people having no knowledge about santoor, though they enjoyed Indian music but they didn't developed the ability of understanding it.

2. You are even associated with kasmiri film's music front. Share some of your experiences regarding the same.

·Till now there had been only three kashmiri films made & co incidentally I was associated with all of them in one or the other way. The first kashmiri film 'mehndi raat' was made when I was in school. I played santoor for this film & noticeably this was the first & last time when I played under someone else's direction . After this I have always played as per my will. Shayar- e – Kashmir mahzoor was the second kashmiri film under the direction of rishikesh mukherjee . The music was composed by Prem dhawan for which both prem & rishikesh ji came to shrinagar & approached my father pt. shambhunath sopori to give pasharva music for this film. My

father refused for this & said 'films are not mine but my son's interest. So you can talk to him. I'll even tell him to do this.' I was 18 years old that time & I agreed for this work. While recording in the studio I had few conflicts with his assistant. They wanted me to work according to them but I wanted to give music as per by my style. Eventually, this matter reached to rishikesh mukherjee. He listened to me seriously & paid attention to the matter. He permitted me to work as according to me. For the music of this film I used santoor, guitar, tabla, matka, tumaknari & other instruments as well.

Third kashmiri film was 'Bub' directed by 'Jyoti svarup' made in the year 2002. Bub is a kashmiri word which means father in English. I was the music director of this movie. This film went for national film festival N.F.D.C. & was awarded with Nargis Dutt award.

3. Though we were not born with a tag of religion over us but as we grow up we get indulged with it's essence. Music is par above the cultural restrictions. What's your take on this three sided phase culture , musicians & music.

The true aspect of any religion will never mark any restrictions. On the other side not only the musicians but also music has got its own religion. Religion affects music & preaches as well. Therefore I strictly believe for the development of their own self & music, musicians need to associate them with any religion. A relation of any human with religion is as important as that of parent's relation with their children. Visualizing any raag is directly proportional to visualization of the culture. Any raga is not just a set of group of attractive tunes. Presentation of all ragas portrays our thinking, our culture & perspective of our religion.

4. You are talking very different & new things. You just spoke about restricting music to limits whereas music is beyond all limits ..... is abundant.

There is a limit for everything, music is no exception. There is difference in music on the basis of culture which makes American music as American & Chinese music as Chinese. This is Punjab's music & that's Kashmiri . This is a Marathi tune & the other one is Bengali, we recognize & differentiate music on the basis of borders only. Then, how can you think to ignore such boundaries. If we think further there had been great literates in Hindu music whereas in Muslim culture there were not. But they have been great artists. That does not mean that all Muslim artists didn't know to write. But directly it means they didn't know Sanskrit. Whereas ancient music literatures were written in Sanskrit, thus where all Hindu musicians followed the literature & worked accordingly there all Muslim artists did hard work & practiced their art well. Hence on one side Muslim artists made their mark as a performer & on the contrary Hindu musicians contributed by their research & knowledge.

5. Tell something about santoor. How this instrument evolved?

Santoor originated about two millennia back & it's entirely an Indian instrument. Those who divulge that Santoor is a foreign instrument are lacking the knowledge for this instrument. Amongst the three types of veena – the

instrument, santoor is that instrument which is played by striking with a sharp object. It's pounded by two small wooden structures which is called 'kalam'. In ancient literatures it is called as 'kashtha'. In vedic aeons, santoor was called as the 'vaan' or 'the vaana' later on it earned popularity by the name of 'shattantri veena' & 'katyayani veena'. In the progression stage this arch structured instrument was labeled as 'yajah'. In vedic literature it was also called as 'jya ' & jya only developed later on into 'vaana' & 'surmandal'. Lately jya or yajah flourished as 'santoor'. This form of veena with some variations became the basis of formation of piano in Europe. Veena gained popularity in Persia as 'santeer' & in Babylon as 'saaltrey' . it's important to notice that 'santoori' from Greek , santoor from Iran, Europe's cimbalom & America's hammer Baltimore on the basis of shape, sound, quantity of strings, technique to sit & play are far different than Indian santoor.

6. Then why people claim with so much of confidence about their contribution for making it a classical instrument?

Well, I cannot talk about others but what experiments I did with santoor involved the successful derivation to Hindustani raagdaari sangeet. As till then only sufi music was played over this instrument. As I have also played sitar & classical guitar & that's why there's a slight influence of these instrument over my santoor. In our culture there's a different posture while playing santoor which is called as 'sampada'. According to this posture one part of instrument is laid on player's left leg & the rest of the instrument is placed over his\her lap. In my culture santoor has hundred strings divided in forty four bridges & there are sounds of more than atleast 3 octaves. I tell them that on the basis of raagdaari I am playing a challenging raga & I always authorize my audience to never be linient over it. You must memorize those great musicians who have played them & then tell that whether I am doing justification with the composition or not. As I am playing a raga not a filmy tune.

7. Did santoor really require so many changes?

Undoubtedly it required. An instrument with only 2 octaves is quite suitable for pasharva music . Few small messages can be expressed by these instrument but when it comes on the classical aspect there only beauty & glint is not sufficient. As there we have concentration & jauntiness ..... there's cheerfulness & also bleakness. Therefore, for the expression of same we require such santoor with which all expressions can be expressed. For which it is required to have a big instrument.

8. So many changes in the construction of this instrument would have surely led to changes in the playing technique ...

One can say there had been changes in the playing style of santoor along with taking help from it. To accommodate the basic elements of ragdari sangeet in santoor I took help of several techniques involved while playing. To present different elements we need to make use of our arms, wrist, fingers in different ways. By time use & relevance of kalam changes. We need to even look after in which type of taan we need to put

pressure on which particular part of our arms so there remains the expected affect of taan. If the same would not have been done neither it would have been possible to shape the musician's taan in santoor music nor to cast santoor as an instrument equal to sitar, sarod & veena.

9. Is this why you required to invent 'sopori baaj'.

You can say that. But sopori baaj is not merely a name. neither it's a differently styled gat. There are several aspect which needs to be taken care of like sitting posture, holding of kalam, tantrakari & incarnation, purity of all raga, several types of taan on the vocal front.... All are taken care of.

10. There had been a popular joke in relation to santoor – it's an adorable & a simple instrument.

Thereupon even if a mouse walks over strings, it seems as if someone is playing it. Whats your take on that.

Vijay bhai!! Even I have heard this joke. Once a journalist asked me about the same joke before my performance while interviewing me for a newspaper. That day before the commencement of my performance I announced ' you might have heard santoor played by racing mousebut today santoor will be played by me.' If a mouse runs through a piano even a piano will make some sound. when you have an instrument which can be easily played, the difficulty arises when you have to play it according to your style & not the instrument's style. It's a matter to notice that everyone breathes but not everyone masters the art of pranayam. With blessings of my elders & almighty great legends like Ustad vilayat khan, Pt. B.G jog, Ustad Abdul Haleem Jafar & Pt. Buddhdev Dasgupta have agreed publically that santoor has been positioned as a classical instrument because of me.

11. You have played with many Indian & non Indian musicians. Share some of our experiences.

Initially, when I played santoor with renowned mouthorgan & harmonica player Herbert lily, I played according to their pattern. I didn't play our ragas & taals as western music is unaware of our music pattern & style. Samely in 1977 I had a lecture demonstration in Institute of Arabic music, Egypt. There after my lecture I played with Qanun (instrument played ihn middle east, central asia & southeastern Europe) player head of music department. There too I asked him to select the raga & taal, the raga was very much similar to our raga Bhairavi whereas taal was alike taal Rupak. Further he played a composition of 7.5 beat cycle. Here too I synchronised accordingly & I kept on playing my music part as he could have not been able to follow with my music. Approximately whole audience had deep knowledge of music. In Kolkata while playing with jazz saxophone player I took instruments like drum, ghatam, tabla & morsing for accompanying my santoor. in fusion music deviation is taken as far as ragas are concerned. At times we play a that or a mukhda as well. such type of performances reach success when it doesn't depicts any imposition from one artist to another. If there's fusion of indian & western music there'd be nothing but pattern. Whether rhythm pattern or melody. Infact, fusion is a composition & it succeeds only when two artist of different music style come together to play similar composition. Another successful

jugalbandi was when I performed with Pt. B.G jog where Pt.Kumar Bose accompanied us on tabla. Along with several south Indian artists I have played with Shahid Parvez & Budhaditya Mukherjee (sitar), lt. Jagannath & Ali Ahmed Hussain (shehnai), Ravi Kichlu & Mashkoor Ali khan (vocal) . For a jugalbandi it is necessary for both the artists to understand & respect each others thoughts. Balance, coordination & presence of mind is a must for jugalbandi. Their should be no feeling for rivalry.

12. You have given music on several topics & in several languages like ghazals in naat language (Arabic), Arabic, Persian, urdu & kashmiri . it includes contemporary poems & songs & even sufiyana kalaams. It involves Sanskrit shlokas & hindi bhajan too. Antique compositions of classical music – khayal, tarane & thumriyan & also devotional composition in many languages. You have even given music for tamil, telugu, Bhojpuri, Punjabi & other provincial & regional music . naturally it sparks a question that you are interested in which kind of music?

Panditji, music is not my passion but my necessity. Music is the main notion & a medium for me to express. Hence , I was never keen to search for what is keanness. I have always been interested in whatever I do, it should never be partial....i should work well for it & then strive for success. I worked for radio & Doordarshan in recent times & I have always tried to maintain their glory & popularity.

13. Afterall, a musician has also got their own sensitivity & mood.

Well, if I reveal the truth I don't know what is mood? If I have to work then I have to work.... Then why we require mood? I have to prepare music..... I have to practice..... if I have to perform or play music ....then I have to. For this I can not permit mood & hobby to come in between. I am like a soldier who has been commanded to fight & I moved following the command. A soldier is not supposed to tell that I am not in a mood to fight, I don't want to fight today. I have never worried for mood & because of my willpower only I have been able to give music in so many languages & achieved success. At the same time only I can compose a devotional music, a romantic music & even a jingle. i prepared Punjabi pop at such a time when it was not even so popular. Music is a part of my life. The way we breathe without any mood, our heart beats without any mood..... the same is music's implication in my life. & that's why my compositions can not be compared with any other compositions as all of them are different from each other. Nowadays where people after composing 10 music start repeating music, I on the other side have composed thousands of compositions & all are disparate from each other.

14. I always say that if literature is mirror to society then music is pulsation of society. How will you justify this comment?

Well! on the basis of music, south india didn't go through a lot of changes but north india faced manies due to change in the rulers & even the ruling style. Popularity & progress of music depended very much on the choice of whosoever took the command & became

the ruler. For instance when mughals came to our nation musical pieces like tarana, ghazal, thumri gained popularity. Samely, after the colonization of muslims in Kashmir, music also changed. In Kashmir, amongst the hindus & laddakhis dance is not as popular. As the region lacks oxygen because of being based on height. There are some else reasons for kashmiri hindus for not being so comfortable with dance. First reason were the rulers because of whom natives never were able to celebrate with happiness & joy & the second reason was muslims also didn't dance as per by their culture. Every music would reflect some visuals of its native place. Consider Kashmir.... one can feel the softness & delicacy of the beautiful valleys & beautiful people. Although this music also reflects struggle, pain & also mournful cries.

15. Does that mean that music is influenced by the regional aura?

Of course! It is the affect of the aura that Baba Fareed's compositions are full of pain . while singing heer singers themselves tend to cry. One can never sing 'heer' in a battleground. Whenever any musical melody takes a marshal turn, it becomes clear that it's about to end. For instance we can pick northeastern states, if we start playing drums with their Dhols or other folk music instrument..... it won't be an apt choice. If it's already being done somewhere then it might be probably an external influence & the identity of the very own society or region is endangered. In any kind of folk music you would feel & visualize the nature, lifestyle, religion, ethics, rituals & the festivals of the place.

16. You must have heard an ancient belief ' there's always a woman behind a successful man' do you have such woman in you life?

Pandit ji, whatever reputation & image I have in my musical society.... I give the total credit of it to my gurus.... To their knowledge given to me.... To my hard work. But whatever favourable atmosphere I required to make all this possible was given to me by my wife professor aparna sopori. We both got married in student's life, that too a love marriage. Keeping her carrier at stake she dedicated herself to my family. I never needed to worry for my parents or my children. From bringing children to home getting tickets booked for the programmes.... She managed all. I never kept in mind that how much money am I carrying in my pockets.

Ill describe a very old incident to you when I was working with shrinagar radio. While I was preparing for a recording in my office, I got a call from aparna with a depressed voice saying that our elder son is lost somewhere. Those days many incidents of kidnapping took place, hence aparna's anxious behaviour was very natural. I said that he must have gone somewhere amidst playing while she told me that she has searched everywhere. I named few relatives & asked that where can he go. From the other side I got a call to head to the recording studio after the set up & the preparation. After listening to this I forgot everything & I headed towards the studio. I got free from the recording by 11:30 p.m. & suddenly I realized that my son is missing somewhere. I called the duty officer from the studio & asked that my son was

missing..... has he been found or not? Duty officer also replied sarcastically to it. Then he told that in evening there was a phone call from your home saying that your son has been found. The question arises how can I explain people that it's not about being careless towards your home but about the dedication & sincerity for my work. & the reason for me to be so carefree about home is a power like aparna.

17. You even have an organization – samapa (sopori academy of music & performing arts). Share it's goals & how it works?

I established this organization to give a strong base to music & it's processes. This organization organizes a 3 day akhil bhartiya sangeet sammelan & a 15 day aalap mahotsava in border region & jammu & Kashmir & many others apart than these. On one side if our organization awards classical artists like pt. birju maharaj, vidushi girija devi, pt. kishan maharaj, ustad abdul halim zafar, pt. manilal naag, vidushi zareen Sharma, vidushi n. rajam & pt. ramashray on the other it also awards pt. anoop jalota, hema malini. To encourage regional music artists like vidushi shamim azad, professor kailash mehra & several others were awarded. We have also awarded ritesh – Rajneesh mishra, ragini rainu & salil bhatt & encouraged young talent to come forward & learn their art well. for research & writing we have given awards to prof. c.l. das, manjari sinha, prof. mukesh garg , ravindra mishra, s. sahay & arun chatterjee.

On the basis of all above you may call it multi facetedfor contribution in the field of music this association has got many awards.

18. Musicians are frequently seen involved & occupied with their own selves. In comparison with theatre artist , media person & literates they are categorized as less aware about society. What's your view on this .

According to my view any musician has huge social responsibility. To any nation no enemy can destroy as that of a bad composer. Any enemy would try only to loot the wealth or people's lives but a bad composer can transform into a poisonous aura. It seeds the same poison in the roots of the society which gives result to corrupt & spoilt generation. I would disagree to your opinion & would convey that many musicians have introduced awareness & fulfilled their social responsibilities.

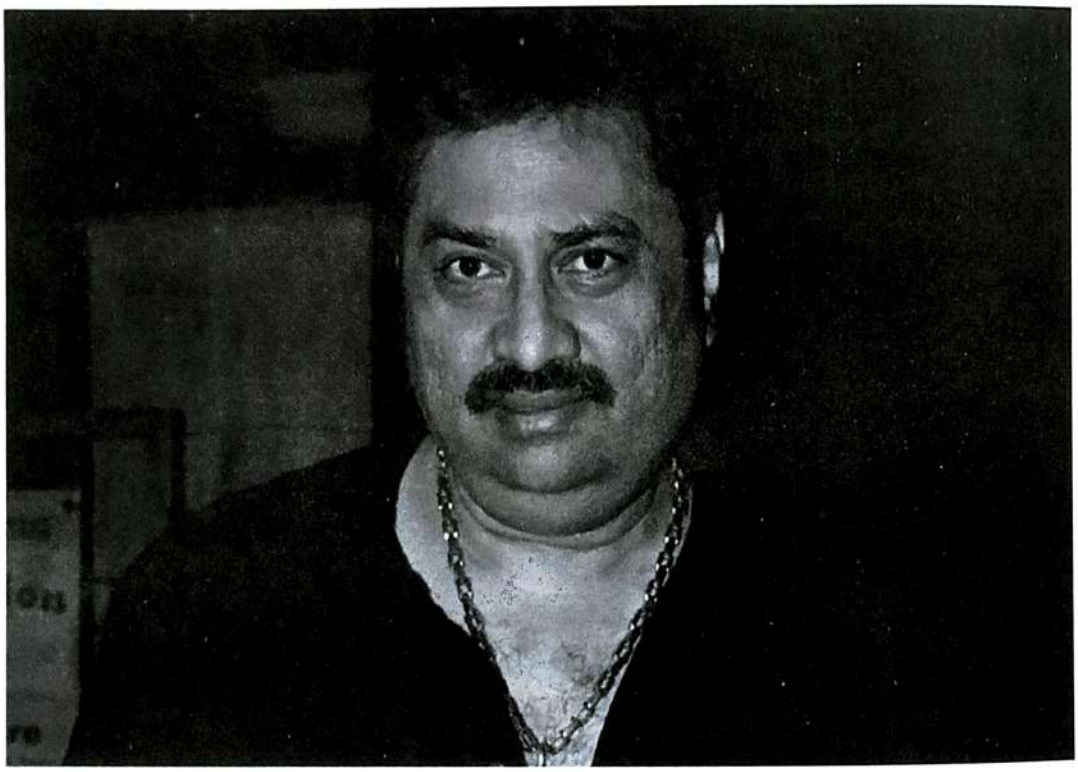

कुमार शानू

शास्त्र

पंकज उधास

भर्तृहरि और उनकी शतकत्रयी

डॉ. राजेश मिश्र

कलाविद्, इलाहाबाद

भर्तृहरि लोक और शास्त्र दोनों ही परम्परा मे विश्रुत ऐसे रचनाकार हैं, जिनका जीवन और चिन्तन सामान्य से सुधीजन तक दोनों के आकर्षण और आदर का केन्द्र रहा है। उनकी लोक में प्रचलित जीवन-गाथा नारी और उसके देह के प्रति पराकाष्ठा तक पहुँचने वाले उत्कृष्ट प्रेम-वासना के स्तर पर जहाँ खुलती हैं, वही विकर्षण और विवर्तजनित वेदना के स्तर पर बंद हो जाती है। भारतीय इतिहास में ऐसे व्यक्तित्व वाले विरल है। भारतीय इतिहास में ऐसे व्यक्तित्व वाले विरल हैं। जिनके कायल और माइल दोनों ही मिलते हों, जो मंच से मीमांसा तक अनुकरणीय और समादरणीय दोनों ही हों। इतिहास के धरातल पर ऐसी लोकप्रियता परम्परा के रूप में प्रवर्तित होकर प्रवर्तक की पहचान को प्रश्नवाली बना देती है और अनन्त प्रश्न उसका काल, रचना की मौलिकतासे सम्पृक्त खड़े हो जाते हैं और संवाद मूल प्रश्न से विच्छिन्न होकर कालनिर्धारिण और ऐतिहासिकता के अन्वेषण में उलझ कर रह जाता है। भर्तृहरि के साथ भी ऐसा ही हुआ। उनका 'वाक्यपदीयम' और स्फोटवादी चिन्तन वैय्याकरणों और विद्वानों को भले ही शास्त्रीय व दार्शनिक दृष्टि से अनुप्राणित करता हो किन्तु 'शतकत्रय' की लोक प्रसिद्धि उसके अनुवादों एवं व्यादयाओं की निरन्तरता से प्रतिपादति है। यही नहीं शतकत्रय की रचना का रहस्य जानने की पृष्ठभूमि ने परवर्ती भरथरी चरित्र की रचना तथा भर्तृहरि नाटक के आजतक लोक में मंचन ने भर्तृहरि और भरथरी में श्लोक और लोक का ऐसा अभेंद स्थापित किया जिसमें ऐतिहासिकता और काल रेखा दोनों ही निरसित हुई।

भर्तृहरि कौन थे? इस सन्दर्भ में पण्डितों के नाना प्रकार के विचार है; कोई उन्हें गोरक्षनाथ का शिष्य और वैराग्यपन्थ का प्रवर्तक मानते हुए 11 वीं शताब्दी में स्थापति करता हैं तो दूसरे चीनी यात्री इत्सिंग के यात्रा-वृत्तान्त भर्तृहरि नामक राजा के सात बार बौद्ध सन्यासी बनने और फिर गृहस्थात्रय के लौटने के आधार पर उन्हें सातवीं सदी के अतरार्द्ध में ठहराते हैं। (द्रष्टव्य : नाथ सम्प्रदाय, हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली भाग-7प्र. 189) जो भरथरी से भर्तृहरि को अलग करहा है।

सातवीं सदी औ उसके बाद काल शैव-शाक्त, वैष्णव-बौद्ध आदि धार्मिक प्रस्थानों के परस्पर संवाद अभ्युदय व आत्मसातकरण का काल है। महाराज हर्ष की धर्म-सहिष्णुता उन्हें शैव से बौद्ध सिद्ध कर देती है, ऐसे में भर्तृहरि को बौद्ध सन्यासी के रूप में इत्सिंग का कथन आवम्भित नहीं करता। शंकराचार्य भी लोगों को 'प्रच्छन्न बौद्ध' लगते हैं।

विद्वानों की तीसरी परम्परा भावविवेक हरिस्वामी तथा दिङनाग जैसे विचारकों द्वारा भर्तृहरि के उल्लेख तथा गौडपाद एवं उनके परवर्ती शंकराचार्य द्वारा स्फोटवाद के खण्डन के माध्यम से विवर्त-परिणाम और अविद्या के सन्दर्भ में स्थापित संवाद करती है। (द्रष्टव्यः जी.सी.पाण्डेख लाइफ एण्ड थॉट ऑफ

शंकराचार्य, पृ. 159-60 एवं फाउण्डेशन्स ऑफ इण्डियन कल्चर, पृ. 110-111) जो उन्हें 5वीं शताब्दी में ले जाकर खड़ा करता है।

शतकत्रय के अन्तः साक्ष्य की इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है। शृंगार के प्रसंग में शक युवती के कपोलों की उपमा शकों से उनके परिचय को सूचित करती है जो पांचवी शती में सक्रिय थे। (द्रष्टव्य शृंगार शतक, श्लोक-उप) योगियों के खास परिधान 'कन्था' एवं वाराणसी में भिक्षारत की लालसा का उल्लेख पंथ की प्राचीनता का प्रमाण प्रस्तुत करती है। (द्रष्टव्यः वैराग्यशतक, श्लोक-65) निगुर्णभागी कवि जायसी ने भी दसवी-ग्यारहवी शताब्दी के भरथरी-गोरक्ष प्रसंग में इस योगी वेष का वर्णन किया है। (द्रष्टव्यः पद्मावत, पृ. संपादक-माता प्रसाद गुप्त)। इसके अतिरिक्त विद्वान् शतकत्रय को भर्तृहरि के जीवन और अनुभव से जोड़कर देखते हैं, जिसमें आसक्ति से विरक्ति तक की एक राजा की छन्वद्ध जीवन-यात्रा लोक की अभिरूचि व जिज्ञासा का केन्द्र बनती है। इस पर अनेक शंकायें और विचार प्रकट किये जा सकते हैं— पहला शतकत्रय के लेखकन का उद्देश्य क्या है। दूसरा, क्या यह स्वयं की जीवनी का लेख नयापीड़ा-पक्ष का प्रकटन हैं तीसरा कहीं शास्त्रीय चिन्तन से अलग हटकर सरस ढंग से स्वयं को केन्द्र बनाकर लोक को जीवन की सार्थक-निरर्थकता से अवतग कराना तो नहीं है। कारण भर्तृहरि सूत्रवित और ब्रह्मवित दोनों ही हैं, वह निदेह और विश्वामित्र की परम्परा के राजा हैं, ज्ञान-योग साधना और सन्यासु संधान उनका अभीष्ट है। उनकी दृष्टि में संसार तीन प्रकार के मनुष्यों का है वैरागी नीतिज्ञ और शृंगारी वैराग्ये संचरन्त्येकों नीती भ्रमतिचायरः शृंङ्गारे रमते कश्चिद भुविभेत्र परम्परम्॥

इस प्रकारनमः शान्तायतेजसे से अथ और क्वचित पुण्यारण्ये शिव-शिव-शिवेति प्रलपतः से रचना की इति करने वाले भर्तृहरि विराग को सर्वोत्तम स्वीकार करते हैं। शेष पूरे ग्रंथ में काया और माया, नीति और रीति राग और विराग, रति और यति, भोग और योग के विश्लेषण में साधना, संयम और शील का स्वीकार तथा भौतिकता के अस्वीकार है जिस में विवर्त-परिणाम तथा अविद्या की धारणा बद्ध मूल है—

भोगे न भुक्त वयमे व भुक्तस्यपो न तप्तं
वयमेव तप्तीः।
कालो न यातो वयमेव यतारु—
तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः 11वै.श.711

अतएव शतकत्रय भर्तृहरि के मूल दार्शनिक चिन्तन की साहित्यक प्रस्तुति है, जिसके माध्यम से तीन प्रकार की मानवीय प्रकृति या सांसाकिर प्रवृत्ति का अनुशीलन भर्तृहरि द्वारा किया गया है। मानव की प्रकृति से मेल खाने के कारण ही यह रचना नलोग्राही वनी जिसके परिणाम स्वरूप इसके अनवाद और.....!

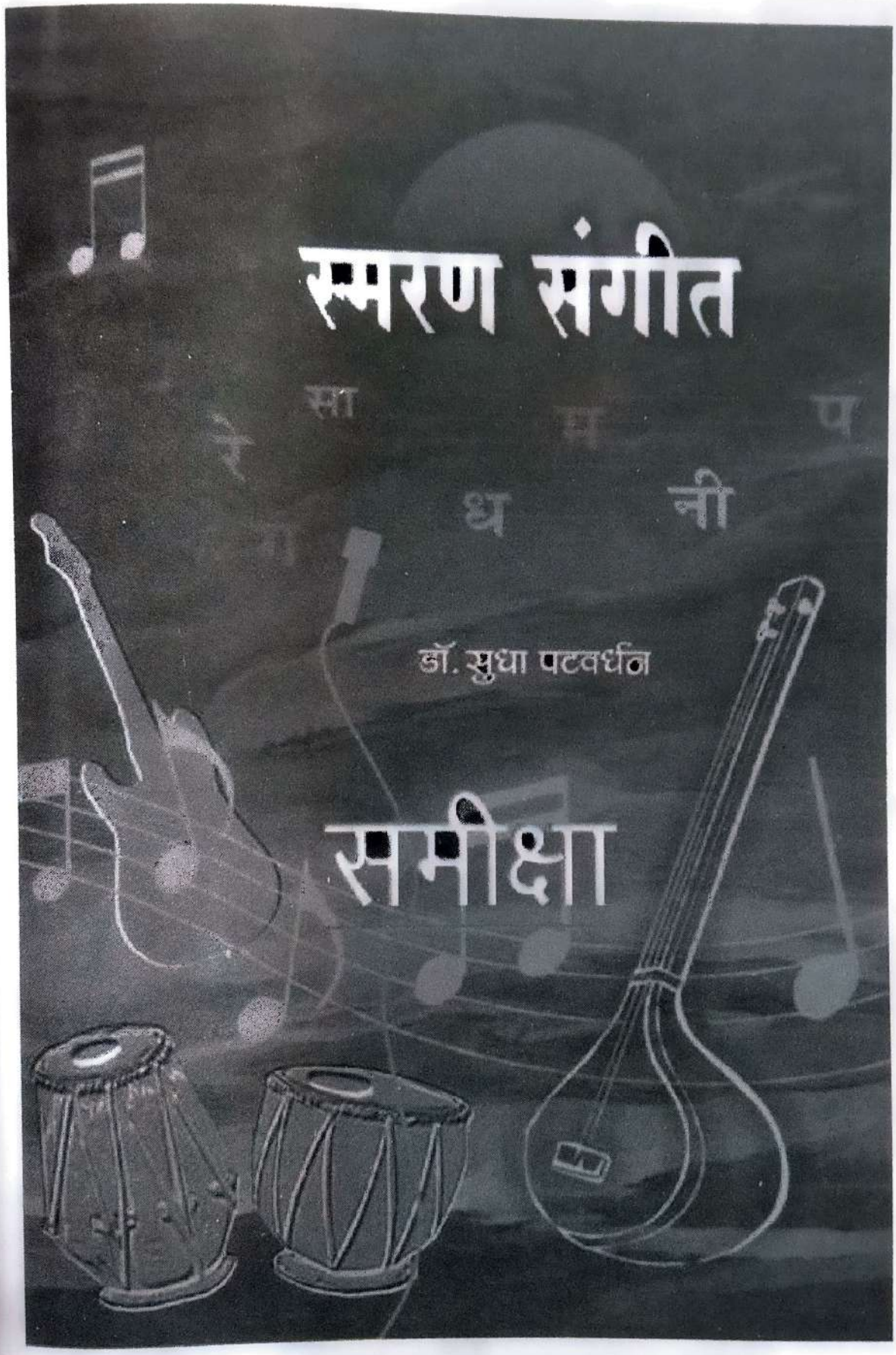
स्मरण संगीत
डॉ. सुधा पटवर्धन
समीक्षा

उदित नारायण

स्मरण संगीत

लेखिका डॉ. सुधा पटवर्धन

समिक्षक पंडित विजयशंकर मिश्र

किसी भी का जीवन बहुआयामी होता है। हम उन्हें मंच पर जिस रूप में देखते हैं, जरूरी नहीं कि वही उनका वास्तविक स्वरूप हो। आम जनता से अत्यन्त निनम्रता से मिलनेवाले संगीतकार घर-परिवार में अनुशासित वातावरण बनायें रखने के लिए कई बार कठोर आचरण भी करते हैं। आम लोगों के सामने गंभीरता की प्रतिमूर्त्ति बने रहनेवाले संगीतकार अक्सर यार दोस्तों के साथ जमकर हँसी मजाक करते हुए दिखते हैं। इसीलिए किसी संगीतकार के संगीत से परिचित होना अगल बात है और उनके व्यक्तित्व से परिचित होना बिल्कुल अलग बात। दोनों का अपना महत्त्व है...अपना आनंद है।

डॉ. सुधा पटवर्धन की नवीनतम पुस्तक स्मरण संगीत—उन संगीतकारों के संगीत और व्यक्तित्व से हमारा साक्षात्कार कराती है, जिनके कृतव्य से हम सभी सुपरिचित हैं। संगीत चूड़ामणि, मद्मभूषण पं. विनायक राव पटवर्धन की सुशिष्या और पुत्रवधू डॉ. सुधा पटवर्धन एक अच्छी गायिका होने के साथ-साथ लेखिका, संपादिका, गुरु, चिंतक, वक्ता और संयोजिका के रूप में स्वयं को स्थापित कर चुकी हैं। स्वयं अच्छी कलाकार होने और एक प्रतिष्ठित संगीतज्ञ परिवार से सीधे जुड़ी होने के कारण उनकी सीधी पहुँच उन संगीतकारों के हारों तक थी- जिनके द्वार हर किसी के लिए नहीं खुलते। पटवर्धन जी के यहाँ अनेक संगीतकारों का आना जाना लगा रहता था। उनकी आवभगत करने की, उन्हें जलपान कराने की जिम्मेदारी प्रायः सुधाजी पर ही होती थी। इस सत्संग का सुधाजी ने खूब लाभ उठाया और अपनी स्मृतिकोष में उन प्रसंगों को सुरक्षित, संरक्षित कर दिया। वर्षों बाद वे प्रसंग 'स्मरण संगीत' नामक इस पुस्तक में जब उद्घाटित हुए तो ऐसा लगा जैसे हम कोइ चलचित्र देख रहें हैं, जिनमें ये सभी संगीतकार जीवंत रूप में हमारे समक्ष गतिमान हैं।

पुस्तक की शुरूआत सुधाजी के बचपन से हुई है, जिसमें उन्होंने वनस्थली विद्यापीठ के उन दिनों को स्मरण किया है जब वे छात्रा थीं। पुस्तक में सुधा जीने ईमानदारी से स्वीकार किया है कि किस तरह युवा ..... सुलताना की अति तार सप्तक की तानों को सुनकर वे भी उस ओर आकृष्ट हो गई थीं, किंतु बाद में अपने गुरु पटवर्धन जी के समाझाने पर उन्होंने उस रास्ते को त्याग दिया। उन्होंने लिखा है कि भले ही दूसरे कई लोग उनके गाने की प्रशंसा करते थे, लेकिन पटवर्धनजी ने कभी भी उनके मुँह पर उनकी प्रशंसा नहीं की। कारण शायद यह था कि प्रशंसा के 'सुर' 'संगीत के सुर' को प्रायः 'असुर' बना देते हैं। पुस्तक में उन प्रसंगों का भी उल्लेख है जब पटवर्धन जी स्वयं अपनी प्रशंसा भी सुनना पसंद नहीं करते थे। वे अनेक वाद्यों के वादन में प्रवीण थे, नृत्य में भी निपुण थे, उनका अभिनय पक्ष भी अभिनव था। लेकिन उन्होंने अपने जीवन का लक्ष्य बनाया गायन को।

इस पुस्तक में पं. बालकृष्ण बुवा इचलकरंजीकर, पं. विष्णु दिगम्बर पल..... पं. सवाई गंधर्व पं. फिरोज दस्तर पं. भीमसेन जोशी, विदूषी गंगबाई हंगल, पं.

विनयचंद्र मौद्गल्य, विदुषी पद्मा मौद्गल्य, विदुषी माधवी मौद्गल्य, पं. गोविंद राम पलुस्कर, पं. ओंकारनाथ ठाकुर, पं. नारायणराव व्यास, पं. शंकरराव व्यास, बोडस बंधु, पं. जितेंद्र अभिषेकी सहित दर्जनों अन्य संगीतकारों के निषय में भी यथेष्ट और वे अंतरंग जानकारियाँ दी गई हैं जो किसी 'कलाकार' को 'सचमुच कलाकार' बनाती हैं।

संगीत में गुरुओं के महत्त्व को रेखांकित करते हुए पुस्तक में लिखा गया है कि—'प्रयोगजीवी कलाओं की शिक्षा हेतु गुरूओं की शरण लेना क्षेयस्सरक होता है। दरबारी, तोड़ी और मुलतानी के गांधार मल्हार के गांधार-निषाद् के स्थान, ललित-मारवा के नर्म और खड़े स्वरों के लगावों को समझने के लिए शिष्य में मृदुता का होना बेहतर होता है।'

पुस्तक में—संगीत के बदलते स्वरूप, संगीत शिक्षा में आते बदलाव, तानपुरा, ललित कला, संगीत में रस, लयस्वर सरगम, बंदिश, राग समय, आदत जिगर हिसाब, खास उल खास तालीम, गंडा बंधन, घराने, राग शरीर, घरानों के प्रिय ताल, हमारी निराली-सी संगीत की दुनिया, संगीत-विश्व धर्म-विश्व भाषा, आकाशवाणी, मेरी आकाशवाणी का सफरनामा, श्रीराम संगीतिका, सामसंगीत, संगीत में नवमतवाद-स्मरणरंजन, सांगीतिक आलोचना, संगीत का अर्थशास्त्र मेरा संगीत से संबंधित लेखन, मेरे प्रिय रचनाकार, स्मृति मंजूषा में ठहरी हुई कुछ महफिले, स्वर परिवर्त्तन, तराना-एक बहुआयामी गीतविधा, झपताल-ग्वालियर घरानें की क्रीड़ा स्थली, एवं संगीत में निहित पवित्रता—जैसे विषयों पर लेखिका ने अपने अनुभवों और जीवन के विभिन्न प्रसंगों के माध्यम से रोचक शैली में विद्वतापूर्ण ढंग से प्रकाश डाला है। लेखिका जब किसी प्रसंग का वर्णन करती हैं तो ऐसा लगता है जैसे हम कोई रोचक फिल्म देख रहें हैं, और जब वे अपनी बात कहती हैं तो यूं लगता है जैसे हम कोई रोचक कहानी सुन रहें हैं।

चूँकि लेखिका स्वयं अच्छी गायिका और विचारिका हैं, इसलिए अनेक संगीतकारों का उल्लेख करते हुए 'नीर-क्षीर विवेक' का परिचय दिया है... साहसिकता का परिचय दिया है...विद्वता का परिचय दिया है। लेखिका ने अत्यन्त संतुलित एवं विवेकपूर्ण ढंग से बताया है कि अमुक संगीतकार बहुत अच्छे गायक थे किंतु इन कारणों से उनका बहुत नाम नहीं हो पाया...अमुक गायक विद्वान तो थे किंतु महफिली गवैये नहीं थे...अमुक गायक में कुछ अहंकार का भाव भी था...अमुक गायक का गायन तकनीकी दृष्टि से अत्यन्त कौशलपूर्ण होने के बावजूद उनके गायन और गले में सरसता का अभाव था... आदि-आदि। 'अमुक' कलाकारों का नाम जानने के लिए आपको पुस्तक पढ़नी पढ़ेगी। पुस्तक कई बार हँसाती है, कई बार गमगीन करती है, कई बार चौंकाती है तो कई बार सीख देते हुए प्रेरित भी करती है।

इस पुस्तक को शोध ग्रंथ कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी। लेकन, यह एक ऐसा शोध ग्रंथ है—जिसे चार पुस्तकों को पढ़कर पाँचवी पुस्तक के तौर पर नहीं लिखा गया है। यह महान् संगीतकारों के 'सत्संग' और 'स्वानुभूत स्त्य' पर आधारित है। इसलिए सरस भी है, शिक्षाप्रद भी है, हृदयग्राही भी है और अनुकरणीय भी। पुस्तक शुरू से अंत तक रोचक और पठनीय है। इसकी यह बहुत बड़ी विशेषता है कि यह हमें हमारे महान् संगीतकारों से परिचत करती है...अंतरंग बनाती है। लोक भारती प्रकाशन द्वारा प्रकाशित 216 पृष्ठों की इस पुस्तक की 400/ रुपये मात्र है।